भारत के इस्लामीकरण के चार चरण

मुझे लोगों से उस समय तक लड़ने का (अल्लाह से) आदेश हुआ है जब तक वह यह सत्यापित न करने लगें कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा उपास्य नहीं है, मुझे अल्लाह का पैगम्बर न मानने लगें और उस सब में भी विश्वास न करने लगें जो मेरे द्वारा प्रकट किया गया है। (मौहम्मद साहब पृ० ४५)

वही है (अल्लाह) जिसने अपने सन्देश वाहक (मौहम्मद) को सत्य मत (इस्लाम) देकर पथ प्रदर्शन के लिये भेजा है जिससे वह उसे सभी दूसरे मतों पर विजयी बनाये भले ही मूर्ति पूजक उसका कितना ही विरोध क्यों न करें। (कुरान ९ : ३३)

■ पुरुषोत्तम

भारत में ब्रिटिश शासन के अंतिम वाइसरॉय तथा कांग्रेस द्वारा मनोनीत स्वतंत्र भारत के प्रथम गर्वनर जनरल लॉर्ड माउन्ट बैटेन स्वीकार करते हैं "सत्य यह है कि अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र में किसी मुसलमान ने कभी कोई भाग नहीं लिया। वह तो चाहते थे कि हम सदैव भारत पर शासन करते रहें।

जिन्नाह भी नहीं चाहते थे कि हम भारत छोड़कर जाँय। उनका कहना था कि यदि हमारा प्रभुत्व भारत पर बना रहे तो उन्हें अलग पाकिस्तान नहीं चाहिये।

"...................किन्तु हिन्दू हमको निकालकर बाहर करना चाहते थे क्योंकि वह सब ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त किये हुये थे। वह भारत पर ब्रिटिश शासन को किसी प्रकार उचित मानने को तैयार नहीं थे।"

"मुझे मुस्लिम लीगी पसन्द थे ....मैं किसी वैयक्तिक भेदभाव से ग्रस्त नहीं था। किन्तु सत्य यह है कि मुझे मुसलमान (हिन्दुओं से अधिक) पसंद थे।...............मेरे निकटतम सहयोगियों में आयन स्कॉट थे..................वह स्वयं लगभग मुस्लिम हैं।"

(–माउन्ट बैटेन एंड पार्टीशन ऑफ इंडिया– लेखक लॉर एंड डॉयनीक लैपियरे)

ब्रिटिश शासन हिन्दुओं से बदला लेने पर तुला हुआ था। अपने देश की स्वतंत्रता के लिये हिन्दू ही शोर मचा रहे थे। अंग्रेज़ भारत की आज़ादी की लड़ाई को ध्वस्त करने के लिये कृत संकल्प थे। और यदि उन्हें इसमें असफल होना ही पड़े तो वह भारत का विभाजन इस प्रकार करना चाहते थे कि हिन्दुओं के लिए उस स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही न रहे।

कांग्रेस मुसलमानों के तुष्टीकरण में लगी रहती थी। इस प्रकार वह अनजाने में उन्हें अपनी असंगत मांगों को नितप्रति बढ़ाते रहने के लिए प्रोत्साहित करती रहती थी। फलस्वरूप साम्प्रदायिक रोग बढ़ता गया और अंततः देश का विभाजन हुआ।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को विश्वास था कि जब भावावेश शांत हो जायेंगे तो समस्याओं को सही परिपेक्ष में देखा जा सकेगा और द्विराष्ट्र सिद्धान्त को त्याग दिया जाएगा।'

दुर्भाग्यवश कांग्रेस ने कभी भी मुस्लिम चरित्र के अलगाववाद और आक्रामकता को समझने की चेष्टा नहीं की। वह अंत तक इस झूठी आशा को सजोते रही कि किसी प्रकार, कभी, किसी घटना वश, साम्प्रदायिक समस्या का समाधान हो जाएगा।

(कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंण्डिया खंड–६–पृ. ८७२)

भारत के इस्लामीकरण के चार चरण

मुझे लोगों से उस समय तक लड़ने का (अल्लाह से) आदेश हुआ है जब तक वह यह सत्यापित न करने लगे कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा उपास्य नहीं है, मुझे अल्लाह का पैगम्बर न मानने लगे और उस सब में भी विश्वास न करने लगे जो मेरे द्वारा प्रकट किया गया है। (मौहम्मद साहब पृ० ४५)

वही है (अल्लाह) जिसने अपने सन्देश वाहक (मौहम्मद) को सत्य मत (इस्लाम) देकर पथ प्रदर्शन के लिये भेजा है जिससे वह उसे सभी दूसरे मतों पर विजयी बनाये भले ही मूर्ति पूजक उसका कितना ही विरोध क्यों न करे। (कुरान ६ : ३३)

■ पुरुषोत्तम

विषय सूची

विषय प्रवेश

मुस्लिम इतिहास के अध्ययन से एक बात पाठक को सहसा ही प्रभावित करती है। एक दो अपवादों को छोड़कर सभी मुसलमान आक्रामकों और छोटे बड़े शासकों का हिन्दुओं के प्रति कमोवेश एक जैसा ही व्यवहार रहा है। अलग-अलग देशों से अलग-२ समय पर आये हुये और अलग अलग जातियों के अरब, तुर्क, पठान, मंगोल इत्यादि के हिन्दुओं बौद्धों के साथ व्यवहार की यह समानता क्या आकस्मिक है अथवा क्या इन सभी का इस्लाम के धर्मानुयाई होना ही इसका कारण है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये इस्लाम के प्रमाणित इतिहास और धर्म का अध्ययन आवश्यक है।

किसी काल का प्रमाणित इतिहास उसी काल के लेखकों को पढ़ने से ही जाना जा सकता है। मुस्लिम काल के सभी लेखक मुसलमान हैं। एक आध अपवाद को छोड़कर हिन्दू विद्वानों ने उस समय का कोई इतिहास हमारे लिए लिखकर नहीं छोड़ा।

सौभाग्यवश मुस्लिम लेखकों द्वारा लिखे गये मुख्य मुख्य इतिहास ग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेजी और किसी सीमा तक हिन्दी में भी हो चुका है। ईलियट एंड डाउसन की ८ खण्डों की पुस्तक "हिस्ट्री आफ इण्डिया बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स" में दिये गये इन मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थों के महत्वपूर्ण उद्धरण पढ़ने से उस काल की घटनाओं का अच्छा खासा चित्र बन जाता है। उस चित्र को सम्पूर्ण और रंगीन बनाने के लिये उस समय भारत में भ्रमण करने अथवा बसे विदेशी विद्वानों के ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। इनमें मौहम्मद कासिम फरिश्ता, बर्नियर, मनुक्की इत्यादि द्वारा लिखे गये ग्रन्थ विशेष रूप से पढ़ने योग्य हैं क्योंकि उनका वर्णन आंखों देखा वर्णन है।

इस्लाम धर्म के मूल ग्रन्थ कुरान, हदीस और हिदाया के अनेक, एक से अच्छे एक, हिन्दी और अंग्रेजी (मान्यता प्राप्त) अनुवाद उपलब्ध हैं। यह इस्लाम के सर्वमान्य ग्रंथ हैं। इनको पढ़े बिना इस्लाम का ज्ञान असम्भव है। इनको पूर्ण प्रकार से समझने के लिये इस्लाम के अनेक उलमा द्वारा इन पर दी गयी व्याख्यायें भी पढ़नी चाहियें। यह सभी व्याख्यायें हिन्दी या अंग्रेजी में भारत में कदाचित उपलब्ध नहीं हैं परन्तु पश्चिमी विद्वानों के अनेक ग्रंथों में इनके उद्धरण दिये गये हैं। संदर्भ समेत कुछ प्रासंगिक उद्धरण इस पुस्तक में भी दिये गये हैं।

इस्लाम के गहन अध्ययन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि इस्लाम के विषय में संसार में और विशेष रूप से हिन्दुओं में घोर अनभिज्ञता है। उनके विद्वान और नेता भी नहीं जानते कि इस्लाम उन अर्थों में मात्र आध्यात्मिक धर्म नहीं है जिसे अधिकांश हिन्दू धर्म समझते हैं। वह एक सम्पूर्ण जीवन व्यवस्था है जिसमें आध्यात्मिक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक इत्यादि मानव जीवन के सभी पक्षों पर सूक्ष्म से सूक्ष्म आदेश हैं जिन्हें ईश्वरीय आदेश माना जाता है। धर्मनिष्ठ मुसलमान अपने जीवन

को इन्हीं मर्यादाओं के दायरे में जीने के लिये मजबूर हैं।

दूसरी बात यह है कि इस्लाम का ध्येय सभी गैर इस्लामी मतों और संस्कृतियों को नष्ट कर उनके स्थान पर इस दैवी धर्म और कानून की स्थापना करना है। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये मानवकृत संविधानों के स्थान पर पूरे विश्व में परन्तु फौरी तौर पर भारत और स्पेन में जो पहले इस्लामी शासन में रह चुके हैं फिर उसी शासन को स्थापित करना है। जितनी धर्मनिष्ठता बढ़ती है उतनी ही मुसलमान की घृणा गैर-इस्लामी मतों और मानवकृत संविधानों के प्रति बढ़ती है। सब मिलाकर इस्लाम एक अजेय तंत्र है जो परिस्थितियों के अनुसार कभी धीरे और कभी द्रुत गति से चलकर अपने ध्येय को प्राप्त करता जा रहा है।

तीसरी बात यह है प्रचलित भ्रम के विपरीत इस्लाम अपने अनुयाइयों को (कूटनीतिक कारणों के अतिरिक्त) किसी दशा में भी मूर्ति और देवी देवताओं की पूजा और उनमें विश्वास करने वालों को बरदाश्त करने की अथवा सह अस्तित्व की अनुमति नहीं देता। इन तीनों बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा आगे की गई है।

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दो दशक और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के तीन दशक में भारत में विकसित आर्य समाज के मंचों से वैदिक, पौराणिक, ईसाई और इस्लाम मतों के विद्वानों में शास्त्रार्थ की स्वस्थ तथा जनप्रिय परम्परा भी समाप्त हो गई। इस परम्परा के कारण इन विद्वानों को विपक्षी मतों का अध्ययन करना पड़ता था और सार्वजनिक रूप से अपने मत की आलोचना का उत्तर देना पड़ता था। इस प्रकार सार्वजनिक मंचों पर मतों में विभिन्नता के बिन्दु और उनके तर्कसंगत होने अथवा न होने पर प्रकाश पड़ता था। कभी-कभी विद्वानों को अपने मत की ऐसी व्याख्या करनी पड़ती थी जो सर्वसाधारण को बुद्धिगम्य और श्रेष्ठ लगती है। यह इन्हीं शास्त्रार्थों का प्रभाव था कि आज अधिकांश पौराणिक लोग भी वर्ण व्यवस्था जन्म से न मानकर कर्म और स्वभाव से मानने लग गये हैं। स्त्रियों और शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार मिल गया है। धर्मान्तरित हिन्दुओं को हिन्दू धर्म में वापिस लेने पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। छुआछूत को हिन्दू धर्म का कोढ़ कहने में ब्राह्मण संकोच नहीं करते। सर सयद अहमद ने कुरान की व्याख्या नये प्रकार से कर उसमें वर्णित अनेक अव्यवहारिक बातों को अलंकारिक बताना प्रारम्भ कर दिया था। संक्षेप में कहें तो धार्मिक कट्टरता कम होती जाती थी।

वास्तव में यह भारतवर्ष की पुरातन परम्परा रही है। शासक सभी मतों के विद्वानों को बुलाकर ऐसी सभायें आयोजित करवाते रहते थे। महाराजा जनक से लेकर महाराजा हर्ष के काल तक और फिर ९वीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य के शास्त्रार्थों के अनेक वर्णन मिलते हैं। इन सभाओं के माध्यम से शासन मतों में शान्तिपूर्वक सुधार करने में सफल हो जाता था। अकबर ने भी इसी परम्परा के अनुसार अनेक मतों के धर्माचार्यों को बुलाकर शास्त्रार्थ करवाने की परम्परा नये सिरे से प्रारम्भ की थी। यह दूसरी बात है कि वह अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सका। फिर भी उसके काल में कट्टर वाद फल फूल नहीं सका।

प्रचलित "हिन्दू धर्म" वैदिक मत से हटकर एक परिभाषा गम्य शब्द नहीं है। वह विभिन्न विश्वासों, रीति-रिवाजों, कल्पनातीत मिथक कहानियों और घोर अन्धविश्वास का पुलिन्दा मात्र रह गया है। हिन्दू समाज अनेक ऐसे सम्प्रदायों का ढीला ढाला संघ है जिनमें से कुछ के रीति रिवाज और विश्वास दूसरों के रीति रिवाजों और विश्वासों के नितांत विपरीत हैं। उनको आपस में जोड़ने वाला ऐसा कोई सीमेन्ट नहीं है जैसा इस्लाम में मौहम्मद साहब और कुरान का है। इन दो नामों पर विश्व के सभी ९० करोड़ मुसलमानों को असंदिग्ध श्रद्धा है और उनके मत (इस्लाम) को खतरे की सम्भावना मात्र से वह अपने प्राणों तक की बाज़ी लगाने को तैयार हो जाते हैं।

फिर इस्लाम एक मत परिवर्तन करने वाला (प्रोसेलिटाइजिंग) मत है। कहा जा सकता है कि वह इसका जीवनोद्देश्य ही है। इसके विपरीत प्रचलित हिन्दू धर्म में वैदिक काल अथवा बौद्ध काल जैसे मत प्रचार के मिशनरी उत्साह को समाप्त हुए सहस्रों वर्ष बीत गये हैं जब वैदिक ऋषि और बौद्ध भिक्षु विदेशों में जा जा कर अपने मत का प्रचार और प्रसार करते थे। अब तो दशा यह है कि ८० करोड़ के हिन्दू समाज में ऐसा कोई संगठन ही नहीं है जो वैदिक मत की शिक्षा देता हो। वैदिक विद्वान भी यदि हों तो उंगलियों पर ही गिने जा सकते हैं। उसका प्रचार प्रसार का कोई साधन नहीं है। न कोई ऐसा संगठन है जो अवैदिक प्रथाओं को समाज से निर्मूल करने का प्रयास करता हो जिनके कारण ऐसे धर्मान्तरण सुगम और लाभदायक हो गये हैं। धर्मान्तरित व्यक्तियों को यदि वह वापिस आ भी जाँय तो पचाने में समाज अक्षम हो गया है।

इस्लाम धर्म की वास्तविकता का ज्ञान होने पर भारत के पिछले १२०० वर्ष के इतिहास और वर्तमान परिस्थितियों के अध्ययन से हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कोई चमत्कार ही सम्पूर्ण भारत को इस्लामीकरण से बचा सकता है। परन्तु इतिहास के विद्यार्थी चमत्कार की आशा में अपने अनुमान निर्धारित नहीं करते। न गृह नक्षत्रों के आधार पर भविष्यवाणी करते हैं। भूतकाल के अनुभव और वर्तमान की परिस्थितियों के अध्ययन से आने वाली घटनाओं का अच्छा खासा अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि इतिहास अनेक रूपों में अपने को दोहराता रहता है। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो उसे अपने को दोहराने में समय नहीं लगता।

अपने निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये हमने इस्लाम और प्रचलित हिन्दू धर्म की जिन मान्यताओं, उनके अनुयाइयों की शिक्षा, मानसिकता, चरित्र और इतिहास को आधार बनाया है उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में है।

स्वाभाविक है कि इस प्रकार के अध्ययन में इस्लाम और उसके अनुयाइयों और प्रचलित हिन्दू धर्म तथा उसके अनुयाई के बलाबल का तुलनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है। इस बात का कठिन प्रयास किया गया है कि विश्लेषण वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष हो। यद्यपि "सत्यम वद प्रियम वद" के सिद्धान्त का पालन करने की भरपूर चेष्टा

की गयी है किन्तु सत्य को केवल इसलिये छिपाना कि वह अप्रिय है इस प्रकार के अध्ययन के प्रति अन्याय होता है। इसलिये जहाँ तक सम्भव हुआ अप्रिय सत्य की कटुता को कम करने की चेष्टा तो की गयी है उसे छिपाया नहीं गया।

लेखक का विश्वास है कि कोई भी मत सम्पूर्ण सत्य नहीं है और प्रत्येक मत में काफी कुछ "सत्यम शिवम् सुन्दरम्" है। परन्तु सभी मतों में जो सत्यम शिवम् सुन्दरम है वह वैदिक मत में समाविष्ट हो गया है। शेष जो बातें विवादास्पद हैं उन्हीं के कारण मतों में विभिन्नता है और उन्हीं के कारण एक मत का धर्मनिष्ठ अनुयाई दूसरे मत की उन मान्यताओं को जो उसके मत के विपरीत हैं ईमानदारी के साथ आदर की दृष्टि से नहीं देख सकता। समान आदर तो सम्भव ही नहीं है।

"सर्वधर्म समभाव" एक नितांत अव्यवहारिक, भ्रमोत्पादक, ढकोसला है। मुसलमानों का यह कहना तर्क संगत है कि हम उस धर्म का आदर कैसे कर सकते हैं जिसे हम भटका हुआ (अथवा झूठ) समझते हैं। समान आदर का तो प्रश्न ही नहीं उठता (मुशीरुल हक : धर्म निरपेक्ष भारत में इस्लाम पृ. २६)। दूसरी ओर से भी यह तर्क ठीक है। उदाहरण के लिये कीड़े मकोड़े और हानिकारक कीटाणुओं की भी हिंसा न करने का व्रत लिये कोई धर्मनिष्ठ जैन इस्लाम में पशुओं की अनिवार्य कुर्बानी को किस प्रकार बिना आत्म ग्लानि, क्षोभ और शोक अनुभव किये सहन कर सकता है? इस प्रकार की कुर्बानी करने वालों को किस प्रकार आदर और प्रेम दे सकता है? और जैन शासन कैसे उस पर सहमत हो सकता है? मूर्ति पूजा को समूल-नष्ट करने को परम धार्मिक कर्तव्य मानने वाला आक्रामक समाज किस प्रकार रात दिन मूर्ति पूजा का प्रचार प्रसार करने वाले समाज के साथ सहर्ष रह सकता है?

जो लोग मतों के पारस्परिक बैर भाव को कम करना चाहते हैं उनके लिये आवश्यक है कि वह उन मतों में बैर-भाव उत्पन्न करने वाली मान्यताओं को तलाश कर यह विश्लेषण करें कि उनको एक दूसरे के लिये स्वीकार्य कराना सम्भव भी है या नहीं। अपनी अपनी अथवा एक दूसरे की पीठ थपथपाने से काम नहीं चलेगा। जैसा कि आजकल भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता और सद्भावना विकसित करने के नाम पर कुछ राजनीतिक विद्वानों और दलों द्वारा किया जा रहा है। पुस्तक में इस्लाम और प्रचलित हिन्दू धर्म के इसी पक्ष को उजागर करने और उनके बलाबल का तुलनात्मक अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है।

पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् कदाचित पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि यदि परिस्थितियाँ न बदली तो १२०० वर्ष से निरन्तर चलने वाली भारत के इस्लामीकरण की यह प्रक्रिया इस चौथे और अन्तिम चरण में भी उसी प्रकार चलती रहेगी जैसे यह अभी तक कभी धीरे और कभी तेजी से चलती रही है जब तक सम्पूर्ण भारत उसी प्रकार मुसलमान न हो जाय, जैसे हमारे देखते-देखते पाकिस्तान हो गया है। इस्लाम के कुफ्र विरोधी दर्शन,

उसकी तीव्र घृणोत्पादक शिक्षा और मुस्लिम समाज में उसकी गहरी जड़ों से अनभिज्ञ हिन्दू नेतृत्व और घुन खाये प्रचलित पौराणिक हिन्दू धर्म में इस प्रक्रिया को रोकने की शक्ति नहीं है। हामिद, दलवई, और गिरिलाल जैन जिन्होंने मुस्लिम कट्टरवाद के विरुद्ध और हिन्दू समाज के पक्ष में काफी कुछ लिखा है, अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं : "गाँधी और नेहरु ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया था कि हिन्दू समाज मुस्लिम चुनौती को स्वीकार नहीं कर सकता। हिन्दू समाज में वह ऊर्जागति (Dynamism) नहीं है जो किसी राष्ट्रीय चुनौती का सामना कर सके। शताब्दियों से वह निरूत्साह और उदासीन रहा है। (दलवईः मुस्लिम पालिटिक्स इन सेक्युलर इंडिया पृ. १०१)

गिरिलाल जैन का भी कहना है कि १९४७ में एक सहस्र वर्ष के बाद हिन्दुओं को मौका मिला था कि वह भारत की हिन्दू सांस्कृतिक पहचान बना लेते किन्तु वह ऐसा नहीं कर सके और न इस समय ऐसी स्थिति में हैं।

भारत के इस्लामीकरण को रोकने की शक्ति दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म में हो सकती थी क्योंकि दयानन्द हिन्दू समाज में वैदिक उर्जागति (Dynamism) के विकास पर बल देते थे। वैदिक मत में जहां एक ओर इस्लाम को स्वीकार्य एकेश्वर वाद, मूर्ति पूजा निषेध, यथार्थवाद और तेज, ओज, साहस, मन्य (सात्विक क्रोध) की आकांक्षा है। वहीं दूसरी ओर मूर्ति और देवता पूजा, निवृत्ति वाद, अकर्मपथ वाद और पौराणिक भावुकता पर आधारित दर्शन नहीं है। इस्लाम और ईसाई मत की भाँति वह मानव समाज का विभाजन पैगम्बर के अनुयाइयों के आधार पर अल्लाह और शैतान की पार्टी में नहीं करता। वह समाज के अच्छे और बुरे व्यक्तियों की कसौटी केवल उनके शुभ और अशुभ कर्मों को मानता है। वह मानव जाति में शुभ कर्मों के प्रति प्रेम जगाने के लिये राज्य सत्ता के उपयोग के स्थान पर बौद्धिक विजय को श्रेष्ठ समझता है। संक्षेप में कहें तो वैदिक धर्म मानव समाज को जोड़ता है तोड़ता नहीं।

परन्तु हिन्दुओं ने ७० वर्ष के अन्दर ही दयानन्द को भुला कर गाँधी और विवेकानन्द को अपना लिया जिनकी अपील तथ्यों पर आधारित न होकर भावुकता और पौराणिक रूढिवादी मिथक पर आधारित है।

सम्भव है इस प्रकार की बात कहने वालों को निराशावादी, हताश, कायर और न जाने क्या क्या कहा जाय। अप्रिय सत्य कहने वालों को यह भोगना ही पड़ता है। परन्तु आने वाले तूफान की भविष्यवाणी करने वाले वैज्ञानिक को जो ऐसी भविष्यवाणी कुछ ठोस तथ्यों और विज्ञान के नियमों के आधार पर करता है निराशावादी कहकर उसके द्वारा की गई भविष्यवाणी की उपेक्षा बुद्धिमान लोग नहीं करते और समय रहते रक्षात्मक उपाय कर लेते हैं। यह पुस्तक इसी बात को ध्यान में रखकर लिखी गयी है।

दीपावली
१० नवम्बर १९९६

पुरुषोत्तम

पृष्ठ-भूमि

पैगम्बर मौहम्मद की मृत्यु ७ जून ६३२ ई. को हुई। जुलाई ६३४ में घमासान युद्ध के बाद बाईज़ैन्टाइन सेनाओं को भीषण युद्ध में हराकर अरब मुसलमानों ने लगभग पूरे फिलिस्तीन पर कब्जा कर लिया। बसरा का पतन बिना युद्ध के ही हो गया। जनवरी ६३५ ई. में अरबों ने जार्डन नदी पार की। ६ महीने के घेरे के बाद दमिश्क ने आत्म समर्पण कर दिया। ६३६ ई. में पूर्वी यूरोप की ईसाई सेनाओं की घोर पराजय के बाद मुसलमानों ने सीरिया पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया और ६४० ई. तक सम्पूर्ण सीरिया उनके अधिकार में आ गया। आठ साल के इस छोटे से अन्तराल में इतने देशों और संस्कृतियों पर विजय पाने से विश्व की आँखों में जहाँ इस्लाम का रुतबा बढ़ा वहीं मुसलमानों के आत्म विश्वास में चमत्कारिक परिवर्तन हुआ। सीरिया को शिविर बनाकर मुस्लिम सेनाओं ने आरमीनिया, मेसोपटामिया, जार्जिया और अज़रबेजान फतह कर लिये।

सीरियन घुड़सवार दस्तों से इस्लाम की सेनाओं का बल इतना अधिक हो गया कि उन्होंने आत्म विश्वास के साथ फ़ारस की राजधानी की ओर कूच कर दिया जिसका पतन ६३७ ई. में हो गया। फ़ारस का महान योद्धा जेनरल रुस्तम युद्ध में मारा गया और तिगरिस नदी के पश्चिम की तमाम उपजाऊ भूमि मुसलमानों के हाथ आ गयी। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार ९००० करोड़ दिरहम मूल्य का लूट का माल मुसलमानों के हाथ लगा।

अरब सेनाओं की विजय यात्रा चलती रही। ६४२ ई. में मिस्र जीत लिया गया। ६४९-५० ई. में फ़ारस के मुख्य शहर इश्तखार पर मुसलमानों का कब्जा हो गया। मकरान होती हुई मुस्लिम सेनायें ६४३ ई. में भारत की सीमाओं पर पहुँच गई। लगभग ७० वर्ष तक वह सिन्ध की सीमाओं से टकराती रहीं और अन्त में ७१२ ई. में सिन्ध और पश्चिमी पंजाब पर उनका अधिकार हो गया।

जहाँ पूरब में मुस्लिम सेनायें विजय करती हुई एशिया में बढ़ रहीं थीं दूसरी ओर मिस्र से अफ़्रीका होती हुई युरोप की ओर जा रही थीं। कार्थेज का ६९८ ई. में पतन हुआ किन्तु विद्रोह के कारण वह मुसलमानों के हाथ से निकल गया। परन्तु ७०५ ई. में वह वापिस आये और एटलांटिक सागर के किनारे तक पहुँच गये। इसके बाद स्पेन की बारी थी।

सेनापति तारीक ने जिब्राल्टर की खाड़ी को पार कर स्पेन में कदम रखा। पैगम्बर मौहम्मद की मृत्यु के एक सौ वर्ष के भीतर इस्लाम का साम्राज्य स्पेन से चाइना और सिन्ध तक फैल गया। तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक लगभग पूरा भारत मुस्लिम साम्राज्य में आ चुका था।

चार भीषण दुर्घटनाओं ने इस्लाम के विश्व इस्लामीकरण के सपने को भंग कर

दिया।

पहली घटना थी मुस्लिम सेनाओं की, जिनका नेतृत्व अब्दुल रहमान कर रहे थे, चार्ल्स के हाथों पराजय। स्पेन से फ्रांस की ओर बढ़ती हुई इन सेनाओं को चार्ल्स ने जिसका नाम बाद में चार्ल्स मार्टेल (मार्टेल का अर्थ हथौड़ा) पड़ गया बुरी तरह पराजित किया। अब्दुल रहमान इस युद्ध में मारा गया और रात के अंधेरे में अरब सेनायें चुपचाप अपने कैम्प को जैसा का तैसा छोड़कर भाग खड़ी हुईं। इतिहासकारों की दृष्टि में यदि इस्लाम की सेनाओं की यह पराजय न हुई होती तो समस्त यूरोप में चर्च के स्थान पर आज मस्जिदें खड़ी होतीं और बाइबिल के स्थान पर कुरान का पाठ सुनाई देता।

यद्यपि ७१८ ई. का कारडोवा का युद्ध यूरोप में इस्लाम के बढ़ते कदमों को रोकने का कारण समझा जाता है इस्लाम की वास्तविक हार उसके बाद हुई। १०८५ ई. में मुस्लिम टालेडो, १२३६ ई. में कारडोवा, १२४८ ई. में सेविले, १३४० ई. में सालेडो का एक के बाद एक पतन होता गया। "१४९२ ई. में स्पेन के ईसाइयों ने मुसलमानों के विरुद्ध वही उपाय अपनाने शुरू किये जो मुसलमानों ने उनके विरुद्ध अपनाये थे। अरेबिक पुस्तकें और हस्तलेखों की होलियाँ जलायी गयीं और धर्मान्तरित मुसलमानों का बलात ईसाई धर्म में धर्मान्तरण शुरू हुआ। उन्हें बताया गया कि उनके पूर्वज ईसाई थे और वह परिस्थितियोंवश मुसलमान हो गये थे। इसलिये वह ईसाई मत स्वीकार करें अन्यथा परिणामों को भुगतने के लिये तैयार रहें। पूरी सोलहवीं शताब्दी इसी काम में निकल गयी। १६०९ ई. में महाराज फिलिप्स ने आदेश दिया कि सभी मुसलमान स्पेन की भूमि को छोड़कर चले जायें। इतिहासकार लिखता है केवल स्पेन में ही मुस्लिम समस्या सदा सदा के लिये सुलझा ली गयी और अकेला स्पेन ही इस कहावत का अपवाद है कि इस्लाम का पौधा जहाँ एक बार रोप दिया गया वहाँ स्थायी हो गया।

दूसरी दुर्घटना

१७५७ ई. में भारत के विशाल मुस्लिम साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों का वहाँ अधिकार हो जाना इस्लाम के लिये दूसरी बड़ी दुर्घटना थी।

तीसरी दुर्घटना–

२०वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रूस द्वारा मध्य एशिया के मुस्लिम राज्यों पर कम्युनिस्ट रूस का अधिकार हो जाना तीसरी बड़ी दुर्घटना थी।

चौथी दुर्घटना

पहले विश्वयुद्ध में अंग्रेजों द्वारा जर्मनी की पराजय जिसका सहयोगी तुर्की साम्राज्य था इस्लाम के लिये चौथी बड़ी दुर्घटना थी। इस पराजय के फलस्वरूप तुर्की साम्राज्य समाप्त हो गया। खलीफा जो विश्व के समस्त मुसलमानों की सेनाओं का प्रधान सेनापति और धार्मिक गुरु समझा जाता था तुर्की से निष्कासित कर दिया गया। तुर्की में मुस्तफ़ा

कमाल पाशा का उदय हुआ। उसने इस्लामी राज्य को हटाकर धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था देश में स्थापित की।

वह समय ऐसा था कि हताश मुस्लिम नेतृत्व को विश्व में इस्लाम का भविष्य अति धुंधला नजर आने लगा था। किन्तु इसके पश्चात पाँच घटनाओं ने मुसलमानों को फिर से विश्वास दिला दिया कि अल्लाह उनके साथ है और उन्हें भूला नहीं है।

पहली शुभ घटना थी दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेज़ी, फ्रांस और डच साम्राज्य का सूर्यास्त। फलस्वरूप अफ्रीका और एशिया के सभी मुस्लिम देश और भारत विदेशी ईसाई प्रभाव से मुक्त होकर स्वतंत्र हो गये। दूसरी शुभ घटना थी हिन्दुस्तान का विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना जिससे उपजाऊ और विकसित भारत भूमि का १/३ भाग शुद्ध मुस्लिम देश हो गया। तीसरी शुभ घटना थी सोवियत रूस का विघटन होकर मध्य एशिया के रूसी मुस्लिम राज्यों का स्वतंत्र हो जाना। चौथी घटना थी अमेरिका समर्थित इरान के शाह को पदच्युत कर इमाम खुमैनी द्वारा कट्टरवादी इस्लामी राज्य स्थापित करना। पांचवीं घटना थी मुस्लिम देशों में पेट्रोलियम और एटम बम में उपयोग होने वाली यूरेनियम के विशाल भण्डार का पाया जाना।

फलस्वरूप आज इस्लाम अति बलशाली पश्चिमी देशों को चुनौती देने की स्थिति में आता जा रहा है। टर्की जो धर्मनिरपेक्ष राज्य बन गया था फिर वापिस इस्लाम की ओर लौट पड़ा है। ईरान में अमरीकी वरदहस्त के बावजूद सुदूर फ्रांस में बैठे एक मुस्लिम धार्मिक नेता ने शाह का तख्ता पलट दिया और ईरान में कट्टर इस्लामी राज्य की स्थापना हो गई। संसार ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि इस्लाम आज के युग में भी कैसा धार्मिक उन्माद उत्पन्न करने में सक्षम है?

यह नहीं भूलना चाहिये कि भारत का विभाजन भी जिसमें १० लाख से अधिक लोग मृत्यु को प्राप्त हुए इस्लामी धार्मिक उन्माद का ही परिणाम था। इस क्षेत्र के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ रहने से इन्कार कर दिया और अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। १९५३ ई. में पाकिस्तान ने अपने को विधि पूर्वक इस्लामी रिपब्लिक घोषित किया। इसके साथ साथ अफ्रीका में गैर मुसलमानों को मुसलमान बनाने का अभियान फिर शुरू हुआ। मुस्लिम देशों के शासकों पर जहाँ शरियत राज्य नहीं था शरियत राज्य घोषित करने के लिये उलमा संगठनों द्वारा जोर पड़ने लगा। मिस्र में अनवर सादात की हत्या इसी कारण की गयी। आज के युग में इस्लाम दुनिया का सबसे अधिक क्रियाशील मज़हब है।

मुस्लिम राज्यों में आपसी झगड़ों और मनमुटाव के कारण एक बुनियादी सत्य को नहीं भुला देना चाहिये : गैर मुस्लिम विश्व के विरुद्ध सभी मुस्लिम देशों में समान विचार और धार्मिक एकत्व।

यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पिछले ५० वर्ष में इस्लाम के पुर्नजागरण ने विश्व की शक्ल बदल दी है। हम चारों ओर इस्लाम के प्रचार प्रसार का एक विराट प्रोग्राम देख रहे हैं। फलस्वरूप रूस में नई मस्जिदें बन रही है। ईसाई मत के गढ़ वैटिकन

में स्वयं पोप के सहयोग और सहायता से यरुशलम के बाद संसार की सब से विशाल मस्जिद का निर्माण हो गया है। चीन में बन्द की गयी मस्जिदें फिर से खुलती जा रही हैं। हज के लिये जाने की इजाजत फिर दी जाने लगी है और लाखों की तादाद में कुरान की प्रतियाँ हवाई जहाज़ों में भरकर सउदी अरेबिया द्वारा वहाँ भेजी जा रही हैं। साम्यवाद ने इस्लाम के सामने घुटने टेक दिये हैं। अमरीका इत्यादि गैर मुस्लिम पश्चिमी देशों के मुसलमानों में बुर्के की प्रथा बढ़ रही है। शहीद आलिम सयद कुत्व का साहित्य अमेरिका के काले मुसलमानों में लाखों की संख्या में वितरित किया जा रहा है और चाव से पढ़ा जा रहा है। ग्रेट ब्रिटेन में मुसलमानों की मिनी पार्लियामेण्ट के समाचार अभी कुछ दिन हुए समाचार पत्रों में छपे थे। विशाल प्रोपेगेण्डा साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है। उसमें इस बात पर बल दिया जा रहा है कि विश्व में सभ्यता के जन्म का प्रारम्भ इस्लाम द्वारा किया गया। इस्लाम समस्त विज्ञान और कलाओं का जन्मदाता है। वह शांति और सहनशीलता का धर्म है जो समाज में सद्भाव और समभाव उत्पन्न करने पर बल देता है।

इस प्रकार के साहित्य का दूसरा ध्येय यह सिद्ध करना है कि असहनशीलता, रक्तपात और बलपूर्वक धर्मान्तरण इत्यादि के जो आरोप इस्लाम के विरुद्ध लगाये गये हैं वह झूँठ हैं। पश्चिमी शिक्षा के फलस्वरूप ईसाई मत की, और सार्थक धार्मिक शिक्षा के नितान्त अभाव में हिन्दू धर्म की पकड़ अपने अनुयाइयों पर ढीली होती जा रही है। ऐसे कुछ लोगों को जो धार्मिक स्वभाव के हैं इस्लाम पसन्द आने लगा है। अनेक फ्रांसीसी बुद्धिजीवी मुसलमान हो गये हैं। इस्लाम को दूसरे मतों से कहीं बेहतर और सूफियों को पहुँचे हुए धर्म निरपेक्ष आध्यात्मकि संतों के रूप में पेश और स्वीकार किया जा रहा है। इस वृहद प्रचार से प्रभावित और इस्लाम के वास्तविक दर्शन से अनभिज्ञ बहुत से गैर–मुस्लिम बुद्धिजीवी भी यह भ्रम फैला रहे हैं कि इस्लाम का दूसरे धर्मों के साथ समन्वय और शांतिपूर्वक सहअस्तित्व सम्भव है। ऐसे लोगों को चेतावनी देते हुए फ्रेंच विद्वान जैक्स एल्लूल, बात्योर द्वारा लिखित पुस्तक "द धिम्मी" के प्राक्कथन में कहते हैं : "किसी को यह बात पसन्द हो या न पसन्द हो इस्लाम अपने को विश्वधर्म के रूप में देखता है। उसकी घोषणा है कि वह अकेला ही सत्य धर्म है जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य होना चाहिये। हमें कोई भ्रम नहीं रहना चाहिये कि विश्व का कोई भाग भी (इस्लामीकरण से) नहीं बचेगा। अब जबकि इस्लाम के पास अनेक स्वतंत्र राज्य हैं और सेना है और आर्थिक शक्ति है वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और संयुक्त राज्य अमेरिका समेत सम्पूर्ण विश्व पर छा जाने का प्रयास करेगा। इस खतरे का (बौद्धिक स्तर पर) मुकाबला करने के लिये इस्लाम के विषय में सत्य ज्ञान, विवेक और बुद्धि की आवश्यकता है।"

इस्लामी क्रान्ति के जन्मदाता और ईरान के भूतपूर्व राष्ट्रपति अयातुल्लाह खुमैनी की यह गर्जना कोरी धमकी नहीं है:

"विश्व के शासकों को अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये कि इस्लाम को पराजित नहीं किया जा सकता। विश्व के समस्त देशों में इस्लाम विजयी होगा और कुरान की शिक्षा

पूरे विश्व पर वर्चस्व प्राप्त करके रहेगी।"

(स्रोत : १- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इस्लाम, २- बात्यौर : द धिम्मी, ३- एडवर्ड मार्टिमर : फ़ेद एंड पावर।

इस्लामी पुनरूत्थान

इस्लामी पुनरुत्थान की तीन महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं। पहली विशेषता यह है कि यह लहर एक साथ सभी मुस्लिम देशों में उठी। कोई भी मुस्लिम देश इससे अछूता नहीं रहा। दूसरी विशेषता यह है कि यह लहर सब देशों में १९७०-१९८० के दशक में एक साथ उठी। तीसरी विशेषता यह है कि इन सभी देशों में गैर-इस्लामी संस्कृति के विरुद्ध एक जैसी रुढ़िवादिता, आक्रामकता और आतंकवाद का जन्म हुआ।

इन घटनाओं का एक ही कारण था: पेट्रोल तेल निर्यात करने वाले १८ देशों में से १६ मुस्लिम थे। जब इन देशों ने विदेशी कम्पनियों को निकाल कर तेल का कारोबार अपने हाथ में लिया उन्होंने तेल की कीमते मनमानें ढंग से बढ़ानी शुरू कीं। १९७० के अंत तक तेल की कीमत ९९ सेन्ट प्रति वैरल से अधिक नहीं थी। सितम्बर १९७३ में यह २.०१ डालर हो गई। जनवरी १९७४ में ९.२७ डालर, १९८० में ३४ डालर हो गई। कीमतों में वृद्धि होने के साथ-साथ विश्व में उद्योगों की बढ़ोत्तरी के कारण कोयले के स्थान पर तेल का उपयोग बढ़ा और उसके साथ उसकी माँग भी। सऊदी अरब में १९७० में ३५ लाख वैरल तेल का उत्पादन हुआ था जो १९७३ में ७३ लाख और १९८० में १०० लाख वैरल हो गया। सहसा हुई इस स्वर्ण वर्षा का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि सऊदी अरेबिया ने तेल से १९७० में १.२, १९७४ में २९ और १९८१ में १०१ बिलियन डालर कमाये।

तेल के कारण आमदनी के साथ साथ उन देशों का राजनीतिक महत्व भी बढ़ गया क्योंकि विकसित देशों के उद्योग तेल की आपूर्ति पर निर्भर थे। तेल के बदले में फ्रांस ने ईराक को हथियार और अणु प्रौद्योगिकी बेंची। पश्चिमी यूरोप के देशों और जापान ने अरब देशों को प्रसन्न करने के लिये इजरायल के विरुद्ध वक्तव्य दिये।

इस अटूट धन से यह पेट्रोल उत्पादक देश विदेशी सामान के बड़े ग्राहक बन गये। विदेशी कम्पनियाँ भी इनके यहाँ बड़े-बड़े ठेके पाने के लिये लालायित रहने लगीं। इन ठेकों के पाने के लिये विकसित और विकासशील देशों में बड़ी प्रतिस्पर्धा है। पेट्रोल उत्पादक देश सस्ते ब्याज पर विदेशों को ऋण भी देते हैं, जिनमें यूरोप और जापान इत्यादि देश भी शामिल हैं। स्वाभाविक है कि इसके कारण भी अरब देशों का रुतबा सब देशों में बढ़ गया है और इनके शेखों को कोई देश अप्रसन्न करना नहीं चाहता।

यह सभी देश धर्मनिष्ठ मुस्लिम देश हैं इसलिये इन्होंने अपने नये राजनीतिक महत्व का उपयोग अमेरीका, यूरोप और विश्व के सभी देशों में इस्लाम के प्रचार प्रसार के लिये किया है। काफिर देशों में मुस्लिम अल्पसंख्यकों के धर्म और संस्कृति की रक्षा के नाम पर अरबों डालर इन पेट्रोलियम देशों से भेजे जा रहे हैं। भारत के पड़ोसी देशों में बर्मा

एक बौद्ध देश है। वहाँ इस समय बौद्ध सैनिक शासन है। बर्मा में मुसलमान केवल ४ प्रतिशत हैं। वह पूरब में मुस्लिम बांग्लादेश से और पश्चिम में मलेशिया से साँठ–गाँठ करते रहते हैं। बांग्लादेश में जब जियाउर्रहमान राष्ट्रपति बने तो उनको और बांग्लादेश की जमाते इस्लामी नामक कट्टरपंथी मुस्लिम संस्था को बर्मीज मुसलमानों की सहायता के लिये और इस्लाम के प्रचार प्रसार के लिये सऊदी अरेबिया आदि देशों से बड़ी मात्रा में धन मिला। इस धन का उपयोग बांग्लादेश में भी हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन के लिये विविध तरीकों से किया गया।

इस्लाम के पुनर्जागरण में पेट्रोलियम शक्ति की भूमिका के महत्व को और उसके भारत के इस्लामीकरण में उपयोग का सही आकलन नहीं किया गया है। सऊदी अरब, कुवैत और लीबिया जैसी पेट्रोल शक्तियाँ एक ओर मुस्लिम देशों में कट्टरपंथी शरियत शासन स्थापित करने और उन्हें रुढ़िवादी इस्लाम की ओर मोड़ने के लिये अटूट प्रयास कर रही हैं। दूसरी ओर गैर मुस्लिम देशों में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की दशा सुधारने और वहाँ इस्लाम के प्रचार प्रसार के लिये प्रयासरत हैं। इस्लामी साहित्य के प्रकाशन और वितरण में बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता दी जा रही है। ध्येय वही है : पृथ्वी पर कुफ्र को समाप्त कर अल्लाह का राज्य (शरियत कानून) स्थापित करना।

जो शासन अरब देशों से ऋण लेते हैं अथवा पेट्रोल खरीदते हैं उनको अपने देशों में इस्लाम की रक्षा करना और इस्लाम के प्रचार प्रसार के विरुद्ध आंखें बन्द करना आवश्यक हो जाता है। वह विविध प्रकार से इस्लाम की प्रशंसा करने लगते हैं और अपने देशों के इस्लामीकरण में बाधा डालने वाले तत्वों और संगठनों की निन्दा करना उनके लिये अनिवार्य हो जाता है। इस्लाम और मुसलमानों को प्रताड़ित करने के नाम पर ऐसे व्यक्तियों और संगठनों के विरुद्ध शासन गरजने व बरसने लगते हैं। इस स्थिति का लाभ उनके मुस्लिम नागरिक उठाते हैं। छोटी मोटी बातों, निर्दोष ऐतिहासिक शोध को भी इस्लाम की तौहीन कह कर दूसरे वर्ग के लोगों को दंडित और इस प्रकार के साहित्य पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की जाने लगती है।

इस्लाम के पुनरुत्थान में पेट्रो डालर की भूमिका सर्वत्र दिखायी दे रही है। भारत में भी १९७० के बाद हिन्दू मुस्लिम दंगों और धर्मान्तरण की बाढ़ सी आयी है। १९७० के पश्चात मुस्लिम दंगाई न केवल हिन्दुओं पर अपितु सशस्त्र पुलिस पर भी आक्रमण करने लगे हैं। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी को कहना पड़ा था "अपार अरब धन देश में आ रहा है। उसका उपयोग अति दरिद्र हिन्दुओं और अधिकतर अछूतों को मुसलमान बनाने के लिये किया जा रहा है।" प्रधानमंत्री ने इतना कहकर हिन्दू राजनीतिज्ञों को प्रसन्न कर दिया परन्तु इस धन पर कोई प्रभावी रोक नहीं लगाई। फलस्वरूप धर्मान्तरण का कार्य सामूहिक के स्थान पर चोरी छिपे व्यक्तिगत स्तर पर चलने लगा।

(**स्रोत** : प्रो. डैनियल पाइप्स : इन द पाथ ऑफ गॉड)

१

प्रत्यक्षं किम प्रमाणं

क्या भारत इस्लामिस्तान बनने जा रहा है? इस प्रश्न का उत्तर हिन्दुस्तान के शासकों और नेताओं के आचरण (अथवा दुराचरण) पर निर्भर करता है क्योंकि देश के भाग्य विधाता वह ही हैं।

चर्चिल ने कहा था : "तुम पीछे मुड़कर जितना अपना भूतकाल देख सकते तो उतना ही आगे आने वाले भविष्य को देख सकते हो।" इसमें सन्देह नहीं है कि भूतकाल में इस भू–भाग का इस्लामीकरण होता रहा है। वृहद् भारत के भू–भाग अफगानिस्तान, मालद्वीप, इंडोनेशिया, मलेशिया, जावा, सुमात्रा इत्यादि पिछले १००० वर्ष में मुसलमान हो गये। इसके पश्चात् पंजाब का पश्चिमी भाग, सिन्ध, बलूचिस्तान तथा पूर्वी बंगाल केवल ४९ वर्ष पहले मुसलमान हो गये। काश्मीर को जो पहले ही मुसलमान हो गया था हिन्दुस्तान से काटने के लिये खून की नदियाँ बहाई जा रही हैं। इस भूतकाल के इतिहास को देखकर लगता है कि हिन्दुस्तान निकट भविष्य में ही इस्लामिस्तान हो जायेगा, क्योंकि परिस्थितियाँ बदली नहीं हैं। हिन्दू नेतृत्व ने इतिहास से कुछ भी नहीं सीखा है। कायर कहा जाने वाला हिन्दू समाज इन ५० वर्षों में कमजोर हुआ है। विदेशी कर्ज़ा, विदेशी हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, दुराचार, कर्तव्यहीनता बढ़े हैं। अनुशासन लुप्त प्रायः हो गया है। हम "मेरा भारत महान" के कितने ही गीत गायें साधारण से साधारण नागरिक भी समझने लगा है कि हम कितने महान हैं?

हिन्दुस्तान इस्लामिस्तान बनेगा इस वाक्य से निश्चय ही हमारे धर्मनिरपेक्ष नेता, पत्रकार, शासक भड़क उठेंगे। ऐसा कहने वाले को वह घोर निराशावादी और साम्प्रदायिक होने का फतवा दे डालेंगे। हिन्दुत्ववादी नेतृत्व कह पड़ेगा हमारे मृत शरीर पर ही यह सम्भव होगा। किन्तु भूलिए मत, पाकिस्तान बनने से केवल एक वर्ष पहले १९४६ तक गाँधी, नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद इत्यादि सभी हमारे सर्वज्ञ और समर्थ नेता यही कहते रहे थे। किन्तु हुआ क्या? उन सबको झुठला कर पाकिस्तान बना और न केवल जीवित है अपितु उसने भारत की नींद हराम कर रखी है। इतिहास और तथ्यों से अनभिज्ञ अथवा आँखें चुराने वाले लोगों का यही हश्र होता है।

असुविधाजनक तथ्यों और इतिहास से देश को अनभिज्ञ रखा जा रहा है। जानबूझ कर गुमराह किया जा रहा है। भारतीय बच्चों को क्या पढ़ाया जाय उसके लिये पाठ्य पुस्तक लेखकों के मार्ग दर्शन के लिए एन.सी.ई.आर.टी. के आदेश इण्डियन एक्सप्रेस नई दिल्ली दिनाँक १७ जनवरी १९८२ के अनुसार : "इतिहास और भाषा की उन अवाँछित पाठ्य पुस्तकों को प्रतिबंधित करना और उनमें से इस प्रकार के विषयों को निकाल देना

जो राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक हैं और जिनसे सामाजिक समरसता में बाधा पड़ती है------२७ राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों ने इस मार्गदर्शन के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया है।" पश्चिमी बंगाल के बोर्ड आफ सेकेन्डरी एजुकेशन की २८ अप्रैल १९८९ की विज्ञप्ति के अनुसार स्कूलों और प्रकाशकों को "भारत में मुस्लिम शासन" के विषय को पढ़ाने के लिये कुछ सुझाव दिये गये हैं। कहा गया है कि : "Muslim rule should not attract any criticism, Destruction of temples by muslim invaders and rulers should not be mentioned" अर्थात् मुस्लिम शासन काल की कोई निन्दा न की जाय। मुस्लिम आक्रांताओं और शासकों द्वारा मन्दिरों को ध्वस्त करने का नाम न लिया जाय। पश्चिमी बंगाल का शासन जिसका एक अंग काटकर बांग्लादेश बना, जहाँ हिन्दू बंगाली ३२ प्रतिशत से घटकर ५० वर्ष में १२ प्रतिशत रह गये आदेश देता है "Schools and publishers have been asked to ignore and delete mention of forcible conversion to Islam." अर्थात् स्कूलों और पुस्तक प्रकाशकों को कह दिया गया है कि बलपूर्वक इस्लाम में धर्मान्तरण की घटनाओं को अनदेखा किया जाय और उनके विवरण पुस्तकों में से निकाल दिये जाँय [१]?

ऐसी परिस्थितियों में जहाँ शासन ही सत्य को छिपाने और झुठलाने में लगा हो झूठ बोलना और लिखना ही लाभप्रद होता है। कितने लोग हैं जो इस लोभ का मोह त्याग कर झूठ से मिलने वाले शासकीय पारितोषिकों को ठुकरा सकते हैं? इसलिये पुस्तकालय और पुस्तक विक्रेताओं की दुकानें असत्य अथवा भ्रष्ट इतिहास की पुस्तकों से पट गयी हैं। मीडिया भी सत्य को छिपाने में ही लाभ देखता है। सरकारी सुख सुविधाओं का मोह त्याग अनेक कठिनाइयों को कौन न्यौता देगा?'

स्वतंत्रता की बेला में (दुष्ट) चर्चिल ने हमारे माननीय नेताओं को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में एक अति कटु बात कही थी। 'स्वतंत्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है किन्तु इस समय कांग्रेस (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) को शासन की बागडोर सौंपना (भारत के) करोड़ों भूखे लोगों की नियति को (Rascals) बदमाशों (Scoundrels) धूर्तों और (Bootleggers) लुटेरों के हाथों में सौंप देना है। पानी की एक बोतल और एक-एक रोटी भी टैक्स मुक्त नहीं रहेगी। टैक्स मुक्त होगी तो केवल वायु (और वह भी दुर्गन्धयुक्त और दूषित--लेखक) भारत आपसी झगड़ों में नष्ट हो जाएगा। हिन्दू नेताओं को राजनीति के प्रारंभिक पाठ सीखने में सहस्रों वर्ष लगेंगे। आज के दिन हम भारत का शासन तिनकों जैसे नेताओं को सौंपने जा रहे हैं जिनका कुछ ही वर्षों पश्चात् कहीं अस्तित्व नहीं रह जाएगा।"

निश्चय ही चर्चिल ने हमारे "महान नेताओं" की घोर निन्दा की है। इसका कारण उसका द्वेष और अविवेक भी हो सकता है। किन्तु निन्दक को "कुटी छवाय नियरे रखने की बात क्या नितान्त निरर्थक है?" क्या चर्चिल ने असत्य ही कहा था? किन्तु अम्बेडकर पर तो भारत के प्रति द्वेष अथवा अविवेक का दोष नहीं मढ़ा जा सकता। अम्बेडकर ने

मुसलमानों को सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ कहा है।[२] जिन्नाह को निहायत ईमानदार बताया है।[३] यह अकारण तो नहीं हो सकता। विपरीत विचार रखने वालों की सत्य बात कटु लगती है। किन्तु उससे उसकी सत्यता कम नहीं हो जाती। मौलाना मौहम्मद अली ने १४ जुलाई १९११ को "कॉमरेड" में लिखा था : "इस अभागे देश में (हिन्दू-मुस्लिम) एकता स्थापित करने के सद्भावनापूर्ण तथा दुखान्त इतने प्रयास हो चुके हैं कि हम इस प्रकार के तर्कहीन किसी नये प्रयास की समाधि पर भावुकता के सुगन्धहीन और सस्ते पुष्प चढ़ाने के भी इच्छुक नहीं हैं।

"हम टूटे हुए काँच के टुकड़ों को गोंद से चिपकाने की भूल कर अपने प्रयास पर आँसू बहाते हुए काँच के न चिपकने वाले दोष को नहीं कोसेंगे। दूसरे शब्दों में हम (विपरीत) परिस्थिति का डट कर सामना करेंगे और तथ्यों का आदर करेंगे भले ही वह कितने ही भयावह और हमारे विरुद्ध हों। असुविधाजनक तत्यों से आँखें चुराना निकृष्ट राजनीति है। एकता स्थापित करने के लिए ईमानदारी के साथ उन मूलभूत तथ्यों को मुक्त कंठ से स्वीकार करना कम आवश्यक नहीं है जो इस एकता के मार्ग में बाधा हैं।[४]

स्वतंत्रता के ४८ वर्ष के पश्चात् भी हम देखते हैं कि भारतीय नेतृत्व उन असुविधाजनक परन्तु मूल भूत तथ्यों को जनता के समक्ष रखने, उन पर सार्थक और सार्वजनिक बहस करना तो दूर उन्हें एन.सी.ई.आर.टी. तथा पश्चिमी बंगाल की सरकार के उपरोक्त आदेशों द्वारा खुले तौर पर और अनेकों दूसरे छिपे अथवा अर्ध-छिपे प्रयासों द्वारा छुपाने के प्रयास में उसी प्रकार संलग्न है जैसा भारतीय कांग्रेस ने ६५ वर्षों तक इन प्रयासों द्वारा पाकिस्तान बनवाया था। और अब पाकिस्तान बनने का दोष अंग्रेजों, मुस्लिम लीग, जिन्नाह, इत्यादि के सिर मढ़ उस दोष से मुक्त होना चाहती है।

वास्तविकता यह है कि पाकिस्तान का निर्माण तो इस्लाम ने करवाया। काश्मीर में जो कुछ हो रहा है वह इस्लाम के दर्शन के अनुसार ही हो रहा है। और यही अत्यन्त संक्षेप में वह कटु और असुविधाजनक सत्य है जिसे हमारा नेतृत्व स्वीकारने और सामना करने से आँखें चुराता रहा है। विश्व में ऐसा कौन सा देश है जहाँ मुसलमानों का एक वर्ग काफिरों के विरुद्ध (अथवा उस वर्ग के विरुद्ध जिसे वह काफिर समझता हो) युद्धरत न हो? कुरान और हदीस के अनुसार मूर्ति और बहु देवता पूजक हिन्दू तो सबसे निकृष्ट काफिर हैं। साइप्रेस का बँटवारा क्यों हुआ? मुस्लिम बहुल मिस्र, अलजीरिया, लेबनान, ईराक, ईरान, बांग्ला देश, पाकिस्तान में कहीं इसाईयों से तो कहीं अपने ही ७० से ऊपर फिर्कों में से किसी एक के विरुद्ध खूंखार रक्तपात क्यों हो रहा है? आखिर इस्लाम चाहता क्या है? यह मूलभूत प्रश्न करना और उसका उत्तर इस्लाम के सर्वमान्य ग्रन्थों, विद्वानों की पुस्तकों, लेखों और वक्तव्यों तथा इतिहास में ढूंढ़ना क्या साम्प्रदायिकता और अक्षम्य राजनीतिक अपराध है? जहाँ तक मुसलमानों का प्रश्न है वह अपना पक्ष मौखिक रूप से और वास्तविक व्यवहार में अनेक बार स्पष्ट कर चुके हैं। जमाते इस्लामी के मुख पत्र "रैडियन्स" ने लिखा था कि भारत में हिन्दू मुस्लिम समस्या तभी समाप्त होगी जब सभी

भारतवासी एक ही धर्म ग्रहण कर लें।" (४क)

यह कट्टरवादी जमाते इस्लामी के ही विचार नहीं है। सर सैय्यद अहमद, हकीम अजमल खाँ, मौलाना मदनी, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे उदारवादी कहे जाने वाले मुस्लिम नेता भी विविध प्रकार से ऐसा कहते रहे हैं। इस्लाम का थोड़ा सा भी अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सब लोग जो कहते हैं वह इस्लाम के स्वाभाविक चरित्र के अनुसार ही कहते है। १२५० वर्ष पहले अफगानिस्तान १०० प्रतिशत हिन्दू था। काफरिस्तान मूर्ति पूजक था। ८०० वर्ष पहले मलाया, इण्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा आदि पूर्वी द्वीप समूह १०० प्रतिशत बौद्ध और हिन्दू थे। यह सभी देश जो वृहत्तर भारत के अंग थे आज मुस्लिम देश है। ९०० वर्ष पहले पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, काश्मीर, पूर्वी बंगाल १०० प्रतिशत हिन्दू और बौद्ध थे। वह धीरे-धीरे मुस्लिम बहुल हो गये। फलस्वरूप ५० वर्ष पहले भारत का १/३ भाग कट कर मुस्लिम देश बन गया। भारत के इस्लामीकरण की इस प्रक्रिया के कारक तत्व और इस्लाम की मान्यतायें बदली नहीं है। यह प्रक्रिया आज भी जारी है।

इसलिये भारत का इस्लामीकरण तो हमारे सामने ही होता जा रहा है। यदि हम देखकर भी उसे नहीं देख पा रहे हैं तो यह हमारा दृष्टि दोष ही है।

प्रत्यक्षं किम प्रमाणं? प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या?

इस्लाम केवल एक मजहबी प्रार्थनाओं का संग्रह नहीं है अपितु एक पूर्ण प्रणाली है जो अपना एक सुधारात्मक प्रोग्राम नाफ़िज़ करना चाहता है--------इस्लामी जमाअत जिसका दूसरा नाम "उम्मते मुस्लिमा (मुस्लिम समुदाय) है वजूद में आते ही अपने जीवन उद्देश्य के लिये जिहाद शुरू कर देती है। इसके वजूद में आने का तकाज़ा यही है कि यह ग़ैर इस्लामी हुक्मरानी को मिटाने की कोशिश करे और इसके स्थान पर सामाजिक व सामूहिक जीवन की उस हुकूमत को कायम करे जिसे कुरान एक जामा (सम्पूर्ण) शब्द "कलिमतुल्ला" से प्रकट करता है-- ये मज़हबी तबलीग करने वाले वाईजीन (प्रीचर और मिशनरीज) की जमाअत नही है बल्कि खुदाई फौजदारों की जमाअत है--(आयत) (अनुवाद)। उनसे जंग करो यहाँ तक कि फ़ितना (कुफ्र जो सब से बड़ा बिगाड़ है) बाकी न रहे और इताअत (आज्ञाकारिता) सिर्फ़ खुदा के लिये हो जाये अर्थात अल्लाह की मान्यता और जीवन विधि जैसे इस्लाम बतलाता है, कायम हो जाए।

(मौदूदी : जिहाद फीसबीलिल्लाह-पृष्ठ 22 से 24)

२

क्या यह सम्भव है?

यदि विश्व के २० देशों में इस्लाम ९५ प्रतिशत गैर मुस्लिमों को निर्मूल करने में सफल हो गया है तो भारत में क्यों नहीं? कहा जा सकता है कि विश्व के इस्लामीकरण का वह ज़माना समाप्त हो गया। अब कोई देश किसी दूसरे को गुलाम नहीं बना सकता। जिस प्रकार इस्लाम सातवीं शताब्दी के मध्य से १८वीं शताब्दी तक करोड़ों लोगों को मुसलमान बनाने में सफल हो गया वह अब सम्भव नहीं है। ऐसे लोगों को अपने समय की ही दो–चार घटनाओं की ओर ध्यान देना लाभदायक होगा बशर्ते कि वह उससे कुछ सीखना चाहें।

तिब्बत पर चीन ने अधिकार जमाकर वहाँ की संस्कृति को ५० वर्ष से कम में ही बदल डाला। अपने–अपने स्वार्थ के कारण विश्व के सभी देश मूक बनकर यह अत्याचार देखते और सहन करते रहे। तिब्बत की सहायता के लिए कोई आगे नहीं आया। आर्जेन्टाइना ने फॉकलैंड द्वीप समूह की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। ब्रिटेन ने सैनिक बल पर उसे स्वतंत्र नहीं होने दिया। चीन में सहस्त्रों नवयुवकों ने जनतंत्र लागू करने के लिए धरना दिया। उन्हें सैनिकों ने टैंकों से कुचल डाला। क्या कोई देश इस अत्याचार के विरुद्ध खड़ा हुआ? कहा जा सकता है कि यह तो संसार की महाशक्तियाँ थीं। अपनी मनमानी करने में सफल हो गयीं। मुस्लिम देश इतने बलवान नहीं हैं कि चीन अथवा ब्रिटेन या अमेरिका की भाँति ज़ोर जबरदस्ती कर सकें।

किन्तु इस्लाम को तो तलवार उठाने की भी आवश्यकता नहीं है। यह सत्य है कि इस्लाम तलवार के बल पर भी फैला है किन्तु अनेक देश ऐसे भी हैं कि जहाँ इस्लाम की सेनायें कभी नहीं गयीं। किन्तु यह अब मुस्लिम देश हैं। इण्डोनेशिया, मलेशिया, मालद्वीप जैसे तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे। भारतवर्ष में भी मुस्लिम राज्य समाप्त होने के बाद २०० वर्ष तक इस्लाम फैलता रहा और सहस्त्रों की संख्या में हिन्दू मुसलमान होते रहे। आज भी हो रहे हैं। पाकिस्तान में ५० वर्ष में हिन्दू और सिख लगभग निःशेष हो गये। पाकिस्तान द्वारा हथियाये गये काश्मीर में एक भी हिन्दू और सिख शेष नहीं रहा। बांग्लादेश में हिन्दुओं की जनसंख्या ५० वर्ष से कम में ३२ प्रतिशत से घटकर १२ प्रतिशत रह गयी। कोई मानवाधिकार संस्था यह पूछने नहीं आई कि इन देशों से यह सब हिन्दू कहाँ चले गये? क्या विश्व के किसी देश ने राष्ट्रसंघ में इस प्रश्न पर आपत्ति करना तो दूर कोई प्रश्न भी पूछा। इन गुम हुए लोगों पर तलवारें नहीं चलीं। काश्मीर से हिन्दू और बांग्लादेश से चकमा बौद्ध क्यों भाग आये? किस देश ने उन्हें वापिस जाने और सम्मानपूर्वक अपने देश में रहने के लिये उनकी सहायता की? साइप्रस के ईसाई और मुस्लिम बँटवारे को इतना बड़ा और

शक्तिशाली ईसाई समाज क्यों नहीं रोक पाया? वहाँ के मुसलमान किसी समय के अपने ही देशवासियों से धर्म के नाम पर टूट कर अलग क्यों हो गये? बोस्निया और हर्जगोबिना में ईसाईयों और मुसलमानों में देश के बंटवारे के लिये वर्षों से भयानक युद्ध क्यों हो रहा है? ईसाईयों की मक्का बैटिकन में संसार की सबसे बड़ी मस्जिद बनाने में इस्लाम क्यों और कैसे सफल हो गया है? इसलिए यह स्मरण रखना चाहिये कि भारत के इस्लामीकरण में विश्व के किसी देश को आपत्ति नहीं होगी। मुस्लिम देशों को तो भारत के इस्लामनिस्तान बनने पर हर्ष होना स्वाभाविक है। मीनाक्षीपुरम् के सामूहिक धर्म परिवर्तन के लिये धन कुवैत से आया था। नई मस्जिदों के निर्माण और मकतवों के लिये साऊदी अरेबिया का संगठन 'वर्ल्ड मस्जिद कान्फ्रेन्स मक्का' खुले हाथ से खर्च कर रहा है।

सन् १९८२ में छपी रोमन कैथोलिक ईसाइयों की वर्ल्ड क्रिश्चियन एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार भारत में लगे ईसाइयों के १,२४,४७९ कार्यकर्ता लगभग १,७५,००० हिन्दुओं का प्रतिवर्ष धर्मान्तरण करते हैं। इस कार्य के लिये अनेक क्रिश्चियन देश भारी धन खर्च करते हैं। जनसंख्या की रिपोर्टों को झुठलाया नहीं जा सकता। हिन्दू भारत में १९५१ से १९६१ तक हिन्दुओं की संख्या २०.२९ प्रतिशत बढ़ी। इस समय में मुसलमानों की संख्या २३.६७ प्रतिशत बढ़ी। हिन्दुओं ने परिवार नियोजन अपनाया मुसलमानों ने उसे अपने धर्म विरुद्ध बताकर नामंजूर कर दिया। बांग्लादेश से घुसपैठिये भी आये। फलस्वरूप १९६१ से १९७१ तक जहाँ हिन्दू २३.६९ प्रतिशत बढ़े तो मुसलमान ३०.८५ प्रतिशत बढ़े। १९७१ से १९८१ तक हिन्दू २४.१५ प्रतिशत बढ़े तो मुसलमान ३०.५९ प्रतिशत बढ़े। १९८१ से १९९१ तक के आंकड़े उपलब्ध नहीं है किन्तु गैर-सरकारी तौर पर पता लगा है कि इस दशक में हिन्दू २२.५१ प्रतिशत बढ़े और मुसलमान २६.१ प्रतिशत बढ़े। मुसलमानों ने इस प्रकार संख्या की दौड़ में न केवल हिन्दुओं के ऊपर अपनी वरीयता कायम रखी अपितु उनसे आगे निकलने की अपनी गति बढ़ा दी।

गणित झूठ नहीं बोलता। इस रफ्तार से ५० नहीं तो १०० वर्ष बाद १०० नहीं तो २०० वर्ष बाद भारत में हिन्दू निःशेष हो जायेगा यह गणित सत्य है। किसी राष्ट्र के जीवन में १००-२०० वर्ष कोई लम्बा समय नहीं होता।

भारत का इस्लामीकरण तो उसी दिन प्रारम्भ हो गया था जिस दिन प्रथम मुसलमान ने भारत भूमि पर मालाबार के तट पर पैर रखा था। किन्तु उसका दृष्टव्य इस्लामीकरण मौहम्मद-बिन-कासिम के ७१२ ई. में सिंध आक्रमण से प्रारम्भ हुआ। यह भारत के इस्लामीकरण का पहला चरण था। दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ महमूद गजनवी के १००१ ई. में आक्रमण से। १७५७ में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय के समय यह चरण समाप्त होकर तीसरा चरण प्रारम्भ हुआ। १५ अगस्त १९४७ को भारत के विभाजन पर यह चरण समाप्त हो गया क्योंकि इसके बाद परिस्थितियाँ फिर बदल गईं थी।

चौथा चरण उस दिन प्रारम्भ हुआ जब अम्बेडकर और जिन्नाह का हिन्दू-मुस्लिम

आबादी की अदला-बदली का संयुक्त सुझाव हिन्दू नेतृत्व ने अस्वीकार किया और गाँधी जी ने आमरण उपवास द्वारा सुनिश्चित किया कि मुसलमान इस देश में न केवल समान नागरिक बन कर रहेंगे अपितु उन्हें अपने मत प्रचार द्वारा हिन्दुओं के धर्मान्तरण का मूल अधिकार होगा और वह अपने बच्चों को अबाध रूप से धर्म के नाम पर ऐसी शिक्षा देने को स्वतंत्र होंगे जिससे उसी मानसिकता का निर्माण होता है जिसने पाकिस्तान बनवाकर भारत के १/३ भाग का इस्लामीकरण किया था। बाद में भारतीय संविधान ने इस पर अपनी मोहर लगा दी। यह चौथा चरण इस समय चल रहा है। भविष्य बतायेगा कि यह कब समाप्त होगा। पुस्तक के अंतिम खण्ड में हम इसकी प्रगति पर विचार करेंगे।

अम्बेडकर और हिन्दू-मुस्लिम एकता

अम्बेडकर जो भी हों एक प्रतिभाशाली और अध्ययनशील व्यक्ति थे इससे उनके विरोधी भी इन्कार नहीं कर सकते। वह हिन्दू दर्शन के कुछ अंशों और हिन्दू नेतृत्व से भी रुष्ट थे यह भी सर्वविदित है। उनके द्वारा हिन्दू धर्म त्याग कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का भी यही कारण है। वह किसी प्रकार भी मुसलमानों के शत्रु नहीं कहे जा सकते। उन पर कभी यह आरोप नहीं लगाया गया। इसलिये इस्लाम और मुसलमानों के विषय में की गई उनकी टिप्पणियाँ इतनी महत्वपूर्ण तो समझी ही जानी चाहियें कि उन पर विचार किया जाय, उनका अन्वेषण किया जाय।

अपनी पुस्तक "पाकिस्तान" में जो १९४० में प्रकाशित हुई थी वह पूछते हैं : "इस दुखान्त घटना का, इस हिन्दू-मुस्लिम एकता के अनेक प्रयासों की असफलता का वास्तविक कारण क्या है?" फिर अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए वह लिखते हैं : "हिन्दू मुस्लिम एकता के इन प्रयासों की असफलता का वास्तविक कारण इस तथ्य से अनभिज्ञता (अथवा उसको न स्वीकारना) है कि हिन्दू-मुसलमान के बीच जो विरोध है वह केवल साधारण मत विरोध नहीं है। इसके कारण भौतिक नहीं हैं। इसके कारण आध्यात्मिक हैं। इस (विरोध) का उद्‌गम ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विद्वेष है। राजनीतिक विद्वेष तो उसकी परछाई मात्र है। हिन्दू-मुसलमानों के बीच इस विद्वेष भावना के होते उनमें एकता की आशा करना अस्वाभाविक है।"(५)

मुस्लिम बंधुत्व एक ढकोसला :

मुस्लिम बंधुत्व का मजाक बनाने की जिसे मुस्लिम राष्ट्रवाद अथवा पैन इस्लामिज्म भी कहा जा सकता है एक खतरनाक परिपाटी चल पड़ी है। हमारे बुद्धिजीवी, मीडिया और राष्ट्रीय प्रेस के कुछ स्तम्भ लेखक उसमें अत्यन्त रुचि ले रहे हैं। किन्तु सत्य क्या है? पश्चिमी जगत के विकसित राष्ट्र ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका अपनी भूमि पर उभरते अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामवाद से चिंतित हैं। कभी का सशक्त राष्ट्र सोवियत रूस तो अपने मुस्लिम राज्यों में प्रारम्भ हुए विद्रोह के कारण बिखर ही चुका है।

हिज़ हाइनेस द आगा खाँ ने मुस्लिम बन्धुत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामवाद जिसका सदस्य प्रत्येक धर्मनिष्ठ मुसलमान है पैगम्बर के बच्चों के आध्यात्मिक बन्धुत्व तथा संगठन का सिद्धान्त है। यह पर्शियो–अरब संस्कृति का अथाह शाश्वत तत्व है– यह चीन से मोरोक्को तक और बांग्ला से सिहांपुर तक के मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति उदारता और शुभकामना की अभिव्यक्ति है– काशगर अथवा सराजीवो में दुर्भिक्ष या छोटी मोटी आग लगने की घटना दिल्ली अथवा कायरो (मिस्त्र) में मुसलमानों का तुरन्त ध्यान और दान आकर्षित करती है।"

मुस्लिम शासकों के आपसी भेदभावों और कभी–कभी युद्धों के उदाहरण देकर इस मुस्लिम बन्धुत्व को ढकोसला सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। इसमें भूल यह है कि मुस्लिम शासकों को मुस्लिम समाज की मानसिकता और इच्छा का प्रतीक समझ लिया जाता है। मुस्लिम शासकों के आपसी युद्ध उनकी प्रजा द्वारा अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते। मुस्लिम प्रजा को इन युद्धों के अनिच्छुक दृष्टा बना रहना पड़ता है। परन्तु मुस्लिम देश द्वारा काफिर देश पर अथवा शासक पर आक्रमण और विजय सदैव ही उनके लिये हर्षोल्लास का कारण होती है भले ही वह युद्ध के मैदान में हो अथवा शिक्षा या खेल के क्षेत्र में।

अफगानिस्तान में एक मुस्लिम फिर्का दूसरे से लड़ रहा है परन्तु वही अफगानिस्तानी एक दूसरे के विरोधी फिर्के काश्मीर में भारत की काफिर सरकार के विरुद्ध संयुक्त रूप से दूसरे मुसलमानों के साथ लड़ते पाये जाते हैं।

दैनिक जागरण लखनऊ (९ जून, १९९६) में "उर्दू अखबारों से" स्तम्भ के निम्नलिखित भाग इस प्रकार के बुद्धिजीवियों की आँखें खोलने के लिये पर्याप्त होने चाहियें।

"बीते साल के आखिरी दिन ३१ दिसम्बर को कानपुर के मुसलमान आला हज़रत इमाम अहमद रजा खाँ मौलवी की स्मृति में आयोजित कार्यक्रम में केन्द्रीय मंत्रियों को आमंत्रित किये जाने का विरोध कर रहे थे, मगर बाद में इसने हिंसक रूप ले लिया। कुल मिलाकर मुसलमानों ने एक बार फिर अपने पंथ देवबन्दी और बरेलवी के मतभेदों को भुलाकर सामूहिक रूप से कांग्रेस के प्रति नाराज़गी प्रकट कर दी।"

"साप्ताहिक नयी दुनिया" का ख्याल है कि एस.बी.चव्हाण (भारत के गृह मंत्री) ने मुसलमानों को रिझाने के लिये अलग ही रास्ता अपनाया है, जो ऐसे लोगों को साथ लेकर ऐसा काम कर रहे हैं जिनकी मुसलमानों में कोई पकड़ नहीं है। कानपुर में होने वाली हजरत इमाम अहमद रज़ा खाँ कांफ्रेस का मुख्य उद्देश्य देवबंदियों व बरेलवी मुसलमानों के बीच खाई पैदा करना था ताकि बरेलवियों का वोट प्राप्त किया जा सके। **मगर मुसलमानों ने स्पष्ट कर दिया कि किन्हीं मुद्दों पर उनमें कुछ विरोध सही मगर बुनियादी धार्मिक मसलों पर वो एक हैं जिस पर किसी प्रकार का सौदा मंजूर नहीं।** इस बात का इज़हार वो आला हजरत की मज़ार पर हाजिरी के वक्त उस कार्यक्रम को नाकाम बना के कर चुके हैं।"

दैनिक "इन दिनों" के अनुसार कांग्रेस ने मुसलमानों को मनाने के लिये मुहिम छेड़ रखी है और इस सिलसिले में इमामों की तनख्वाह, सरकारी स्कूलों के साथ अरबी मदरसों के बच्चों को दोपहर का खाना और मुस्लिम छात्रों को वज़ीफा वगैरह की स्कीमें होती हैं। इन रियायतों के अलावा भी कांग्रेस नेतृत्व सरकारी जिम्मेदारों को यदि कोई सलाह देता है तो वह बिना कोई जाँच किये उसको कुबूल कर लेते हैं। प्रधानमंत्री और गृह मंत्री की बरेली यात्रा के बाद कानपुर में मौलाना अहमद रजा खाँ के नाम से टिकट के विमोचन का प्रयास भी उसी की एक कड़ी है।"

"दैनिक सियासत जदीद" का कहना है कि प्रधानमंत्री श्री राव ने अपने सलाहकारों के कहने पर या अपनी बुद्धि से सोचकर मुसलमानों को पंथ के आधार पर विभाजित करने की नापाक साजिश की थी और उसके लिए कुछ मौका परस्तों का सहारा लिया। साथ ही ऐसा प्रभाव छोड़ा जाने लगा था कि मुसलमान जो बाबरी मस्जिद व अन्य मसलों पर पंथ तथा गुटबन्दी की सतह से ऊपर उठकर सोंचते है चुनावों के मौके पर दो हिस्सों में विभक्त हो जायेंगे और उनके वोटों का महत्व भी खत्म हो जायेगा। **मगर मुसलमानों ने "एक कलमा" के आधार पर जो एकता दिखाई है उसके लिये वो धन्यवाद के पात्र हैं। अपनी कार्यशैली से उन्होंने साबित कर दिया कि पंथ या विचारधारा में मुसलमानों में चाहे कितना विरोध रहा हो मगर मिल्लत को सुरक्षित रखने के लिये वो एक हैं।"**

सर सैय्यद अहमद ने तो खैर इस प्रश्न पर आश्वत होकर ही कह दिया था : "मान लो अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएं तो क्या उस परिस्थिति में यह सम्भव है कि हिन्दू मुसलमान एक ही सिंहासन पर बैठकर शासन में बराबरी बरतें। निश्चय ही नहीं। यह अपरिहार्य है कि उनमें से एक दूसरे को परास्त कर पददलित कर दे। यद्यपि मुसलमान संख्या में हिन्दुओं से कम है... उन्हें कमजोर न समझना। कदाचित् वह स्वयं ही अपना पद बनाये रखने में सफल हो जायेंगे। किन्तु मान लो वह ऐसा न कर सकें। उस दशा में हमारे मुसलमान भाई पठान अपने पहाड़ों की घाटियों से टिड्ढी दल की भाँति निकल पड़ेंगे। जी हाँ ! टिड्ढी दल की भाँति वह आवेंगे और उत्तर के सीमान्त से बंगाल के अंतिम छोर तक रक्त की नदियाँ बहा देंगे।"[५क]

यह सभी को मालूम है कि अफगानिस्तान में मुस्लिम विद्रोहियों को दबाने के लिये रूस ने जो अपनी मुस्लिम सेनायें वहाँ भेजी थीं वह अपने सहधर्मी विद्रोहियों से जा मिली थीं। इसी प्रकार १९४८ में जब पाकिस्तानी सेना ने सादी पोशाक में कबायलियों के साथ मिलकर काश्मीर पर धावा बोला तो महाराजा हरी सिंह ने कर्नल नारायण सिंह को उनका सामना करने के लिये भेजते समय उनसे पूछा था कि क्या वह काश्मीर सेना के मुसलमान सैनिकों पर विश्वास कर सकते हैं? कर्नल ने उत्तर दिया था : "जी हाँ हिन्दू डोगरा सैनिकों से भी अधिक" उनका यह विश्वास ही उनकी मृत्यु का कारण बना। उनकी सेना के मुसलमान सैनिक कबायलियों से जा मिले। अपने कमाण्डर का बध कर वह

पाकिस्तानी सेना और कबायलियों का मार्ग दर्शन करने लगे।

इस मुस्लिम बन्धुत्व के सत्य को अम्बेडकर अपनी सशक्त शैली में उजागर करते हुए लिखते हैं : "इस्लाम जिस कठोरता से जोड़ता है उसी कठोरता से तोड़ता भी है। इस्लाम एक बन्द कारपोरेशन (समाज) है। मुस्लिम और गैर मुस्लिम में जो भेदभाव वह निर्धारित करता है उसके कारण अत्यन्त यथार्थ और निश्चयात्मक रूप से विरोधात्पादक हैं। इस्लाम का भ्रातृत्ववाद विश्व का मानव बन्धुत्व नहीं है। यह मुसलमान का केवल मुसलमान के लिए भ्रातृत्व है। पारिवारिक सद्भावना तो है किन्तु उन्हीं के लिये जो उस इस्लामी दायरे के भीतर हैं। जो उसके बाहर हैं उनके लिये घृणा और शत्रुता के अतिरिक्त और कुछ नहीं.... मुसलमान की निष्ठा अपनी मातृभूमि के लिये नहीं है अपितु अपने मतावलम्बियों के लिये है। जहाँ भी इस्लाम का शासन है वहीं उनका अपना देश है। दूसरे शब्दों में इस्लाम इसकी अनुमति नहीं देता है कि मुसलमान भारत को अपनी मातृभूमि और हिन्दुओं से अपना बन्धुत्व स्वीकार करें। यही कारण है कि मौलाना मौहम्मद अली जैसे महान भारतीय ने भारत के बजाय येरुशलम में दफन होना पसन्द किया।" (६)

अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामवाद (पान इस्लामिज्म) जिसका दूंसरा नाम मुस्लिम भ्रातृत्ववाद है इतना ज़ोर पकड़ रहा है कि तथाकथित उदार मुस्लिम शासकों को अल्जीरिया, मिस्र, टर्की आदि देशों में उससे जान बचाना कठिन हो रहा है। भारत जैसे देश में जहाँ विश्व के अधिसंख्यक मुसलमान और मौलाना रहते हैं और जहाँ विश्व के सर्वाधिक मदरसे, मकतब और मस्जिदें है इस उभरते कट्टरवाद से जनता को सावधान करने के स्थान पर उसकी उग्रता और खतरनाक सम्भावनाओं से जानबूझकर गुमराह करना कितना बड़ा राष्ट्रीय पाप है यह बताने की आवश्यकता नहीं।

खिलाफत आन्दोलन के समय इस बात की बहुत चर्चा थी कि मौलाना मौहम्मद अली इत्यादि नेताओं ने गाँधी जी की सहमति से अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिये लिखा था। इसलिए खिलाफत आन्दोलन के उस युग में जब "हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई" महात्मा गाँधी की जय, "मौलाना मौहम्मद अली की जय" के नारों द्वारा अस्वाभाविक हिन्दू मुस्लिम एकता का रौद्र प्रदर्शन हो रहा था अम्बेडकर की दूर दृष्टि एक अलग ही प्रश्न उछाल रही थी" मान लो कि अफगानिस्तान अकेले अथवा दूसरे मुस्लिम राज्यों की सहायता लेकर भारत पर आक्रमण करता है तो उस समय सीमान्त के हमारे दरवाजों के यह पहरेदार (भारतीय थल सेना में बड़ी संख्या में शामिल मुस्लिम सैनिक) उनको रोकेंगे या दरवाज़े खोलकर उन्हें अन्दर आ जाने देंगे? इस प्रश्न पर प्रत्येक हिन्दू को आश्वस्त होना चाहिये क्योंकि यह प्रश्न (हिन्दू के जीवन मरण का प्रश्न होने के कारण) बहुत ही महत्वपूर्ण है।" (६क)

हिन्दू मानसिकता की खरी परख रखने वाले अम्बेडकर स्वयं ही कहते हैं : "कुछ लोग कह सकते हैं कि यह क्यों मान लिया जाय कि सेना (सैनिक संगठनों पढ़े) में मुसलमानों की संख्या सदैव ही अधिक बनी रहेगी? और उनकी संख्या को कम नहीं किया

जा सकता?

"इसके विपरीत मुझे आश्चर्य नहीं होगा यदि मुस्लिम अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के नाम पर उसे (मुसलमानों की इन सैनिक दलों में उपस्थित को) भारत के संविधान के पुनर्विचार के समय उसमें शामिल कर दिया जाय।"(७)

इस सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पी.ए.सी. में उर्दू जानने वालों की भर्ती के नाम से मुसलमानों की भर्ती करने का समाचार अम्बेडकर की भविष्यवाणी को सत्य करता प्रतीत हो रहा है।

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारणों को आध्यात्मिक और इस प्रकार सैद्धान्तिक बताकर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बनाना निश्चित हो जाने पर अम्बेडकर ने आबादी की अदला बदली पर अत्यंत बल दिया था। जिस प्रकार भारतवर्ष के टुकड़े धर्म की बुनियाद पर किये गये थे उसके देखते हुए यह नितान्त और सर्वथा तर्कसंगत था। जिन्नाह भी इस पर सहमत थे। अम्बेडकर ने साइप्रस का दृष्टान्त देते हुए जहाँ धर्म के नाम पर बँटवारे के बाद मुसलमान और ईसाई नागरिकों की अदला-बदली की गई थी अपने मन्तव्य की पुष्टि की थी। उन्होंने कहा था : "फिर हिन्दुओं के लिए कौन सा विकल्प उत्तम है? यह मुसलमान विरोधी बाहर रहें या भीतर? यदि यह प्रश्न किसी भी (प्रू-डेन्ट) दूरदर्शी, विवेकशील और सावधान व्यक्ति से पूछा जाय तो उसका एक ही उत्तर होगा "यदि मुसलमानों को (सदैव) हिन्दुओं का विरोधी ही रहना है तो बेहतर यही होगा कि वह बाहर रहकर विरोध करें न कि घर में रहकर।"(८) किन्तु अम्बेडकर की बात नहीं सुनी गई।

अन्ततः दोनों नवनिर्मित देशों में हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ भीतर रह गये। पाकिस्तान ने इस्लामी दर्शन के अनुसार अपने सभी हिन्दू नागरिकों को लगभग समाप्त कर दिया है। गुलाम काश्मीर में एक भी हिन्दू अथवा सिख शेष नहीं है। बाँग्लादेश में हिन्दू ३२ प्रतिशत से घटकर १२ प्रतिशत रह गये हैं। वह भी निःशेष होने जा रहे हैं। (देखें तस्लीमा की पुस्तक लज्जा)। इसने अम्बेडकर की इस बात को सिद्ध कर दिया कि हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारण अंग्रेज नहीं थे और न ही हिन्दू बाहुल्य समाज का उन पर अत्याचार इसका कारण था और यह भी कि मुस्लिम बहुल समाज में गैर मुस्लिम अल्पसंख्यकों का अस्तित्व असम्भव है।

जो भी कारण रहे हों हिन्दू भारत ने देश के बँटवारे की भयंकर घटना, रक्तपात और ९७ प्रतिशत भारतीय मुसलमानों द्वारा पाकिस्तान की वकालत के बावजूद उनको अपने घर में रखने का फैसला किया। यह सही किया या गलत किया इस पर बहस करने से अब क्या फायदा? किन्तु क्या मुसलमानों में इसके पश्चात् हिन्दुओं के प्रति व्यवहार में विरोध कम या समाप्त हुआ है? अथवा बढ़ा है? अथवा क्या वह विरोध कम अथवा समाप्त किया जा सकता है? यह प्रश्न हिन्दू के लिए प्रासंगिक भी है और महत्वूपर्ण भी। इसलिए देर से ही सही अम्बेडकर की बात पर गम्भीरतापूर्वक प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है।

रूस
मंगोलिया
चीन
युगोस्लाविया
बुल्गेरिया
ग्रीस
टर्की
ट्यूनेशिया
सीरिया
लेवानॉन
इज़रायल
ईराक
जार्डन
ईरान
अफगानिस्तान
पाकिस्तान
नेपाल
बांग्ला देश
बर्मा
मोरक्को
अलजीरिया
लीबिया
ईजिप्ट
सऊदी अरेबिया
मॉरिटैनिया
नाइगर
सूडान
चाड
माली
सेनिगाल
गैम्बिया
गाइनिया
सियरा लिओन
लाइबेरिया
आइवरी कोस्ट
घाना
नाइजेरिया
केमरान
ईथोपिया
सोमालिया
युगैन्डा
केनिया
टैनजेनिया
मालावी
मोजम्बीक
मैडागास्कर
मारीशस
दक्षिण अफ्रीका
श्री लंका
मालदिव द्वीप
मलेशिया
सिंहापुर
इंडोनिशिया
८९ से १००% मुस्लिम
५१ से ८८% मुस्लिम
२६ से ५०% मुस्लिम
२ से २५% मुस्लिम

इस्लामी विश्व

३
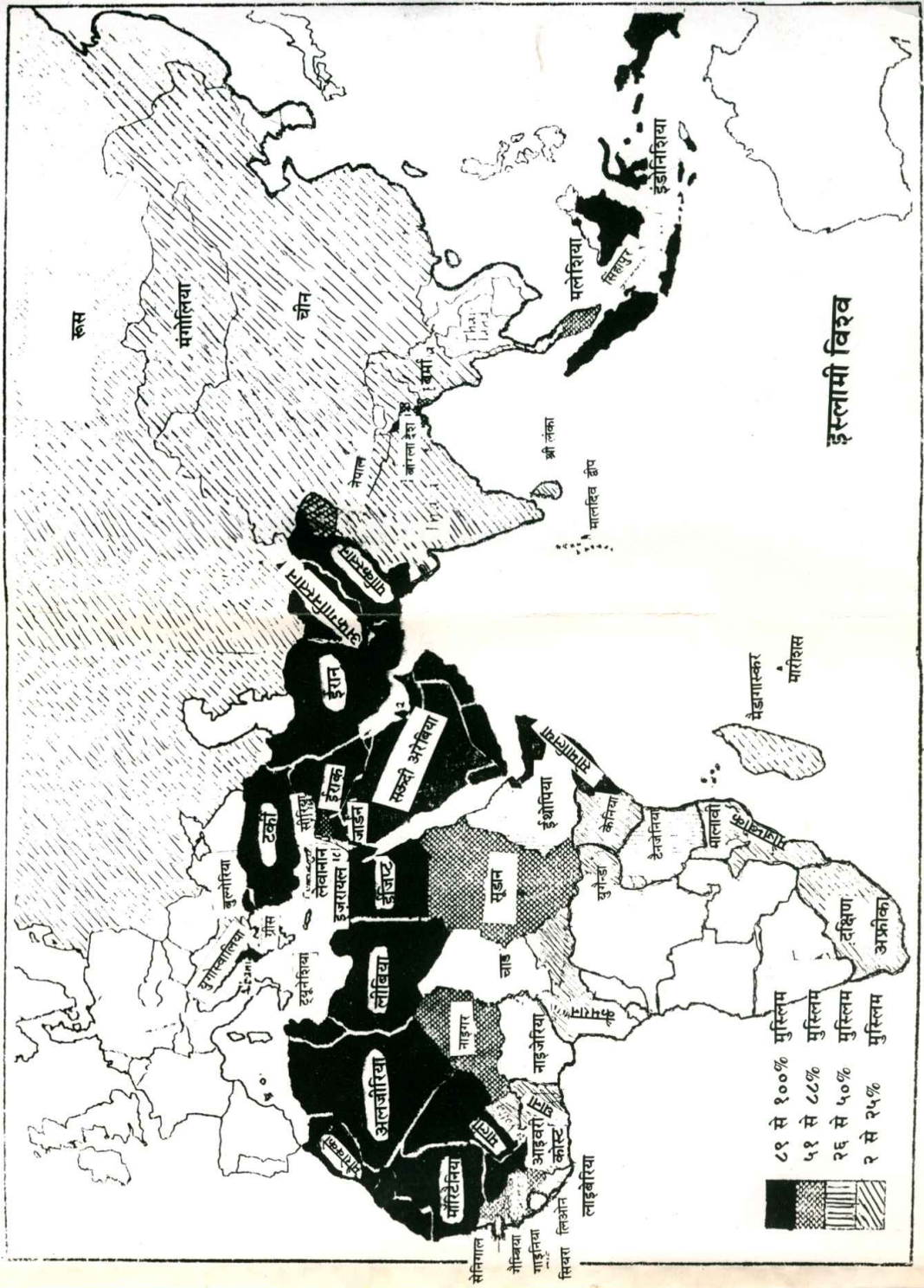
इस्लाम विश्वव्यापी सुधार आन्दोलन

इस्लाम का जन्म अरब देश में एक सुधार आन्दोलन के रूप में हुआ, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। उसके सुधार का दायरा सीमित नहीं था। मानव जीवन का कोई भी अध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक क्षेत्र नहीं है जिसमें इस्लाम ने क्रान्ति उत्पन्न न की हो। केवल व्यवसायिक नियमों की आचार संहिता के ऊपर ही "सही–मुस्लिम" में मौहम्मद साहब की हदीसों के लगभग ५० पन्ने हैं। सुधार का यह पक्ष भी देखिये : कुरान कहती है कि जब नमाज पढ़ चुको तो ईश्वर के बताये कार्यों में लग जाओ। सयद कुत्व इस पर कहते है : जीवन को केवल भजन, कीर्तन और ईश प्रार्थना में व्यतीत करना और ऐसा कोई रोजगार न करना जो मानवता के लिये लाभकारी हो "इस्लामी" नहीं है। यदि इस्लाम का वश चले तो वह सभी मनुष्यों को काम करने को मजबूर करेगा। यदि उनके पास काम नहीं है तो शासन उन्हें काम देगा। पूजा और मजहब के नाम पर हराम खोरी का इस्लाम शत्रु है। किन्तु मूर्ति पूजा, बहुदेवता वाद, व्यक्ति पूजा, देश पूजा इत्यादि को समूल नष्ट करना इस्लाम के सुधार के केन्द्र बिन्दु हैं। यह उसके विश्वास वाक्य से ही स्पष्ट है। "सिवाय अल्लाह के कोई दूसरा उपास्य नहीं है और मौहम्मद साहब उसके रसूल हैं।"

इस्लाम की दृष्टि से मूर्ति पूजा अथवा अल्लाह के साथ उसके अतिरिक्त किसी भी दूसरे की पूजा का विचार अथवा संकेत भी जघन्य पाप है।

१– जिन (मूर्तियों) को तुम अल्लाह के अतिरिक्त पूजते हो उनका निर्माण करने वाला तो अल्लाह ही है। वह तो कुछ भी निर्माण नहीं कर सकतीं। (कुरान १६:२०)

२– ऐ मूर्तिपूजकों तुम और वह (मूर्तियाँ) जिनकी तुम अल्लाह के अतिरिक्त पूजा करते हो दोज़ख की आग का ईंधन हैं। तुम उसी में प्रवेश करोगे। (कुरान २१:१८)

३– यदि यह मूर्तियाँ खुदा होतीं तो यह दोज़ख में न जातीं परन्तु इन सबका निवास तो वहीं होगा। (कुरान २१:१९)

४– वहाँ (दोज़ख में) रोना चिल्लाना ही उनकी नियति है और वहाँ उनकी कोई नहीं सुनेगा। (कुरान २१:१००)

५– मूर्तियों से की गई प्रार्थनायें निष्फल हैं। (कुरान १३:१४)

६– दूसरे सब पाप तो अल्लाह क्षमा भी कर देता है किन्तु मूर्ति अथवा अन्य देवता पूजा का पाप कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। "देखो !" अल्लाह इस पाप को कभी क्षमा नहीं करता कि किसी दूसरे को उसका सहभागी बनाया जाए। उनको छोड़कर वह (अल्लाह)

जिसे चाहे क्षमा कर दे। जो दूसरे (देवी देवताओं इत्यादि) को अल्लाह का सहभागी बनाते हैं वह निश्चय ही भारी पाप के दोषी हैं। (कुरान ४:४८)

७- यदि तुम किसी को अल्लाह का सहभागी बनाओगे तो तुम्हारे सभी कार्य निष्फल होंगे और निश्चय ही तुम घाटे में रहोगे। (कुरान ३९:६५)

८- देखो ! यहूदियों ईसाइयों और मूर्ति पूजकों का (जो इस्लाम में विश्वास नहीं करते) निवास दोज़ख में रहेगा। सृष्टि में यह सब से निकृष्ट हैं। (कुरान ९८:६)

९- उस (इब्राहीम) ने कहा : "क्या तुम अल्लाह के स्थान पर उन (मूर्तियों आदि) की पूजा करोगे जो तुम्हें न किचिंत लाभ पहुँचा सकती हैं न हानि।" (कुरान २१:६६)

१०- "धिक्कार है तुम पर और उन पर जिन की तुम अल्लाह को छोड़कर पूजा करते हो। क्या तुम्हें तनिक सी भी बुद्धि नहीं है।" (कुरान २१:६७)

११- मूर्ति पूजा अथवा अल्लाह के अतिरिक्त किसी भी दूसरे की पूजा करने अथवा मानने वाले माता-पिता, भाई-बहन सभी शत्रु समझे जाते हैं। "ऐ ईमान वालों यदि तुम्हारे पिता और भाई भी सत्य मत इस्लाम से अधिक रुचि अविश्वास में रखते हों तो उनको मित्र मत बनाओ। तुम में से जो भी ऐसे लोगों को मित्र बनाता है वह बुरा कार्य करता (पापी) है। (कुरान ९:२३)

कुरान में लगभग ६० आयतें मूर्ति पूजा का घोर विरोध करती हैं।

मिस्र देश के शहीद आलिम सय्यद कुत्ब सत्य ही कहते हैं : "मुसलमान के नाते रिश्तेदार उसके माता-पिता, भाई, पत्नी और कबीले के लोग नहीं हैं, यदि उनकी प्राथमिक रिश्तेदारी अल्लाह से नहीं हैं। उसकी मार्फत ही वह रिश्ता खून के रिश्तेदारों में आता है।"[९]

कुफ्र (मूर्ति पूजा, देवतावाद) और शिर्क (अल्लाह का भागीदार किसी दूसरे को मानना) इतना बड़ा पाप है कि पैगम्बर को अपनी माता की मज़ार पर जाकर अल्लाह से उन्हें क्षमा करने की प्रार्थना करने से भी रोक दिया गया था। हदीस है कि "मैं (मौहम्मद) ने अल्लाह से आज्ञा चाही थी कि अपनी माता की माफी के लिये (जो मुस्लिम नहीं थी) दुआ मांगूँ। मगर मुझे इसकी अनुमति नहीं मिली। (सही मुस्लिम २१२९)

कुरान स्पष्ट आदेश देती है "यह पता लग जाने पर कि वह दोज़ख में भेजे जाने योग्य हैं, पैगम्बर और मुसलमानों के लिये यह उचित नहीं है कि वह बहुदेवता पूजकों के लिये क्षमा याचना करें, भले ही वह उनके नाते रिश्तेदार हों। (कुरान ९:११३, ८४)

इस्लाम के जन्म का कारण और मुख्य ध्येय है संसार से अल्लाह के अतिरिक्त सभी पूजा पद्धतियों को नष्ट कर उनके स्थान पर इस्लाम और सभी मानवकृत संविधानों के स्थान पर अल्लाह के कानून (शरियत) को स्थापित करना। इस्लाम का तो जन्म ही दूसरे सभी मतों को नष्ट करने के लिये हुआ है।[९क]

इस सुधार की सफलता के लिये अल्लाह ने वायदा भी किया है : "वही है (अल्लाह) जिसने अपने सन्देशवाहक (मौहम्मद) को सत्य मत देकर पथ प्रदर्शन के लिये भेजा है जिससे वह उसे सभी दूसरे मतों पर विजयी बनाये भले ही मूर्ति पूजक उसका कितना भी विरोध क्यों न करें। (कुरान ९:३३)'

इसलिये मुसलमान आश्वस्त होकर संसार को चुनौती दे सकते हैं। "विश्व के शासकों को यह जानना आवश्यक है कि इस्लाम को परास्त नहीं किया जा सकता है। इस्लाम विश्व के समस्त देशों में विजयी होगा कुरान की शिक्षायें समस्त संसार के देशों में वर्चस्व प्राप्त करेंगी।"(अयातुउल्लाह खुमैनी)[१०]

इस प्रकार के सुधारात्मक आन्दोलन (इस्लाम) का उन अक्षम्य बुराइयों के साथ जिन्हें वह कुफ्र अथवा शिर्क मानता है, जिनका जड़ मूल से समाप्त करना ही जिसका जीवनोद्देश्य और नियति हो सहअस्तित्व कैसे सम्भव है? क्या यह कल्पना की जा सकती है कि किसी अंधेरे कमरे में सूर्य का प्रकाश भी आता रहे और अंधकार भी बना रहे।

किसी देश के इतिहास का अध्ययन करने के लिये स्वाभाविक है कि उस देश में उपलब्ध भूतकाल की घटनाओं के लेखे जोखे का अनुसंधान किया जाय। इस दृष्टि से सोचा जा सकता है कि भारत में ऐसा (ऐतिहासिक) साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होगा। पश्चिमी यूरोप के निवासियों के बर्बरता युग से निकलने से भी बहुत पहले भारत में ऐसी भाषा का विकास हो चुका था जो अपने व्याकरण और सम्पूर्णता के लिये चमत्कारी थी। उस भाषा में अनेकानेक विद्वतापूर्ण ग्रंथ लिखे जा चुके थे। इनमें से अनेक ग्रंथ ऐसे वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषयों पर थे जिन पर लिखने के लिये इतिहास लेखन से कहीं अधिक विद्वता और परिश्रम की आवश्यकता होती है। फिर भी यह आश्चर्यजनक है कि यद्यपि इन वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषयों पर लेखन में इतना कठिन चिंतन और परिश्रम सफलतापूर्वक किया गया है उससे कहीं अधिक सहज और कहीं अधिक लाभदायक इतिहास लेखन की नितांत उपेक्षा की गई है। मुस्लिम काल में लिखित काश्मीर के इतिहास की एक पुस्तक को छोड़कर भारत में एक भी लेख अथवा पुस्तक उपलब्ध नहीं है जिसे सत्य अर्थों में "इतिहास" कहा जा सके। हेनरी बीवरिज : ए काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया – पृ. 18

४

सुधारात्मक आन्दोलन इस्लाम की प्रेरक शक्ति कुफ्र के प्रति घृणा

इस्लाम का हिन्दुओं के प्रति दृष्टिकोण :

किसी भी सुधारात्मक आन्दोलन का जन्म उस समय होता है जब किसी महापुरुष के मन में किसी प्रचलित दुष्ट प्रथा अथवा विश्वास के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न होने से वह उस दुष्ट प्रथा अथवा विश्वास का उन्मूलन करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। ऐसे सुधारक अति संवेदनशील व्यक्ति होते हैं। सैकड़ों, सहस्त्रों वर्षों से चलते आये ऐसे कार्य अथवा विश्वास को वह घृणित समझते हैं जिसे उनसे पूर्व किसी ने भी इस रूप में नहीं देखा था। ऐसे व्यक्ति अति दृढ़ निश्चयी और वीर होते हैं क्योंकि यदि ऐसा न हो तो वह अनेक कष्टों और अत्याचारों को झेल कर भी उस बुराई को दूर करने के लिये अपना जीवन दाँव पर नहीं लगा सकते। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त बुद्धिमान और कुशल भी होते हैं जिसके कारण वह अकेले पूरे विरोधी समाज की अनेक कुटिल चालों से अपने और अपने सहयोगियों की रक्षा करते हुए अपने मिशन को आगे बढ़ाने में सफल होते हैं। सुधारक की प्रेरक शक्ति घृणा होती है। सहनशीलता नहीं।

पैगम्बर मौहम्मद साहब में यह सभी गुण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। उन्होंने मूर्ति पूजा के विरुद्ध अपने अनुयाइयों में जो घृणा, आक्रोश और उसे नष्ट करने के लिये जो उत्साह और दृढ़ निश्चय पैदा किया वह आश्चर्यजनक है। आज उनकी मृत्यु के १४०० वर्ष बाद भी संसार के सौ करोड़ व्यक्ति उसी घृणा, आक्रोश और उत्साह से प्रेरित हैं। वह दिन में पाँच बार उनके बताये पवित्र स्थान (काबे)की ओर मुँह फेर कर नमाज़ पढ़ते हैं। प्रत्येक बार उनका नाम लेने पर उनके लिये शान्ति की प्रार्थना करते हैं। उनके पवित्र स्थान की ओर मल मूत्र विसर्जन नहीं करते और न उसकी ओर पीठ फेरते हैं। यद्यपि इस्लाम में ७० के ऊपर फिर्के बन गये हैं किन्तु उनके प्रति और उनके सन्देश के प्रति श्रद्धा और आदर में वह एक दूसरे से बढ़कर हैं।

इस्लाम के प्रति अनन्य प्रेम और गैर-इस्लाम के प्रति अपूर्व एवम् निरन्तर घृणा का अल्लाह आदेश देता है। सैय्यद अबुल हसन अली नदवी (अली मियाँ) ठीक फ़र्माते हैं कि मुसलमान के लिए केवल इस्लाम से प्रेम करना ही काफी नहीं है। उसे प्रत्येक गैर-मुस्लिम दर्शन, विचार और ध्येयों से घृणा करना भी आवश्यक है। [११] मौदूदी साहब संस्थापक जमाते इस्लामी, सैय्यद कुत्ब, मौलाना अबुल कलाम आजाद इत्यादि इस्लाम के सभी विद्वानों का मत है कि कुरान के अध्ययन से यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो जाती है कि

इस्लाम मुसलमानों को अल्लाह की पार्टी और शेष सम्पूर्ण मानवता को शैतान की पार्टी तथा उन सभी विचारों और दर्शनों को जिनका स्रोत कुरान के बाहर है नितान्त कुफ्र और घृणित समझता है।[१२]

मौहम्मद साहब की एक हदीस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुसलमान कौन हैं? मौहम्मद साहब फरमाते हैं। "मुझे लोगों से उस समय तक युद्ध करने का आदेश हुआ है जब तक कि वह यह सत्यापित न करें कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा उपास्य नहीं है और यह विश्वास करें कि मैं अल्लाह का संदेशवाहक हूँ और उस सब में विश्वास करें जो मेरे द्वारा लाया गया है।" (सही मुस्लिम–३१)। जो ऐसा नहीं करते वह सभी शत्रु हैं। इसलिये यह कहना कि आस्तिक हिन्दू काफिर नहीं है केवल भ्रम फैलाना है।

गैर मुसलमानों के विषय में अलीमियाँ अथवा दूसरे विद्वानों के उपरोक्त विचार उनके वैयक्तिक विचार नहीं हैं। कुरान हदीस और इस्लामी विद्वानों (उलमा) के सहस्रों फतवे गैर इस्लाम से घृणा और शत्रुता पर बल देते हैं। (और ऐ पैगम्बर जहाँ तक ईसाइयों का प्रश्न है) जो कहते हैं देखो हम ईसाई हैं। हमने (अल्लाह) से करार किया हुआ है। (उनसे कहो) उस करार का एक भाग जिसके द्वारा उन्हें सावधान किया गया था वह भूल गये हैं। इसलिये हमने कयामत के दिन तक उनसे घृणा और शत्रुता उत्पन्न कर दी है। उस दिन अल्लाह उन्हें उनकी कारगुजारियाँ बतायेगा। (कुरान ५: १४)

"........अल्लाह ने तुम पर (ए मौहम्मद) जो प्रकट किया है उससे उनमें (यहूद में) शैतानी और अविश्वास बढ़ेंगे। कयामत के दिन से उनमें (हमने) घृणा और शत्रुता उत्पन्न कर दी है।" (कुरान ५:६४)

"(हम) तुम (मूर्ति पूजकों) से सम्बन्ध विच्छेद कर चुके हैं और हमारे तुम्हारे मध्य में सदैव–सदैव के लिये शत्रुता और घृणा जन्म ले चुकी है।" (६०:४)

"मुसलमानों को गैर मुसलमानों को मित्र नहीं बनाना चाहिये।" (कुरान ३:२८, ४:१४४) उन्हें मुसलमानों के अतिरिक्त किसी दूसरे को अपना विश्वास पात्र नहीं बनाना चाहिये (कुरान ३:११८) उनसे शादी विवाह नहीं करना चाहिये (कुरान २:२२१) गैर मुसलमानों के लिये अल्लाह ने लज्जा जनक अन्त निर्धारित किया है (कुरान ४:१५१)। मूर्ति पूजक नापाक होते हैं। उन्हें अल्लाह के स्थानों (मस्जिद काबा) इत्यादि के पास मत आने दो। (कुरान ९:२८)

कदाचित् इसी घृणा के कारण मौहम्मद साहब ने मुसलमानों को काफिरों के निवास स्थान से इतनी दूर रहने की शिक्षा दी थी कि जहाँ से उनको काफिरों के घर की रोशनी भी दिखाई न दे।[१३]

किसी ने पैगम्बर से अरब में उस समय पूजी जाने वाली मूर्तियों के नाम पर कुछ माँगा तो उन्होंने कहा था : "मुझसे इनके नाम पर कुछ मत माँगो, मैने उनसे अधिक कभी किसी दूसरे से इतनी घृणा नहीं की है।"[१४]

अयातुल्लाह खुमैनी के अनुसार ११ वस्तुएँ नापाक हैं मल–मूत्र, वीर्य, रक्त, कुत्ता,

सुअर, अस्थियाँ, शराब, भालू, ऊँट का पसीना जो मैल खाता है और गैर मुस्लिम स्त्री और पुरुष।[(१४क)]

यद्यपि मुसलमानों में ७० से ऊपर सम्प्रदाय हो गये हैं किन्तु कोई भी सम्प्रदाय मुसलमानों को गैर–मुस्लिमों के साथ मैत्री अथवा बन्धुत्व की अनुमति नहीं देता। यदि इस प्रकार की अनुमति कभी दी जाती है तो वह केवल दीन की भलाई के हित में अस्थायी और समझी बूझी रणनीति अथवा कूटनीति के अनुसार ही हो सकती है। फिर मूर्ति और बहु देवता पूजक हिन्दू तो इस्लाम की दृष्टि से दूसरे सभी गैर मुस्लिमों से निकृष्ट हैं।

काजी मुघीसुद्दीन ने अलाउद्दीन खिलज़ी के एक प्रश्न के उत्तर में इस्लाम का हिन्दुओं के प्रति दृष्टिकोण इस प्रकार बताया था : "खिराज गुज़ार के विषय में शरियत की यह आज्ञा है कि जब कर वसूल करने वाला उससे चाँदी माँगे तो वह बिना सोच विचार और बड़े आदर सम्मान तथा दीनता से सोना अदा कर दे। यदि वसूल करने वाला उसके मुँह में थूकना चाहे तो वह बिना कोई आपत्ति प्रकट किये हुए मुँह खोल दे जिससे वह उसके मुँह में थूक सके। इस दशा में भी वह कर वसूल करने वाले की आज्ञाओं का पालन करता रहे। इस प्रकार अपमानित करने, कठोरता प्रकट करने तथा थूकने का ध्येय यह है कि इससे जिम्मी (हिन्दू) का अत्याधिक आज्ञाकारी होना सिद्ध होता रहे। इस्लाम का सम्मान बढ़ाना आवश्यक है। दीन को अपमानित करना बहुत बुरा है। खुदा उनको अपमानित करने के विषय में इसी प्रकार कहता है। विशेषकर हिन्दुओं को अपमानित करना दीन के लिये अत्यावश्यक है। कारण है कि वे मुस्तफा (पैगम्बर) के दुश्मनों में सबसे बड़े दुश्मन हैं।(विश्व में सबसे से भयानक मूर्ति पूजक हैं—लेखक) पैगम्बर ने हिन्दुओं के विषय में यह आदेश दिया है कि उनसे इस्लाम स्वीकार कराया जाय अथवा उनकी हत्या कर दी जाये और उनकी धन सम्पत्ति छीन ली जाय। (तारीखे फीरोजशाही : अनुवादक सै. अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनवर्सिटी)।

हिन्दुओं के प्रति इस्लाम के दृष्टिकोण के कुछ और उदाहरण देखिये। "सैय्यद नूरुद्दीन मुबारक गजनवी सुहरावर्दी सुल्तान ईल्तुतमिश के शैखुल इस्लाम (धर्माचार्य) नियुक्त होकर उसके पास उलमा का एक प्रतिनिधि मण्डल उसे यह समझाने के लिये ले गये थे कि हिन्दुओं को इस्लाम और मृत्यु में से एक का वरण कर लेने की अंतिम चेतावनी दे दी जाय। यह तो कहिये कि सुल्तान ने इसे अव्यवहारिक और आत्मघाती कहकर टाल दिया, अन्यथा देश की क्या दशा होती, इसकी कल्पना से ही हृदय काँप जाता है। वस्तुतः शेख ने अन्त में यह भी जोड़ा था कि इस्लाम रक्षक सुल्तान का यही लक्षण है कि वह यदि हिन्दू काफिरों का वध करने में समर्थ नहीं है तो कम से कम उन्हें पददलित अवश्य करें और जब वह किसी हिन्दू को देखें तो उसका चेहरा तमतमा जाये और वह उसे कच्चा चबा जाना चाहे।[(१५)]

शेख अहमद सरहिन्दी अपने विख्यात पत्रों में लिखते हैं : इस्लाम और हिन्दू मजहब एक दूसरे के विरोधी हैं उनके दर्शन एक दूसरे के विपरीत हैं। जो मुसलमान

हिन्दुओं से सम्पर्क रखता है वह अपने मजहब की अप्रतिष्ठा करता है। अच्छे मुसलमान को गंदे काफिरों से दूर रहना चाहिये। हिन्दू धर्म ही इस्लाम के विरुद्ध नहीं है अपितु हिन्दू इस्लाम के घोर शत्रु हैं। इसलिये मुसलमानों को उनके साथ नहीं रहना चाहिये और हिन्दू रीति रिवाजों के त्याग द्वारा उनके विरुद्ध अपनी शत्रुता का प्रदर्शन भी करना चाहिये।[१५क]

मुस्लिम मानस में हिन्दुओं के प्रति घोर घृणा मुस्लिम इतिहासकारों के लेखों से भी टपकती है। अकबर के काल में जो तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दुओं के लिये कुछ सुखद था इतिहासकार बदायुनी राजा टोडरमल और राजा भगवानदास (अकबर के साले) की मृत्यु पर लिखता है: "वह दोनों दोज़ख और यंत्रणा के निवास स्थान को प्रस्थान कर गये और सबसे नीचे भाग में सर्पों और बिच्छुओं का भोजन बन गये। अल्लाह उनको अग्नि में जलाये।"[१५ख]

बदायुनी अपवाद नहीं है लगभग सभी मुस्लिम लेखक हिन्दुओं के लिये कुत्ता और "कौवे की शक्ल वाला" जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनके मन्दिरों के विनाश, स्त्री, बच्चों का कत्लेआम और उनके सिरों की मीनार बनाने जैसे वीभत्स दृश्यों का गर्व से वर्णन करते हैं।

एक अन्य सूफी का उदाहरण लीजिए। शेख जलालुद्दीन बुखारी सुहरावर्दी, मख्दूमें जहानियाँ जहाँ गश्त की रुग्णता का समाचार सुनकर ऊछ का हिन्दू दरोगा नवाहूँ या नवाहन उसकी शुश्रषा के लिये उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और श्रद्धाविभोर होकर बोला– आप अन्तिम सन्त हैं, जैसे मौहम्मद साहब अन्तिम नबी थे। इस पर शेख ने कहा कि तूने आधा कलमा पढ़ लिया अब पूरा क़लमा पढ़कर मुसलमान हो जा, अन्यथा प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे। उसने नहीं माना, अतः उसे सुल्तान फीरोजशाह तुगलक के समक्ष उपस्थित करके उसकी आज्ञा से उसका वध करा दिया गया। यह सब शांति काल के उदाहरण हैं युद्ध काल के नहीं।[१६]

यह तो हुई कुरान, हदीस और सूफियों की हिन्दुओं के प्रति घृणा। अब देखिये उलमा के फतवे इस विषय में क्या कहते हैं। ख़िलाफत आन्दोलन के समय को भारत में हिन्दू मुस्लिम एकता का स्वर्णिम युग कहा जाता है किन्तु उस एकता को जहाँ गाँधी जी और उनके हिन्दू अनुयायी वास्तविक समझते थे मुसलमानों के लिए वह एक सामयिक रणनीति से अधिक कुछ नहीं था। उस समय की एकता के अपूर्व उबाल के समय भी भारत के १२० शीर्ष के उलमा ने मुसलमानों के नाम जो फतवा जारी किया था उससे इस एकता और इस्लाम का हिन्दू काफ़िरों के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। उसमें अन्य बातों के साथ कहा गया था:–[१७]

१– मुसलमानों को मुसलमानों के विरुद्ध हथियार नहीं उठाने चाहियें। पैगम्बर ने कहा है कि जो मुसलमान दूसरे मुसलमान के विरुद्ध हथियार उठाता है वह हममें से नहीं है। अल्लाह कहता है ऐसे व्यक्ति जहन्नुम में जायेंगे।

२– यदि कोई काफ़िर बादशाह पर आक्रमण करे तो काफिर बादशाह की मुस्लिम

प्रजा को अपने काफिर बादशाह की ओर से लड़ना नहीं चाहिये।

३- किसी गैर मुस्लिम (गाँधी पढ़ें) की ऐसी उत्तम सलाह मानने में कोई दोष नहीं जो दीन (इस्लाम) के लिये लाभदायक हो और रणनीति के विरुद्ध न हो।

४- किन्तु मूर्तिपूजकों की आकांक्षाओं में सहभागी होने की अनुमति नहीं है अपितु उसकी सख्त मनाही है।

५- यह सदैव याद रखना चाहिये कि मुसलमानों को किसी गैर मुस्लिम का नेतृत्व कभी भी स्थायी अथवा अस्थायी रूप से भी स्वीकार नहीं करना चाहिए। निश्चय ही अल्लाह ने काफिरों को किसी मुसलमान के ऊपर स्थान नहीं दिया है।

यह फ़तवा उस समय गाँधी जी के नेतृत्व के प्रति मुस्लिम दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देता है।

ख़िलाफ़त आन्दोलन समाप्त होते ही मुस्लिम नेतृत्व ने अपने वास्तविक विचार खुले रूप से स्पष्ट कर दिये थे। मौलाना मौहम्मद अली ने जो गाँधी जी के पैर चूमने में भी संकोच नहीं करते थे कहा कि--"मेरे विश्वास के अनुसार एक चोर और व्यभिचारी मुसलमान भी गाँधी से श्रेष्ठ है।"[१८] वास्तव में मौहम्मद अली ऐसा कहकर अपना वैयक्तिक विचार स्पष्ट नहीं कर रहे थे। वह तो केवल मौहम्मद साहब की इस विषय पर एक हदीस को ही दोहरा रहे थे (देखें हदीस २१७४/सही मुस्लिम)।

मौलाना अब्दुल बारी जिन्होंने हिन्दुओं की भावनाओं का आदर करते हुए मुसलमानों को गोवध बन्द करने के लिए कहा था अब उसको मुसलमानों का धार्मिक अधिकार बताने लगे।

मौलाना आला हजरत अहमद रज़ा खाँ मुसलमानों के बरेलवी सम्प्रदाय के माननीय आलिम थे। उनकी दरगाह बरेली में है। हमारे प्रधानमंत्री उनकी दरगाह पर चादर चढ़ाकर बरेलवी मुसलमानों का मन जीतने के इरादे से वहाँ गये थे। भारतीय हिन्दू प्रेस ने अपनी आदत के अनुसार इस अवसर पर आला हजरत को १९वीं शताब्दी का सन्त, १९वीं शताब्दी के विद्वान्, एक महान सन्त, सर्वाधिक प्रसिद्ध सूफी सन्त और न जाने क्या क्या कह डाला। उनके साहित्य को शाश्वत कहकर प्रचारित किया गया। अरुण शौरी ने अपनी पुस्तक "वर्ल्ड आफ फतवाज़" में इन महान सन्त के हिन्दुओं के विषय में दिये गये कुछ फतवों का वर्णन किया है। वह फतवे "सन्त" के फतवों की पुस्तक में "नफरत के एहकाम" (घृणा के आदेश) नामक शीर्षक से दिये गये हैं। मौलाना फ़र्माते हैं : "यदि कोई मुसलमान केवल शिष्टाचार के नाते भी कहता है कि वेद और कुरान पवित्र पुस्तके हैं, यदि कोई मुसलमान ऐसे जुलूस में शामिल होता है जिसमें कुरान, रामायण और गीता समान आदर के साथ ले जायी जा रही हों, यदि कोई मुसलमान कहता है कि मुसलमानों को कुरान के अनुसार और हिन्दुओं को वेदों के अनुसार आचरण करना चाहिये तो वह सब इस्लाम के बाहर हो जाते हैं। उनकी बीबियाँ निकाह के बाहर हो जाती हैं और ऐसा कोई मुसलमान जो

इस प्रकार के मुसलमानों से नाता रखता है वह भी इस्लाम के बाहर हो जाता है। (अरुण शौरी वर्ल्ड आफ फतवाज़)

बरेलवी की भाँति मुसलमानों का एक दूसरा सम्प्रदाय है अहमदइया। पंजाब में कादियान नामक स्थान के नाम पर उन्हें कादियानी मुसलमान भी कहा जाता है। पाकिस्तान में उन्हें काफ़िर समझा जाता है। यू.एन.ओ. में पाकिस्तान के प्रतिनिधि सर ज़फ़रुल्ला खाँ कादियानी मुस्लिम थे। उन्होंने विश्व स्तर पर कई सभाओं में इस्लाम पर भाषण दिये थे और इस्लाम को सुलह शान्ति और मानव बन्धुत्व का मज़हब बताया था।

मुसलमानों द्वारा महाशय राजपाल नामक एक आर्य समाजी पर पैगम्बर मौहम्मद की मानहानि का मुकदमा चलाया गया था। उस मुकदमें में निर्दोष करार पाकर जब वह न्यायालय से बाहर आ रहे थे तो इल्मुद्दीन नामक एक मुस्लिम युवक ने छुरा घोंपकर उनका बध कर दिया । कादियानी मुस्लिमों के मुख पत्र "लाइट" ने इस घटना पर लिखा था कि प्रत्येक हिन्दू राजपाल है इसलिये प्रत्येक मुसलमान को इल्मुद्दीन होना चाहिये।[१९]

स्वामी श्रद्धानन्द जब तक मुसलमानों के खिलाफ़त आन्दोलन के लिये लाठियाँ खाते रहे वह मुसलमानों के श्रद्धा पात्र बने रहे। जामा मस्जिद दिल्ली के प्रवचन मंच से उनके द्वारा मुसलमानों को सम्बोधित करवाकर मुसलमानों ने उन्हें अपूर्व सम्मान दिया। किन्तु खिलाफ़त आन्दोलन के समाप्त हो जाने पर जब श्रद्धानन्द ने मालाबार, कोहाट इत्यादि के दंगों में वहाँ के बहुसंख्यक मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के सामूहिक बलात धर्मान्तरण और दूसरे अत्याचारों से क्षुब्ध होकर शुद्धि और हिन्दू संगठन आन्दोलन चलाया तो अब्दुल रशीद नामक एक युवक ने अस्वस्थता की दशा में गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। अब्दुल रशीद को फाँसी की सज़ा मिली। देवबन्द मदरसे के राष्ट्रीय मुसलमानों ने दूसरे सम्प्रदायों के मुसलमानों के समान उसे गाज़ी और शहीद अलंकारों से सम्मानित किया। उसकी आत्मा की शान्ति के लिये और जन्नत में स्थान देने के लिये मदरसों में कुरान के अखण्ड पाठ और मस्जिदों में नमाजें पढ़ी गयीं।[२०]

मुसलमानों के इन विभिन्न सम्प्रदायों में जिनमें आपस में घोर शत्रुता है हिन्दुओं के विरुद्ध यह समान घृणा और शत्रुता क्यों है? प्रत्येक सुधारक और सुधारात्मक आन्दोलन की सफलता के लिये उस बुराई के विरुद्ध और बुराई करने वाले के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है जिसे मिटाने का उनका ध्येय और व्रत है। मूर्तियों, मूर्ति पूजकों और बहुदेवतावादियों के विरुद्ध इस्लाम की इस अद्भुत घृणा का होना स्वाभाविक है।

इस प्रकार जहाँ भारतीय संविधान मुसलमानों और हिन्दुओं में सभी भेदभाव से परे समान बंधुत्व, समरसता तथा सम्पूर्ण मानव समाज के विकास की अपेक्षा करता है (धारा ५ क) वहाँ इस्लाम **हिन्दू ही** क्यों सभी गैर मुस्लिमों, उनके धर्मों, विचारों, संस्कृतियों और दर्शनों की प्रति धर्मनिष्ठ मुसलमानों को घृणा, और केवल घृणा के आदेश देता है।

"स्वाभाविक रूप से यह इस्लामी मानसिकता मुसलमान और गैर मुसलमान के बीच घृणा की एक ऐसी खाई खोद देती है कि जो सामाजिक और बौद्धिक समागम में भी

लाँघी नहीं जा सकती। अपनी उग्र अवस्था में इसका परिणाम हिंसा और कभी भी समाप्त न होने वाले मनोमालिन्य में होता है।" (२१)

"मुसलमान और काफ़िरों के बीच इस विरोध की जड़ें शरियत के पालन तक जाती हैं क्योंकि सम्प्रदाय के साथ बन्धुत्व मुख्यतया व्यवहार में दृष्टव्य होना आवश्यक है, जिसके लिये अल्लाह के आदेशों के प्रत्येक शब्द पर आचरण आवश्यक है।"(२२)

"इस्लाम का कोई भी विद्यार्थी कुरान में वर्णित मुसलमानों और उनके विरोधियों के बीच में हिंसात्मक विरोध से चकित हुए बिना नहीं रह सकता। कदाचित् किसी भी दूसरे धर्म में प्रतिपक्षियों के प्रति विरोध का इतनी सफलतापूर्वक धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक संगठन के लिए उपयोग नहीं किया गया जैसा कि इस्लाम में।"(२३) उस बिरादरी (मुस्लिम समाज) के जो बाहर है वह बाहर रहेगा। जो बाहर है वह अशुद्ध है, अपवित्र है, कुफ़्र है।"(२४)

इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि १९२६ की खिलाफ़त कान्फ्रेन्स के अधिवेशन की रिपोर्ट के अनुसार जब किसी सदस्य ने "हिन्दू भाइयों" कहा तो उपस्थित समुदाय के एक बड़े वर्ग ने काफ़िरों के लिये इस शब्द के प्रयोग पर कड़ी आपत्ति की और उसको वापिस लेने का अनुरोध किया।(२५)

कुछ लोग कहते हैं कि बुराई से घृणा करो बुराई करने वालों से नहीं। इस प्रकार के अव्यवहारिक वाक्यों में यथार्थवादी इस्लाम विश्वास नहीं कर सकता। बुराई का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। बुरे लोगों को नष्ट करने से ही बुराई नष्ट होती है। यथार्थवादी कृष्ण ने भी कहा था "विनाशाय च दुष्कृताम्" दुष्टों का नाश करने के लिये मैं जन्म लेता हूँ। दुष्टता का नाश करने के लिये नहीं क्योंकि दुष्टता का नाश नहीं किया जा सकता। (और इसमें भी संदेह नहीं कि इस्लाम की दृष्टि में धर्मनिष्ठ मुसलमानों के अतिरिक्त सभी दुष्ट हैं)

इसलिये इस्लाम जिन लोगों को दुष्ट करार देता है उनके प्रति अद्वितीय घृणा और उनको प्रताड़ित करने अथवा नष्ट करने की बात करता है। यही उसके जन्म और जीवन का उद्देश्य है। अम्बेडकर ने असत्य नहीं कहा था : "इस्लाम का भ्रातृत्ववाद विश्व भ्रातृत्ववाद नहीं है वह केवल मुसलमानों का मुसलमानों के लिये भ्रातृत्व है। जो उस दायरे के बाहर हैं उनके लिये घृणा और शत्रुता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" (२६)

कुछ भारतीय मुस्लिम विद्वानों द्वारा इस्लाम में गैर मुस्लिमों के प्रति इस घृणा को दो तर्क देकर झुठलाया जाता है। पहला तर्क तो यह है कि यह आयतें उस समय की विशेष परिस्थितियों में उतरी थीं जब इस्लाम अपने घोर अत्याचारी विरोधियों से किसी प्रकार अपनी रक्षा कर रहा था अथवा युद्धरत था। यह इस्लाम का शान्तिकाल का व्यवहार नहीं है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि इस्लाम धर्म के विषय में जोर जबरदस्ती में विश्वास नहीं करता। इन तर्कों के पक्ष में कुरान की कुछ प्रारम्भिक काल में अवतरित हुई आयतों को उद्धृत किया जाता है। इनमें से एक है "तुम्हारा मज़हब तुम्हारे लिये और मेरा मजहब मेरे लिये" दूसरी है (१०९:६)। "मज़हब में कोई जोर जबरदस्ती नहीं।"(२:१५६)

पहली आयत के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि यह आयत उस समय अवतरित हुई थी जब पैगम्बर के हाथ में कुफ्र को दमन करने की पर्याप्त शक्ति नहीं थी। इस प्रकार यह आयत पर्याप्त शक्ति के अभाव की लाचारी में कुफ्र को सहन करने की मजबूरी दर्शाती है। दूसरी आयत के विषय में शाह वली–उल्लाह लिखते हैं कि इस्लाम की घोषणा के बाद बल प्रयोग बल प्रयोग नहीं है।(२७) सैय्यद कुत्ब इसी बात को दूसरी प्रकार से कहते हैं। उनका कहना है कि "सत्य मत चुनने की स्वतंत्रता तो तभी होगी जब ज़ोर ज़बरदस्ती को(अर्थात् गैर इस्लामी संस्कृति और शासकों को जिन्होंने अल्लाह के राज्य का बलात अपहरण कर लिया है)पहले बल पूर्वक निर्मूल कर दिया जाय जिससे मानव हृदय और मस्तिष्क को कुफ्र की जंजीरों से मुक्त कर सीधे–सीधे सम्बोधित किया जा सके।(२८)

इस्लाम के सक्षम विद्वानों का तो यह भी मत है कि यह और इस प्रकार की अनेक १०० से ऊपर आयतें जो कुफ्र को बर्दाश्त करती प्रतीत होती हैं आयत कताल के अवतरण के पश्चात् निरस्त कर दी गयी हैं।(२९)

अधिकांश मुसलमान कुफ्र और काफ़िरों के प्रति घृणा के इन दैवी आदेशों से भली भाँति परिचित हैं और उनके अवचेतन मन में यह गहराई से पैठे हुए है। इसलिये आपने कभी किसी महत्वपूर्ण मुसलमान को हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिये परेशान होते अथवा उसको प्राप्त करने के लिये प्रयास करते नहीं देखा होगा। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये जा रहे अत्याचारों पर भी वह अत्याचारियों की निन्दा करते कभी नहीं देखे जायेंगे। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये परेशान हैं तो केवल हिन्दू। मुसलमान नाराज़ न हो जाँय इस डर से हिन्दू नेता भी साम्प्रदायिक अत्याचार के शिकार हिन्दुओं की खुलकर तरफ़दारी और सहायता नहीं करते।

कुरान में अनेक आयतें और हदीस इस बात पर बल देती हैं कि पड़ोसी से मित्रवत व्यवहार करो। पड़ोसी, गरीब रिश्तेदारों, विधवाओं और अनाथों की सहायता करो। उनके धन सम्पत्ति में बेइमानी मत करो। यह और इस प्रकार भी दूसरी शिक्षायें निस्संदेह एक महान सामाजिक सुधार की ओर इंगित करती हैं। इस्लाम को इस रूप में बहुधा पेश किया जाता है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि यह सब शिक्षायें मुस्लिम समाज के व्यक्तियों और परिवारों के आपसी व्यवहार के लिये हैं, काफ़िर पड़ोसी,काफ़िर अनाथों और विधवाओं के लिये अथवा काफ़िर ज़रूरत मंदो के लिये नहीं। उनके साथ मुसलमानों का व्यवहार क्या होना चाहिये वह मुस्लिम–काफ़िर व्यवहार से सम्बन्धित आयतों और हदीसों से ही निश्चय किया जायगा जो ऊपर दी जा चुकी हैं। "इस्लाम का भाई चारा केवल मुस्लिम–मुस्लिम का भाई चारा है।"(३०) जो उस दायरे के बाहर हैं उनके लिए घृणा और शत्रुता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (३१)

कुफ्र और गैर–इस्लाम के प्रति तीव्र घृणा और विश्व के इस्लामीकरण के लिये तीव्र आतुरता के कारण अनेक देशों में हिंसात्मक घटनायें हो रही हैं। इस्लाम के स्वरूप को अच्छी प्रकार समझ लेने पर इन घटनाओं पर बिल्कुल आश्चर्य नहीं होना चाहिये। उलमा

जो इन घटनाओं के मूल कारण को भली–भाँति समझते हैं कभी भी उन पर विपरीत टीका टिप्पणी नहीं करते। इस्लाम के वास्तविक ध्येय को प्राप्त करने के लिये और गैर इस्लाम को नष्ट करने के लिये जो प्रयास किये जाते हैं उनकी कोई धर्मनिष्ठ मुसलमान कैसे भर्त्सना कर सकता है?

रविवार ७ अगस्त १९९४ को लंदन के वेम्बले क्षेत्र में लगभग ८०० धर्मनिष्ठ मुसलमानों ने एक अंतर्राष्ट्रीय मुस्लिम खिलाफत कान्फ्रेंस आयोजित की। स्वाभाविक है कि गैर मुस्लिमों को शैतान की पार्टी कहा गया। कान्फ्रेंस का घोषित ध्येय था एक विश्व इस्लामी राज्य की स्थापना जहाँ शासन शरियत के अनुसार हो और इजरायल को नष्ट करना।(३२)

डा. मोहम्मद मलकानी ने कान्फ्रेंस में बोलते हुये कहा कि इस्लाम एक सर्वश्रेष्ठ राज्यविधि है। उसका सहअस्तित्व समाजवाद, पूँजीवाद, धर्मनिरपेक्षता अथवा जनतंत्र के साथ सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा कि हम एक ऐसे इस्लामी राज्य की स्थापना करना चाहते है जो मानव की समस्याओं का इस्लामी कानून के अनुसार समाधान कर सके।(३३)

कान्फ्रेंस में काश्मीर और इज़राइल सहित दूसरे मुस्लिम भूमि खण्डों को काफिरों के कब्जे से मुक्त करने की बात की गई। कांफ्रेंस के वक्ता इराक के फरीद कासिम ने कहाः मैं आशा करता हूँ कि एक दिन हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का आधिपत्य होगा। हम काश्मीर में चल रहे मुक्ति संघर्ष का समर्थन करते है।" वक्ता के अनुसार हिन्दुस्तान मुस्लिम भूमि है।(३४)

अपने समारोह समाप्ति भाषण में उमर बाकरी मुहम्मद ने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त को एड्स की बीमारी कहा जो इस्लाम को किसी दिन समाप्त कर देगी। ख़िलाफ़त की मुख पत्रिका ने इस बात की जोरदार अपील की कि बोस्निया, फिलिस्तीन, हिन्दुस्तान इत्यादि देशों में मुसलमानों को काफ़िरों के पंजों से मुक्त कराने के लिये एक सुदृढ़ सेना बनाई जाय।(३५)

लंदन के संडे टेलीग्राफ ने "द एनिमिज़ विधिन" शीर्षक से अपने सम्पादकीय में लिखा : उन (मुसलमानों) को इस देश में आकर उसको अथवा उसके मित्र अथवा पड़ोसी देशों को राज्य विमुख करने का कोई अधिकार नहीं है।(३६)

इसी पत्रिका में छपे एक लम्बे लेख में निकोलस पेलहम नामक लेखक ने उक्त कान्फ्रेंस के विषय में कहा कि मुस्लिम कट्टरवादियों का इरादा विश्वव्यापी इस्लामी विद्रोह के लिए ब्रिटेन को अवतरण मंच के रूप में प्रयोग करने का है।(३७)

मलेशिया एशिया के सर्वाधिक विकसित देशों में माना जाता है। लगभग ८०० वर्ष पहले यह हिन्दू देश था। उस समय उस का हिन्दू राजा अपनी काफ़िर प्रजा के साथ मुसलमान हो गया। अब वहाँ मुसलमान ५०% बौद्ध २६%, हिन्दू ९% हैं। किन्तु वह घोषित इस्लामी देश है। ४ अप्रैल १९८८ को एक कानून द्वारा अल्लाह समेत ३३ मलाया शब्दों को गैर मुस्लिम धर्मों के सन्दर्भ में प्रयोग करने पर पाबंदी लगा दी गयी। यहाँ

मुसलमानों में गैर मुस्लिम विश्वासों के प्रचार पर रोक लगायी गयी है (हिन्दुस्तान टुडे हवाई अगस्त १९८८)। इस देश में मुसलमान धर्म परिवर्तन कर गैर मुसलमान नहीं बन सकता। न वह किसी गैर–मुस्लिम धार्मिक अनुष्ठान में भाग ले सकता है। किसी मुसलमान को कोई भी गैर मुस्लिम धर्म से सम्बन्धित छपा हुआ साहित्य नहीं दिया जा सकता। दण्ड तीन महीने की जेल और १२५० डालर जुर्माने से लेकर एक साल की जेल और ४५०० डालर जुर्माने तक हो सकता है।[३८]

भारत के विख्यात उदार मुस्लिम विद्वान मौलाना वहीदुद्दीन खाँ अभी कुछ समय पूर्व मलेशिया गये थे और वहाँ के राष्ट्रपति के साथ नमाज इत्यादि पढ़े थे। उन्होंने मलेशिया की धर्मनिरपेक्षता की बहुत प्रशंसा की और आशा प्रकट की कि यदि भारतीय मुसलमान कट्टरवाद को छोड़कर भारतीय जनतंत्र और संविधान का लाभ उठाकर चलें तो हो सकता है कि एक दिन भारत का प्रधानमंत्री कोई मुसलमान हो। उपरोक्त तथ्यों से यह पता चल जाता है कि मलेशिया में कितनी धर्म–निरपेक्षता है और उदार खां साहब का वास्तविक मंतव्य क्या है।

उपरोक्त समाचारों से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम अपने धार्मिक ध्येय अर्थात सम्पूर्ण विश्व में इस्लाम धर्म और शरियत कानून की वर्चस्वता स्थापित करने के ध्येय को भूला नहीं है अपितु उसके लिये दिन प्रतिदिन उसकी गति तेज़ होती जा रही है।

भारत के भूतकाल का अन्वेषण करने में युगों पर युग बीतते जाते हैं। वर्षों की संख्या लाखों और करोड़ों तक पहुँच जाती है। देवताओं और अर्ध देवताओं सूर्य और चन्द्रमा की संततियों, उनसे भी अधिक विकट प्राणियों जिनमें से कुछ आधे पशु और आधे मानव है, के अंतहीन विवरणों से ग्रंथ भरे पड़े है परन्तु वास्तविक मानवों का और उनसे सम्बन्धित घटनाओं का एक भी विश्वसनीय इतिहास नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि जब तक उन मानवों और उनके कृत्यों को विलक्षणता का जामा न पहना दिया जाय उनसे सम्बन्धित घटनाओं के विषय में लिखना अनावश्यक हो।

संक्षेप में बात यह है कि ब्राह्मणों ने जो शिक्षा और ज्ञान के एक मात्र ट्रस्टी थे अपने ट्रस्ट के प्रति घोर गद्दारी की और उसमें मिथिक का जान बूझ कर भयानक रूप से इस प्रकार चतुरतापूर्वक मिश्रण किया जिससे सदैव उनका स्वार्थ सिद्ध होता रहे। (हेनरी बीवरिज : ए काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया खण्ड-1 पृ.-18)

५

इस्लाम तथा पैगम्बर के लिये प्रेम

पिछले अध्याय में हमने देखा कि सुधारात्मक इस्लाम किस प्रकार गैर इस्लामी बुराई के प्रति घृणा और शत्रुता उत्पन्न करता है। इस अध्याय में हम देखेंगे कि वह किस प्रकार कितना प्रेम और आदर सुधारक (पैगम्बर) और सुधारात्मक आन्दोलन (इस्लाम) के प्रति उत्पन्न करता है। किसी भी सुधारात्मक आन्दोलन की सफलता के लिये यह भाव जाग्रत होना स्वाभाविक है और आवश्यक भी। जितनी अधिक बुराई के लिए घृणा होगी उतना ही सुधारक और सुधार के प्रति आदर, प्रेम और आस्था होगी। यह दोनों भावनायें एक दूसरे की पूरक हैं।

कुरान कहती है– "कहो ऐ मौहम्मद, मानव समुदाय से, तुम यदि अल्लाह को प्यार करते हो तो मेरा अनुसरण करो। अल्लाह तुम्हें प्रेम करेगा और तुम्हारे पापों को क्षमा कर देगा। अल्लाह क्षमा करने वाला और दयावान है।"(कुरान ३:१३)

मौहम्मद साहब की एक हदीस के अनुसार उन्होंने कहा बताते हैं "किसी मनुष्य का विश्वास दृढ़ नहीं होता जब तक कि मैं उस को उसके परिवार, धन, दौलत और समस्त मानवता से अधिक प्रिय न लगूँ। (सही मुस्लिम–७०)

एक दूसरी हदीस : "तुममें से कोई भी मुसलमान नहीं है जब तक कि उसको अपने बच्चों, पिता और समस्त मानवता से मैं अधिक प्रिय न हूँ।" (सही मुस्लिम–७१)

धर्मनिष्ठ मुसलमान पैगम्बर के लिए अपना जीवन, परिवार और समस्त मानवता की बलि चढ़ाने के लिए सदैव तत्पर रहता है। पैगम्बर ने कहा थाः "मेरे (मौहम्मद के) पश्चात् एक दूसरे की गर्दन मारकर गैर–इस्लाम में वापिस मत हो जाना।"(सही मुस्लिम–१२४)

धर्मनिष्ठ मुसलमान के मन में पैगम्बर मौहम्मद के लिये इतना श्रद्धा, आदर और विश्वास है कि कहा जाता है कि अल्लाह का अपमान तो एक बार सहन भी किया जा सकता है परन्तु पैगम्बर और उनके सन्देश का नहीं।

पैगम्बर का व्यक्तित्व इतना महान है कि मनुष्य तो क्या देवदूत और अल्लाह भी उनकी मंगलकामना करते हैं : "लो देखो ! अल्लाह और उसके देवदूत भी पैगम्बर की मंगलकामना करते हैं। ऐ मुसलमानों, तुम भी उनकी मंगलकामना किया करो और उनके सम्मान के अनुकूल उनको सलाम किया करो।" (कुरान ३३:५६)

मुसलमान के लिये अनिवार्य है कि प्रत्येक बार जब वह पैगम्बर का नाम ले तो उसके पश्चात् "अल्लाह उन्हें शान्ति बख्शें" शब्द बोले।

६

सुधारात्मक आन्दोलन और राज्य

किसी भी सुधारात्मक आन्दोलन की सफलता के लिये राज्य का सहयोग आवश्यक है। सती प्रथा, ठगी उन्मूलन, छुआछूत इत्यादि स्थानीय तथा सीमित कुप्रथाओं को मिटाना राज्य की सहायता बिना सम्भव नहीं हुआ। इसलिये मूर्ति पूजा, देवता पूजा जैसी विश्वव्यापी और मानव हृदय में सहज ही आस्था उत्पन्न करने वाली प्रथा का उन्मूलन बिना राज्य की सहायता के सम्भव नहीं है। इसलिये मौदूदी साहब, संस्थापक जमाते इस्लामी, सत्य ही कहते हैं कि "जिन सुधारों को इस्लाम लाना चाहता है वह केवल उपदेश से सम्भव नहीं हैं। राजनीतिक सत्ता पर अधिकार होना आवश्यक है। इसलिये दीन की स्थापना के ध्येय से शासन तंत्र पर अधिकार करने के लिये संघर्ष की न केवल अनुमति है अपितु वह वांछनीय है और इस कारण से अनिवार्य भी।"[३९] सैय्यद कुत्ब के अनुसार, "प्रत्येक मुसलमान को यह समझ लेना चाहिए कि वह अपने धर्म का पालन ऐसे मुस्लिम वातावरण में ही कर सकता है जहाँ इस्लाम ही सर्वोपरि है।[४०] इस्लामी युद्ध का ध्येय केवल शरीयत कानून की स्थापना है। इस्लाम को अपना दैवी संविधान (शरीयत) स्थापित करने के लिये यह अनिवार्य है कि उन भौतिक शक्तियों को नष्ट कर दिया जाय जो उसके मार्ग में बाधा डालती हैं।[४१]

राज्य के पास अपनी बात मनवाने के लिये असीमित साधन होते हैं। इसलिये वह उपदेश, लोभ, प्रोत्साहन, दण्ड इत्यादि अपने साधनों से सुधार को शीघ्र कार्यान्वित कर सकता है। इसके अतिरिक्त राज्य के पास सैन्य बल भी होता है और वह अपनी बात मनवाने के लिये, यदि दूसरे सभी उपाय असफल हो जायें, तो सैन्य बल का उपयोग भी कर सकता है।

यह स्वाभाविक है कि मौहम्मद साहब जैसे कुशल प्रशासक और दूरदृष्टि वाले व्यक्ति ने जहाँ एक मत की स्थापना की उन्होंने उस मत के प्रचार–प्रसार के लिये मदीने में एक राज्य की स्थापना भी की और इस राज्य तंत्र का अति कुशलता पूर्वक उपयोग अपने सुधार आन्दोलन के हित में किया। फलस्वरूप उनके जीवन काल के अन्तिम दस वर्ष में ही छोटा सा मदीना राज्य पूरे अरब देश का स्वामी हो गया। वहाँ के लगभग तमाम निवासी मुसलमान हो गये। उनकी मृत्यु के सौ वर्ष के अन्दर ही स्पेन के तट से लेकर सिन्ध और चीन की सीमा तक मुसलमानों का विशाल राज्य स्थापित हो गया। उनके जीवन काल में ही उनका कितना आतंक उनको पैगम्बर न मानने वालों के हृदय में समा गया था इसका उल्लेख आगे किया जायेगा।

इस दर्शन के अनुसार इस्लाम का राजनीतिक सत्ता पर सीधा सीधा अथवा परोक्ष अधिकार होना आवश्यक है इसलिये मौलाना अबुल कलाम आजाद का मुसलमानों को यह उद्‌बोधन ठीक ही है कि "भारत जैसे देश को जो एक बार मुस्लिम शासन में रह चुका है कभी भी त्यागा नहीं जा सकता। मुसलमानों को अपना खोया हुआ आधिपत्य प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयास करना चाहिए।"[(४२)]

यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि इस्लाम के अनुसार राज्य सत्ता प्राप्ति का एक ही उद्देश्य है : "अल्लाह के धर्म और कानून (इस्लाम और शरीयत) की स्थापना।" इसलिये मुसलमान व्यक्ति अथवा इस्लामी राज्य मत निरपेक्ष नहीं हो सकता। मत निरपेक्षता का अर्थ है सुधार और बुराई को समकक्ष मानना और बुराई करने वालों (काफ़िरों) को सुधरे हुओं (मुसलमानों) के समकक्ष अधिकार देना।

इस्लामी राज्य में गैर मुसलमानों को कोई महत्वपूर्ण पद नहीं दिये जा सकते। देश की नीति निर्धारण में उन्हें सहभागी नहीं बनाया जा सकता। मौदूदी फ़र्माते हैं कि "प्रथम चार ख़लीफ़ाओं के शासन काल में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जिसमें किसी गैर मुस्लिम को कोई भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हो अथवा ख़लीफ़ा के चुनाव में मताधिकार भी दिया गया हो।[(४२क)]

इस्लामी राज्य स्थापित हो जाने पर उसका एक मात्र और सर्वोपरि ध्येय पूरे राज्य तंत्र का उपयोग गैर मुसलमानों को सत्य मत इस्लाम में दीक्षित करना होता है। अनेक देशों में मुस्लिम इतिहास के अनुसार इसके लिये अनेक उपाय काम में लाये जाते रहे हैं।

१– उन्हें इस्लाम में आने का निमंत्रण। यदि स्वीकार न करें तो उन्हें तलवार अथवा कुरान में से एक को चुनने की स्वतंत्रता। इंकार करने वाले वयस्क पुरुषों का कत्ल, स्त्रियों और बच्चों का बलात धर्म परिवर्तन, उन्हें गुलाम बनाकर इस्लाम के योद्धाओं में बाँट देना अथवा देश विदेशों में बेच देना।

२– आर्थिक दबाव– उन पर अपमान जनक जिज़िया टैक्स लगाना। टैक्स न देने पर उनकी स्त्रियों बच्चों को गुलाम बना लेना।

३– उन्हें जेल में डाल देना और इस्लाम स्वीकार करने पर छोड़ देना।

४– उन्हें राज्य और जागीरों का लोभ देना अन्यथा गद्दी से उतार देना।

५– उनकी धन, सम्पत्ति छीनकर इतना दरिद्र बना देना कि वह विद्रोह की सोच ही न सकें।

६– उनकी पाठशालाओं को ध्वस्त कर देना और अध्यापकों को कत्ल कर देना जिससे भावी पीढ़ी को कुफ्र की शिक्षा का कोई प्रबन्ध ही न रह जाये।

७– उनके मन्दिर ध्वस्त कर उनके स्थान पर मस्जिदें और खानकाऐं बना देना। पुराने मन्दिरों की मरम्मत नहीं करने देना। नये मन्दिर के निर्माण पर रोक लगाना।

फलस्वरूप उनको धीरे–धीरे अपने कुफ्र के पालन से रोक देना। इसका एक दूसरा ध्येय भी था। मन्दिर में स्थापित मूर्तियों के प्रति उनके विश्वास को तोड़ देना। यह मस्जिदें इस्लाम की शक्ति को प्रदर्शन करती थीं इसलिए इनको कुव्वतुल इस्लाम (इस्लाम की ताकत) कहा जाता था।

८– उनकी तीर्थ यात्राओं पर टैक्स लगाकर लोगों को तीर्थ यात्रा से हतोत्साहित करना।

९– कुफ्र प्रदर्शन से सम्बधित उनके त्योहारों पर रोक लगाना।

१०– किसी प्रकार भी कुफ्र का सार्वजनिक प्रदर्शन न हो इसलिये सार्वजनिक प्रदर्शन पर पाबन्दियाँ लगाना।

इन सबका उद्देश्य था कुफ्र को नष्ट कर सत्य मत इस्लाम और अल्लाह के कानून शरियत की स्थापना।

पायनियर लखनऊ 12-6-96
पी.टी.आई. वाशिंगटन

अल-संसार संगठन के नेता अल-शेख-सआदातुल्लाह ने अल जिहाद को दी गई एक भेंट में पेशावर में कहा कि उनका ध्येय समस्त विश्व में इस्लाम के वर्चस्व को स्थापित करना है।

उसने कहा कि हम अमेरिका, इज़रायल और भारत समेत विश्व के सभी काफिर देशों का मुकाबला करगें। ---- हमारा ध्येय गैर-मुस्लिमों और इस्लाम विरोधी शक्तियों के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध जारी रखना है।

इस संगठन में सहस्रों सशस्त्र लड़ाकू हैं जो आज़ाद काश्मीर, पाकिस्तान और काश्मीर घाटी के डोडा क्षेत्र में सक्रिय हैं।

सआदातुल्लाह खाँ का कहना है कि सोवियत रूस के विघटन से हमने यह पाठ सीखा है कि अमेरिका, इज़रायल, भारत और विश्व के तमाम काफ़िर देशों का विशेष रूप से उनका जिन्होंने मुस्लिम भूमि पर कब्जा कर लिया है (जैसे भारत, इजरायल, स्पेन और पुर्तगाल) मुकाबला करने में हम सक्षम हैं।

खान गर्व से कहता है कि हमने अल्लाह से वादा किया है कि काश्मीर में हमारे हथियार भारतीय सैनिक दलों और उनके पिट्ठुओं की ओर सदैव तने रहेंगे (जब तक हम काश्मीर पर कब्जा न कर ले)।

उसका अंतिम लक्ष्य पाकिस्तान, काश्मीर और दूसरे सभी मुस्लिम देशों को मिलाकर एक मुस्लिम संघ की स्थापना करना है। आज मुसलमानों की स्वतंत्रता और कल इस्लामी खलीफ़ा को पुनः स्थापित करना।

७

इस्लामी राज्य का ध्येय

"अपनी समस्त प्रजा का इस्लाम में धर्म परिवर्तन और उसके समस्त विरोध को समाप्त कर देना ही मुस्लिम राज्य का ध्येय है। यदि मजबूरन किसी काफ़िर को बरदाश्त करना ही पड़ जाये तो वह केवल अस्थायी रूप से ही होना चाहिये। उस पर इतना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दबाव डाला जाए अथवा सामाजिक धन से लोभ दिया जाए जिससे कि वह यथाशीघ्र सत्य मत इस्लाम को स्वीकार कर ले। काफ़िरों की संख्या का बढ़ना अथवा उनकी धन सम्पदा का विकास इस्लामी राज्य के उद्देश्य को ही नकार देना है। इसलिये एक सच्चे इस्लामी सुल्तान के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने काफ़िर प्रजा जनों को एक दूसरे का गला काटते हुए देखकर प्रसन्न ही हो क्योंकि कोई भी कत्ल हो लाभ इस्लाम को ही होता है। उदाहरण के तौर पर जब हिन्दू सन्यासियों के दो सम्प्रदाय पवित्र सरोवर में स्नान के अधिकार की प्राथमिकता के मुद्दे पर एक दूसरे को कत्ल कर रहे थे अकबर जैसे उदार मुस्लिम बादशाह से यह आशा की जाती थी कि वह राज्य में शान्ति बनाये रखने के अपने दायित्व को भुलाकर काफिरों को एक दूसरे के वध द्वारा उनकी संख्या कम होते प्रसन्नतापूर्वक देखता रहे।"[४३]

शासक का कर्तव्य है कि शासन शरियत कानून के अनुसार हो। कुरान इस बात पर बल देती है कि जो भी व्यक्ति अल्लाह द्वारा प्रकाशित कानून के अनुसार शासन नहीं करता वह काफिर है (५:४४)। धर्म निष्ठ मुसलमानों को उसकी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिये और उससे युद्ध करना चाहिये।[४४]

उलमा की कसौटी

१– कभी–कभी उलमा द्वारा जो तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं वह उन लोगों को भ्रम में डाल देते हैं जो इस्लाम के विश्वव्यापी सुधारात्मक स्वरूप को समझ नहीं पाये हों। उदाहरणार्थ काफिरों पर अत्याचार द्वारा उनको इस्लाम में दीक्षित करना, दया और मानव भ्रातृत्ववाद इसलिये है कि मुसलमान उनको कुफ्र से छुड़ाकर सत्य मत इस्लाम में दीक्षित कर अल्लाह के कोप से बचाना चाहते हैं, जैसा कि अब्दुल रहमान अज्जुम साहब अपनी पुस्तक "द इटरनल मेसेज ऑफ मौहम्मद" में फर्माते हैं।[४५]

२– हसरत मोहानी साहब का यह कथन कि यदि किसी व्यक्ति को मृत्यु और इस्लाम में से एक को चुनने की छूट दी जाती है और वह इस्लाम चुन लेता है तो वह स्वेच्छा से ही धर्म परिवर्तन कहा जायेगा।[४६]

३– उलमा गैर मुस्लिम राज्य में धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, अल्पसंख्यकों के अधिकार, जनतंत्र तथा न्यायपालिका की दुहाई देते हैं जबकि यह सभी इस्लाम धर्म की मान्यता के विरुद्ध हैं और इस्लामी राज्य में गैर मुस्लिमों को इन सब अधिकारों से वंचित रखना धर्मानुसार अनिवार्य है।

४– शरीयत का स्पष्ट आदेश है कि मुसलमानों को गैर इस्लामी शासन में कोई ऐसा पद नहीं लेना चाहिए जिस पर बैठकर उन्हें अपने मुस्लिम बन्धुओं के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही करनी पड़े। किन्तु फिर भी वह प्रतिदिन सरकारी नौकरियों में और विशेषरूप से पुलिस और सेना में अपने कम प्रतिनिधित्व की शिकायत करते हैं।

५– परिवार नियोजन, एक पत्नी व्रत और सार्वजनिक सुविधा के लिये मस्जिदों का हटाया जाना अनेक मुस्लिम देशों में राज्य की नीति बन चुका है किन्तु गैर मुस्लिम देश में यह सभी कार्य इस्लाम विरुद्ध बताकर उनका तीव्र विरोध किया जाता है।

इन सब विरोधाभासों का कारण यह है कि मुस्लिम शासित देशों में उम्मत (मुस्लिम समाज) और मुस्लिम राज्य के हित समान होते हैं। ऐसे देश में जहाँ मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं और सत्ता गैर मुस्लिमों के हाथ में है ऐसा नहीं होता। ऐसे देश को अभी दारुल इस्लाम बनाना शेष है इसलिये जो नियम मुस्लिम देश में उचित समझे जाते हैं उनको दारुल हर्ब में उचित नहीं समझा जा सकता।

मुस्लिम देश में मस्जिदों को सार्वजनिक हित के लिये हटाना, परिवार नियोजन, एक पत्नीव्रत तथा इस प्रकार के दूसरे कार्य राज्य के हित में भी हैं और मुस्लिम समाज के हित में भी हैं।

गैर मुस्लिम देश में जहाँ उम्मत शासन तंत्र पर अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है गैर–मुस्लिम शासन उनके इस उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा है। इसलिये उम्मत के और राज्य के हितों में टकराव पैदा होता है। ऐसे देश में मस्जिद का हटाया जाना, इस्लामी सम्पत्ति को काफ़िर राज्य अथवा काफ़िर समाज की सुविधा के लिये हटाया जाना है और जिस कार्य से काफिरों का हित हो अथवा उनका मनोबल बढ़ता हो उन्हें इस्लाम जैसा सुधारात्मक आन्दोलन कैसे स्वीकार कर सकता है?

परिवार नियोजन और एक पत्नी व्रत उम्मत की संख्या बढ़ाने में बाधक हैं। जनतंत्र में संख्या का बड़ा महत्व है। इसलिये काफ़िर देश में परिवार नियोजन और एक पत्नी व्रत की इजाज़त नहीं दी जा सकती। इन्हीं कारणों से मुस्लिम घुसपैठियों को निकालने के सभी प्रयासों पर खुले अथवा छिपे तौर पर आपत्ति की जाती है। मुस्लिम राज्यों में स्थिति इसके विपरीत होती है।

भारतीय दण्ड संहिता और साक्ष्य ऐक्ट का मुस्लिम समाज पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। भारतीय दण्ड संहिता इस प्रकार के कठोर दण्ड नहीं देती। इसलिये मुस्लिम

अपराधी दूसरे अपराधियों की तरह अपराध कर शरीयत के कठोर दण्ड से बच सकते हैं। शरीयत का कानून लागू होने से मुस्लिम अपराधियों को गैर मुस्लिम अपराधियों से अधिक दण्ड भोगना पड़ेगा। इसलिये भारतीय दण्ड संहिता पर कोई आपत्ति नहीं की जाती किन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है नागरिक संहिता के ऐसे संशोधनों पर जिनसे इस्लाम के सुधारात्मक कार्य में बाधा पड़ती हो आपत्ति होना स्वाभाविक है।

गैर मुस्लिम बाहुल्य देश में मुस्लिम अल्पसंख्यकों का धार्मिक कर्तव्य है कि प्रत्येक मुसलमान मुस्लिम शासन की स्थापना और इस्लाम का वर्चस्व स्थापित करने में सहायक हो। इस कार्य को प्रत्येक मुसलमान मिशनरी बनकर अथवा आवश्यकता पड़ने पर सैनिक बनकर पूरा करने की चेष्टा करता है। वह अपने हिन्दू सहयोगियों को विविध प्रकार से प्रोत्साहित कर अथवा अपने मातहतों पर दबाव डालकर उनका धर्मान्तरण कर सकता है। वेश्याओं द्वारा अपने ग्राहकों के धर्मान्तरण की अनेक घटनायें होती रहती हैं। हिन्दू विधवायें पारिवारिक कलह से ऊब कर, हिन्दू लड़कियाँ दहेज न दे सकने के कारण उचित वर न मिलने पर मुस्लिम नवयुवकों से विवाह कर लेती हैं। मुस्लिम समाज हिन्दू समाज के विपरीत इन नव आगुन्तकों को सहर्ष और उत्सुकतापूर्वक आत्मसात कर लेता है। किन्तु मुस्लिम लड़की का हिन्दू लड़के से प्रेम अथवा विवाह बरदाश्त नहीं किया जा सकता।

जनतंत्र और धर्मनिरपेक्ष राज्य इस्लाम के विकास के लिये उर्वरा भूमि होते हैं। उनमें धर्म की स्वतंत्रता के नाम पर मुसलमानों को अपने मत पर आचरण की वह स्वतंत्रता रहती है जो इस्लामी देश में गैर मुसलमानों को नहीं रहती। भारत में उन्हें अपने मत का प्रचार करने की भी छूट दे दी गई है। इस स्वतंत्रता का वह अपनी जनसंख्या बढ़ाने और अपने स्वतंत्र शिक्षा संस्थान खोलकर काफिरों और कुफ्र के प्रति अति घृणा और इस्लाम तथा पैगम्बर के प्रति बच्चों में प्रेम उत्पन्न करने और जोश फैलाने और धर्मान्तरण के लिये भरपूर उपयोग करते हैं। अल्पसंख्यक होने और धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वह विशेष अधिकारों की माँग करते हैं और जैसा कि अम्बेडकर ने कहा है, जनतंत्र में वोटों के लालची राजनीतिक दल उनकी इन माँगों को देर सबेर सदैव ही स्वीकार कर लेते हैं।

इस प्रकार के जनतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राज्यों में यदि एक बार भी मुस्लिम सत्तासीन हो जायें तो फिर वहाँ जनतंत्र और धर्मनिरपेक्षता इत्यादि सिद्धान्त लुप्त हो जाते हैं। पाकिस्तान और बांग्लादेश में यही हुआ है।

उपरोक्त कारणों से इस्लामी राज्य होने पर तीव्र गति से वहाँ के गैर इस्लामी समुदायों का इस्लामीकरण होता है। धर्मनिरपेक्ष जनतंत्रों में इस्लामीकरण की गति तुलनात्मक दृष्टि से धीमी अवश्य होती है परन्तु (१) मुस्लिम समुदाय की जन्म दर अधिक होने और धर्मान्तरण (२) गैर मुस्लिमों में इस्लाम विषयक दर्शन और कार्य प्रणाली की अनभिज्ञता और उसकी उपेक्षा के कारण अंततः वहाँ भी इस्लामी राज्य स्थापित हो जाना और सम्पूर्ण प्रजा का इस्लाम

में धर्मान्तरण अनिवार्य है जैसा पाकिस्तान तथा बाँग्लादेश के निर्माण में हम देख चुके हैं।

क्या कारण है कि १९४७ में पाकिस्तान में बचे २.५ करोड़ हिन्दू घटकर एक करोड़ रह गये और भारत में शेष रहे २.५ करोड़ मुसलमान बढ़कर ९.५ करोड़ हो गये? क्या पाकिस्तान में (बांग्लादेश को मिलाकर) हिन्दुओं का कोई कत्लेआम हुआ? क्या वहाँ कोई ऐसा कानून बनाया गया जिसके कारण हिन्दुओं का राशन पानी बन्द कर दिया गया हो? हम जानते हैं ऐसा कुछ नहीं हुआ। फिर भी हिन्दू विलीन हो गये। मानवाधिकार हनन के आरोप भी जितने भारत पर लगते हैं उतने पाकिस्तान, बांग्लादेश और दूसरे मुस्लिम देशों पर नहीं लगते। भारत में सभी परिस्थितियां उसके इस्लामी करण के अनुकूल हैं।

इसके मुख्य कारण दो हैं। पहला कारण तो यह है कि विश्व मंच पर भारत अकेला देश है जहाँ पर्याप्त संख्या में हिन्दू बसते हैं। वह भी अपने को हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य होने से इन्कार करता है। इसलिये विश्व मंच पर ८० करोड़ हिन्दुओं का सहानुभूतिपूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला कोई नहीं है। यही कारण है कि लाखों बौद्ध चकमा बांग्लादेश से भागकर और काश्मीरी हिन्दू काश्मीर से भागकर भारत में शरणार्थी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन लोगों ने पाकिस्तान के विरुद्ध वोट दिया था। इसलिये हिन्दू भारत की नैतिक जिम्मेदारी थी कि वह इन्हें न्याय दिलाता। परन्तु क्या भारत ने अथवा और किसी देश ने यह मुद्दा राष्ट्र संघ में उठाया? जो मानवाधिकार संगठन आतंकवादियों के खिलाफ कार्यवाही पर हाय तौबा मचाते हैं वह इन लोगों के मानवाधिकार की कोई बात नहीं करते। इसके विपरीत पाकिस्तान भारतीय मुसलमानों के विषय में, हिन्दू समाज और शासन पर नितांत झूठा आरोप लगाकर भी विश्व के दूसरे देशों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल हो जाता है। मुसलमान संख्या में हिन्दुओं से कुछ ही अधिक हैं परन्तु उनकी बात कहने वाले लगभग ४० मुस्लिम प्रभुसत्ता सम्पन्न देश हैं। जो अपने को विधिपूर्वक मुस्लिम देश कहते हैं। इस्लाम को अपना राष्ट्र धर्म कहने में गौरव अनुभव करते हैं और कमोवेश उसी के अनुसार अपने नियम कानून बनाते हैं जिससे इस्लाम का मुख्य ध्येय सम्पूर्ण विश्व को इस्लाम धर्म में दीक्षित करना और शरीयत को स्थापित करना प्राप्त हो जाय। दूसरा कारण यह है कि इन्हीं देशों के पास पेट्रोलियम और एटमबम के निर्माण में काम आने वाले यूरेनियम के अपार भण्डार हैं। इस्लाम की इस शक्ति पर हम पहले भी कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। इन मुस्लिम देशों के मजहब पर आधारित संगठन हैं जिनमें बैठकर वह विचार विमर्श करते हैं कि इस्लामी ध्येय को प्राप्त करने के लिये तथा गैर मुस्लिम देशों में मुसलमानों की राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये क्या किया गया है और आगे क्या किया जाय। वह अपने पेट्रोडालर की अतुल आमदनी से इस कार्य के लिये मुक्त हस्त से सहायता करते हैं।

मुसलमान कभी काफिरों का तुष्टीकरण नहीं कर सकते। वह कभी सत्ता प्राप्ति के

लिये भी उनके गैर इस्लामी विश्वासों की रक्षा नहीं करेंगे। क्या कोई महत्वपूर्ण मुस्लिम नेता यह घोषणा कर सकता है कि वह शंकराचार्यों के ख्वाबों का देश बनायेगा? कि उसके आदर्श शिवाजी, प्रताप और गुरु गोविन्द सिंह हैं?

किन्तु भारत में हिन्दू नेता और बुद्धिजीवी सदैव सत्ता और वैयक्तिक लाभ के लिये मुस्लिम और ईसाई तुष्टीकरण करते रहे हैं। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने तो स्पष्ट कह डाला कि वह अली मियाँ के ख्वाबों का हिन्दुस्तान तामीर करना चाहते हैं। अलीमियाँ के ख्वाबों का हिन्दोस्तान क्या है? वह उन्होंने अपनी पुस्तिका "द न्यू मीनेस एंड इट्स–आन्सर" में पहले ही स्पष्ट कर दिया है। वह लिखते हैं : ऐसा लगता था कि अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट ने इस देश को जो ४०० वर्ष तक इस्लामी राज्य की सुखद छाया में रह चुका था बहुदेवतावाद के कीचड़ में डुबाने का लगभग निश्चय कर लिया था। किन्तु----अकबर का प्रत्येक वंशज अपने पूर्वज से बेहतर साबित हुआ। और फिर आया औरंगजेब जिसका शासन काल इस्लाम और धार्मिक सुधार के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ अध्याय है। अलीमियां ने आशा व्यक्त की है कि वह इतिहास भारत में फिर दोहराया जायगा।[४७]

इतिहास के पाठ

यदि समाचार पत्रों में छपी रिपोर्ट सत्य है तो श्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा समुद्री सेना के चीफ एडमिरल वी.एस.शेखावत द्वारा उठाये गये भारतीय नौसेना की उपेक्षा के प्रश्न को भारतीय जनता पार्टी के सांसदों को लोकसभा में उठाने की अनुमति न देना असंगत था।

नौसेना की संख्या और क्षमता की गिरावट की गम्भीरता को स्वीकारने के स्थान पर शासन की ढुलमुल (सड़क के मध्य चलने की) नीति और निर्णय लेने की अक्षमता के कारण पिछले 10 वर्ष में हमारे समुद्र तट की रक्षा की क्षमता में गम्भीर कमी आयी है।

रक्षा मंत्रालय और सुरक्षा पर संसद की स्टैन्डिग कमेटी दोनों को ही स्थिति का पूर्ण ज्ञान है किन्तु सम्पूर्ण शासन में उसकी अत्याआवश्यकता और जिम्मेदारी की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं है। श्री चिदम्बरम द्वारा अपने बजट भाषण में सुरक्षा साधनों पर किये गये बजट प्राविधानों पर केवल यह दो चार शब्द बोलकर छुट्टी पा लेना ठीक नहीं था, कि इस वर्ष बजट में 1962 से आज तक सुरक्षा के लिये सबसे कम प्राविधान किया गया है। (देश की सुरक्षा की कीमत पर सेना का व्यय कम करना गर्व का कारण नहीं है----लेखक।)

हमारा इतिहास बताता है कि हम सामुद्रिक युद्ध में बलवान शत्रुओं से सदैव हारते रहे हैं। आक्रमणकारी मुसलमान हों या पुर्तगीज इतिहास के पाठ हमारे सामने हैं और हम उनको अत्यन्त जोखिम उठाकर ही अनदेखा कर सकते हैं। 350 वर्ष ईसा पूर्व चीनी विद्वान द्वारा प्रतिपादित किया सिद्धान्त आज भी उतना ही ठीक है जितना कि उस समय था : ये मानकर मत चलो कि शत्रु आयेगा नहीं ये मानकर चलो कि यदि वह आया तो हमें हर प्रकार से तैयार पायेगा। ये मानकर मत चलो कि वह आक्रमण नहीं करेगा अपितु अपने को सब प्रकार से अजेय बनाकर रखो।

(कप्तान आर.वीर (अवकाश प्राप्त) अध्यक्ष इन्डियन मेरी टाइम फाउन्डेशन 1/402, मेरा गार्डेन्स, कोरगाँव रोड, पुणे- हिन्दुस्तान टाइम्स सितम्बर 1996 में सम्पादक को लिखे एक पत्र में)

८

निःसन्देह इस्लाम कुफ्र के विरुद्ध निरन्तर युद्धरत है

इस्लाम सम्पूर्ण पृथ्वी को, अपनी बपौती मानता है। काफिरों ने न केवल मुसलमानों से भौतिक सत्ता छीनी है अपितु उन्होंने उस भूमि के वास्तविक स्वामी अल्लाह और उसके कानून के प्रति उसके बन्दों की श्रद्धा भी छीनी है। उन्हें बहुदेवता और मूर्ति पूजक बन जाने दिया है। उन पर मानव कृत संविधानों के अनुसार शासन स्थापित किया है।

पैगम्बर की एक हदीस के अनुसार उन्होंने कहा था कि पृथ्वी अल्लाह और उसके रसूल की है। (मुस्लिम ४३६३) तदानुसार मुस्लिम विद्वानों का मत है कि जो हमारे रसूल की है उसके उत्तराधिकारी हम हैं। इस प्रकार यदि मुस्लिम शासक मुस्लिम समाज के विधिवत उत्तराधिकार को वापिस पाने के लिये युद्ध करते हैं तो वह आक्रमण के दोषी नहीं हैं। सयद कुत्ब कहते हैं : अल्लाह के शासन की घोषणा का अर्थ है उसके शासन को अपहरणकर्ताओं के हाथों से छीन कर उसके (वास्तविक उत्तराधिकारियों के) हाथों में सौंपना।[(४८)]

अल्लाह की भूमि और उसके बन्दों के मन और मस्तिष्क को इन अपरहरणकर्ताओं से छुड़ाकर अल्लाह को सौंपने के प्रयासों को जिहाद कहा जाता है। यह प्रत्येक मुसलमान का धार्मिक कर्तव्य है। जिहाद केवल युद्ध नहीं है। युद्ध तो उसका अनेक उपायों में से एक उपाय है। यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। परिस्थिति के अनुसार उद्देश्य प्राप्त करने के लिये "दुष्टों को उपदेश, लोभ, कूटनीति, प्रताड़ना, डराना, धमकाना, आतंक और यदि सभी उपाय असफल हो जायें और परिस्थिति अनुकूल हो तो तलवार द्वारा उनका उन्मूलन कर डालना, सभी का उपयोग इस उद्देश्य प्राप्ति के लिये किया जा सकता है। मत अथवा सुधार प्रचार का यह तरीका इस्लाम की ऐसी विशेषता है जो दूसरे धर्मों में नहीं है।

मौहम्मद साहब की एक हदीस से यह बात स्पष्ट हो जाती है : "मुझ (मौहम्मद) को उस समय तक मनुष्यों से युद्ध करने का (अल्लाह) का आदेश हुआ है जब तक कि वह यह सत्यापित न करें कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा उपास्य नहीं है और मैं उसका (अल्लाह का) संदेश वाहक हूँ और उस सब में विश्वास न करें जो मेरे द्वारा लाया गया है।" (सही मुस्लिम-३१)

इस्लाम के प्रसार के लिये शस्त्र उठाने और युद्ध करने के लिये कुरान बार-बार मुसलमानें से आग्रह करती है और उपदेश देती है। उससे मन चुराने वालों की निन्दा करती है। उसमें भाग लेने वालों को यथेष्ट पारितोषिक की घोषणा करती है। जो विजयी हों उनके लिये भी और जो मारे जायें उनके लिये भी।

१- "युद्ध तुम्हारे लिए अनिवार्य कर दिया गया है भले ही वह तुम्हें अच्छा न

लगता हो। हो सकता है कोई वस्तु जो तुम्हारे लिये वास्तव में लाभदायक है तुम्हें अच्छी न लगे। और यह भी हो सकता है कि जो तुम्हें अच्छी लगे वह वास्तव में तुम्हारे लिये हानिकारक हो। अल्लाह जानता है तुम नहीं जानते।"(कुरान २:२१६)

२- "युद्ध करो उनसे तब तक कि प्रताणन (मक्का निवासियों द्वारा पैगम्बर को इस्लाम के प्रचार-प्रसार से रोकने के लिये अनेक प्रकार की प्रताड़ना) समूल नष्ट हो जाए और केवल अल्लाह के मत (इस्लाम) का ही वर्चस्व स्थापित न हो जाए। किन्तु यदि वह (प्रताड़ना) से रुक जायें तो अल्लाह उनके सब कार्यों को देखने वाला है।"(कुरान ८:३९)

३- "ऐ मुसलमानों उन गैर-मुसलमानों से युद्ध करो जो तुम्हारे आसपास हैं। उन्हें तुम्हारी कठोरता का अनुभव हो। विश्वास करो कि अल्लाह उनके साथ है जो उसके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने में लगे हैं।"(कुरान ९:१२३)

४- "जब पवित्र महीने निकल जायें तो तुम्हें जहाँ भी मूर्ति पूजक मिल जाएँ उन्हें कत्ल कर दो। उन्हें बन्दी बना लो, उनको घेर लो, उन पर छापे मारो। किन्तु यदि वह तौबा करें, नमाज़ और ज़कात (गरीब मुसलमानों को अपनी आय का एक निश्चित भाग दान देना) स्वीकार कर लें तो उन्हें जाने दो। अल्लाह क्षमा करने वाला और दयालु है।" (कुरान ९:५)

५- "किताब वाले" (ईसाई और यहूदी) जो न अल्लाह पर ईमान लाते हैं और न अंतिम दिन पर और न उसे हराम करते है जिसे अल्लाह और उसके रसूल ने हराम ठहराया है और न सच्चे दीन (इस्लाम) को अपना दीन बनाते हैं (अर्थात मुसलमान होने से इन्कार करते हैं) उनसे लड़ो, यहाँ तक कि वह अप्रतिष्ठित होकर अपने हाथ से जिज़िया देने लगें। (कुरान ९:२९)

६- "तुम्हारे पास हथियार हल्के हों या भारी (युद्ध के लिये) निकल पड़ो और अपनी सम्पत्ति और जीवन की बलि देकर भी अल्लाह के मार्ग में जिहाद करो। तुम्हारे लिये इससे उत्तम और कुछ भी नहीं है। यदि तुम जानते।" (कुरान ९:४१)

कुछ लोग युद्ध में न जाने के लिये विविध प्रकार के बहाने बनाते हैं।

७- "ऐ मौहम्मद ! केवल वही लोग तुमसे युद्ध में जाने से छुट्टी माँगते हैं जिनको अल्लाह और क़यामत पर विश्वास नहीं है। जिनके हृदय संशय से भरे हैं। इसी संशय के कारण उनका मन डाँवा डोल होता है। (कुरान ९:४५) किन्तु उन्हें पता नहीं कि युद्ध में न जाने वालों को क्या दण्ड मिलेगा।

८- यदि तुम (युद्ध के लिये) नहीं जाओगे तो वह (अल्लाह) तुम्हें कष्टदायक दुर्भाग्य से दण्डित करेगा। तुम्हारे स्थान पर दूसरे लोगों को चुन लेगा (अर्थात् तुम युद्ध से होने वाले लाभ से वंचित हो जाओगे)। तुम अल्लाह को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। अल्लाह सब कुछ करने योग्य है। (कुरान ९:३९)

जो युद्ध के लिये जाने में आना-कानी करेंगे, बहाने बनायेंगे उनको किन लाभों से वंचित होना पड़ेगा?

९- किन्तु जो अल्लाह के काम में प्रयत्नशील रहेंगे उन मुसलमान स्त्री पुरुषों से

अल्लाह वायदा करता है कि उनका निवास अदन के बागों जैसे बागों में बनी पाक इमारतों में होगा। जिनके नीचे नदियाँ बहती हैं और इससे भी अधिक नियामतें। इससे अधिक सोचा भी नहीं जा सकता। (कुरान ९:७२)

इस धार्मिक उद्देश्य के लिये अल्लाह के मार्ग में युद्ध करना हर दृष्टि से लाभदायक है।

१०– "जो इस सांसारिक जीवन को दूसरे जीवन के लिये बेचना मंजूर करते हैं वह अल्लाह के मार्ग में लड़ें। जो अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं वह मृत्यु को प्राप्त हों या विजय को उन्हें अल्लाह महान पारितोषिक देता है।"(कुरान ४:७४)

११– ऐ मुसलमानों ! क्या मैं (अल्लाह) तुम्हें ऐसा व्यवसाय बताऊँ जो तुम्हारी कष्टदायक अन्त से रक्षा कर सके। (कुरान ६१:१०)

१२– "ऐ (मुसलमानों) तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल में विश्वास करना चाहिये और अल्लाह के कार्य के लिये अपने जीवन और धन से जिहादरत रहना चाहिये। यही तुम्हारे लिये हितकारी है। किन्तु यदि तुम्हें इस बात का पता हो।"(कुरान ६१:११)

१३– "वह (अल्लाह) तुम्हारे पाप क्षमा कर देगा और तुम्हें इस प्रकार के बागों में ले जायेगा जिनके नीचे नदियाँ बहती हैं और अदन के बागों जैसे सुन्दर रहने के स्थान हैं। इससे अधिक इनाम क्या हो सकता है ?"(कुरान ६१:१२)

१४– "और वह (अल्लाह) तुम्हें दूसरे पारितोषिक भी देगा। जोकि तुम्हें बहुत प्रिय हैं। अल्लाह की सहायता और विजय" (कुरान ६१:१३) विजय अर्थात् युद्ध से प्राप्त लूट का माल स्त्री बच्चे गुलाम इत्यादि। मुसलमानों को मृत्यु का भय नहीं होना चाहिये।

१५– "जो अल्लाह के मार्ग में (लड़ते हुए) मारे गये हैं उन्हें मृत मत समझो। नहीं, नहीं वह तो जीवित हैं और अल्लाह द्वारा दी गयी अनेक बरकतों का आनन्द उठा रहे हैं। (३:१६७–१७०)

१६– जो अल्लाह के मार्ग में युद्ध में मारे गये हैं उन्हें मृत मत कहो। नहीं, नहीं वह तो जीवित है केवल तुम्हें दिखाई नहीं देते। (कुरान ३:१५४)

१७– जो लोग अल्लाह की राह में युद्ध करने के लिये जाने में मृत्यु का भय करते हैं अल्लाह उन्हें बताता है कि "ऐ मुसलमानों ! उन गैर मुसलमानों की तरह मत सोचो जो कहते हैं, "यदि हमारे बन्धु अल्लाह की राह में विदेश अथवा युद्ध को न जाते तो उनकी मृत्यु न होती और वह मारे न जाते। अल्लाह ही जीवन देता है और मृत्यु भी। अल्लाह वह सब देखता है जो तुम करते हो।" (कुरान ३:१५६)

ब्रिगेडियर मलिक की पुस्तक "द कुरानिक कन्सेप्ट आफ वार" की भूमिका में अल्लाह बखश के.ब्रोही गैर मुसलमानों के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं "बहुत से पश्चिमी विद्वान कुरान की उपरोक्त आयतो (८:३९ और ९:२९) पर उंगली उठाते हैं कि इस्लामी संसार गैर मुसलमानों के विरुद्ध निरन्तर युद्धरत है। उनको इतना बता देना ही काफ़ी है कि यदि कोई व्यक्ति जो कि अल्लाह का गुलाम मात्र है अल्लाह की सत्ता की अवज्ञा करता है तो वह राजद्रोह का अपराधी करार दिया जा सकता है। इस प्रकार का व्यक्ति

इस्लाम की दृष्टि से मानवता के ऊपर कैन्सर के अर्बुद जैसा ही है-- शेष मानव समाज को बचाने के लिये ऐसे कैन्सर को सर्जरी द्वारा काट फेंकना आवश्यक हो जाता है।" सत्य यही है कि इस्लाम में काफिरों के साथ स्वैच्छिक सहअस्तित्व की सम्भावना की कोई गुंजाइश नहीं है। "हिदाया" के यशस्वी लेखक अल-मार्धिनानी ठीक ही कहते हैं कि कुफ्र के साथ युद्ध ही आदर्श है। शान्ति उन परिस्थितियों में ही सम्भव है जो मुसलमानों के वश के बाहर हैं।[४९] इस्लाम का सुधारवादी स्वरूप उसके जन्म के समय की परिस्थितियों और उसके द्वारा राज्य सत्ता की स्थापना के उद्देश्य के प्रकाश में इस्लाम के विद्वानों द्वारा इस्लाम और शरियत की अनेक व्याख्याओं को जो प्रथम दृष्टि में तर्कहीन और विचित्र लगती हैं, समझना सहज हो जाता है।

यह नहीं भूलना चाहिये कि सुधारक की दृष्टि सदैव सुधार आन्दोलन की सफलता पर केन्द्रित रहती है। जब राज्य सत्ता का भी एक मात्र उद्देश्य सुधार आन्दोलन को सफल करना हो तो उसकी सफलता के लिये राज्य द्वारा लड़े जाने वाले युद्ध भी सुधार आन्दोलन के अंग बन जाते हैं।

युद्ध का एक मात्र उद्देश्य विजय प्राप्त करना ही होता है। युद्ध में नैतिक मूल्यों का कितना ही ढिंढोरा क्यों न पीटा जाय वास्तविकता यही है कि युद्ध जीतने के लिये मानवतावाद और जिनेवा कन्वेंशन जैसे सिद्धान्त ताक पर रख दिये जाते हैं। अपने पक्ष की कम से कम और विपक्ष की अधिक से अधिक हानि हो, जिससे विजय शीघ्र प्राप्त हो सके, यही एक मात्र ध्येय रह जाता है।

आधुनिक काल में अमेरिका द्वारा जापान पर अणु बम गिराकर लाखों जापानी नागरिकों का संहार और ईराक में सहस्रों टन विस्फोटक प्रतिदिन गिराकर वहाँ के नागरिकों की अमानुषिक हत्यायें करने में कौन सी नैतिकता थी?

युद्ध में शान्तिकाल के सामान्य नियमों का अनुसरण नहीं हो सकता, न उनके कारण पराजय को न्यौता दिया जा सकता है। मुख्य उपलब्धि के लिये दूसरी सभी बातें गौण हो जाती हैं।

महाभारत के पश्चात् भारतवर्ष में अनेकों घटनायें देखने को मिलती हैं जिसमें शत्रु को पराजित करने के पश्चात् अविवेकपूर्ण उदारतावश उसे और उसकी सेना को सकुशल वापिस जाने दिया गया। फलस्वरूप शत्रु दुगनी तैयारी के साथ वापिस आया और पहली विजय घोर खूनी पराजय में बदल गई। शत्रु ने अपने साथ नैतिक सहृदयता दिखाने वाले शत्रु पर कोई दया नहीं दिखाई। कोई भी बुद्धिमान और सफल सेना नायक ऐसा नहीं करता, न उसे ऐसा करना चाहिये। युद्ध-युद्ध है और वह जीतने के लिये ही लड़ा जाता है। उदारता और क्षमाशीलता प्रदर्शन करने के लिए नहीं।

इस्लाम का तो घोषित ध्येय ही है दूसरे सभी मत मतान्तरों, जहीलिया संस्कृतियों और इतिहास को जड़ मूल से नष्ट कर उनके स्थान पर इस्लामी विश्वास, इस्लामी संस्कृति और इस्लामी कानून (शरियत) की स्थापना। इसलिए युद्ध में विजय के पश्चात्

इस्लाम का अपने इस ध्येय की प्राप्ति के लिये उन गैर मुसलमानों का संहार जो सुधरने से इंकार करते हों, उनकी संस्कृति के मुख्य अंग उनके मंदिरों पाठशालाओं और इतिहास को नष्ट करना सुधार के कार्यान्वयन के लिये अनिवार्य होता हे। यही नियम है।

भारत में हिन्दुओं और उनके मन्दिरों की संख्या अत्यधिक थी इसलिए उनको समूल नष्ट करने के स्थान पर वह सुविधायें दे दी गई जो इस्लाम के अनुसार ईसाईयों और यहूदियों को ही दी जा सकती हैं। अपमानजनक आर्थिक दण्ड जिजिया कर देकर तीसरी श्रेणी का नागरिक बन जीवित रहने का अधिकार। नये मंदिर नहीं बनाये जा सकते। पुरानों की मरम्मत नहीं की जा सकती जिससे समय के साथ वह स्वयं ही नष्ट हो जायें। उनको शासन में सिवाय निम्नतम् श्रेणी के कर्मचारियों के कोई स्थान अथवा वोट का अधिकार नहीं दिया जा सकता। वह अपनी पूजा अथवा त्योहार सार्वजनिक रूप से नहीं मना सकते। इत्यादि-इत्यादि। इस सब प्रताड़ना का एक ही ध्येय है : उनको उस समय तक अभिशापित जीवन की अनिच्छुक मंजूरी जब तक उनमें सत्य मत इस्लाम ग्रहण करने की सद्इच्छा उत्पन्न न हो जाये।[५०]

इस प्रकार कुरान और हदीस ग्रन्थों की मदरसों मकतवों में शिक्षा और मस्जिद में प्रवचन द्वारा मुसलमानों को निरन्तर काफिरों और कुफ्र के विरोध और घृणा की प्रेरणा दी जाती रहती है जो इस्लाम का मुख्य ध्येय है। धर्मनिष्ठ मुसलमान इसके अनुसार कुफ्र और काफिरों के विरुद्ध सब प्रकार से संघर्ष करने को सदैव तत्पर रहते हैं।

क्या इस्लाम केवल सुरक्षात्मक युद्ध की ही अनुमति देता है? जी नहीं।

अन्तर्देशीय ख्याति प्राप्त इस्लामी पुस्तकों के विक्रेता, किताब भवन नई दिल्ली-११००२ द्वारा प्रकाशित हिदाया के चार्ल्स हैमिल्टन द्वारा अंग्रेजी अनुवाद में इस्लाम के प्रति अविश्वास रखने वाले लोगों के विरुद्ध युद्ध के विषय में जो व्यवस्थायें दी गयी हैं उनके निम्नलिखित हाशिये (मार्जिन) के शीर्षक ध्यान देने योग्य हैं। विस्तारपूर्वक पढ़ने के लिये हिदाया पढ़ना चाहिये।

१- इस्लाम पर विश्वास न लाने वालों के विरुद्ध मुसलमानों के किसी न किसी दल द्वारा हर समय युद्ध अवश्य किया जाना चाहिये।(II- पृ. १४०)

२- इस्लाम पर विश्वास न लाने वालों के ऊपर बिना किसी कारण के भी आक्रमण किया जा सकता है।(II- पृ. १४२)

३- इस्लाम पर विश्वास न लाने वालों को पहले इस्लाम ग्रहण करने के लिये कहना चाहिये। यदि वह इस्लाम स्वीकार न करें और जिज़िया देने से इंकार करें तो उन पर आक्रमण किया जा सकता है।(II- पृ. १४३-१४४)

मकतवा अल हसनात २२४१, कूचा चेलान दरियागंज नई दिल्ली से प्रकाशित "कुरआन मजीद" (हिन्दी) की भूमिका में अनुवादक लिखते हैः "इस्लाम पूर्ण जीवन व्यवस्था है- इस जीवन व्यवस्था की स्थापना के लिये इतना ही काफी नहीं है कि उसे गैर इस्लामी जीवन के ध्वजवाहकों के हमले से बचाया जाय। बल्कि इसकी स्थापना के लिये ऐसा समय

भी आता है जब दूसरी व्यवस्थाओं के उखाड़ने और इसे स्थापित करने के लिये स्वयं आगे बढ़कर विरोधियों पर वार भी करना पड़ता है।"

मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, शहीद सयद सलार मसूद गाजी, मौहम्मद गौरी, बाबर इत्यादि अनेक आक्रामक भारत के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने अपने देश से चलकर यहाँ आये थे। यहाँ के निवासी उनके देश पर आक्रमण करने नहीं गये थे। उनके आक्रमण इस्लामी थे और इस्लाम के अनुकूल थे। कोई भी मुस्लिम इतिहासकार और इस्लाम का महत्वपूर्ण व्यक्ति इनकी निन्दा नहीं करता। बेग कहते हैं: "जब तक मुसलमान कमजोर थे कुरान उन्हें आक्रमण करने से रोकती रही किन्तु बाद में जब उन्होंने पर्याप्त बल संग्रह कर लिया और पूरा अरेबिया उनके अधीन हो गया तब कुरान में लूट के माल और युद्ध बन्दी स्त्रियों की बात आती है। सुरक्षात्मक युद्ध में लूट और बन्दी कहाँ से आयेंगे?"[५० क]

१९ जनवरी १९९३ के टाइम्स आफ इण्डिया में सयद जुबेर अहमद का यह वक्तव्य नितान्त सत्य है। "विश्व भर में मुस्लिम अल्पसंख्यकों ने गैर मुस्लिम सम्प्रदायों का हिंसात्मक विरोध किया है। जैसे कि फिलिस्तीन में इन्तीफदा नामक संगठन अथवा साइप्रस और सिंकियांन जैसे स्थानों पर उन्होंने अपना व्यवहार अतिवादी और असमझौता परक रखा है।" डा. अली ईसा उस्मान जो शिक्षा पर यू.एन.आर.डब्लू.ए. के कई वर्ष परामर्शदाता रहे हैं "द मुस्लिम माइन्ड" लांगमेन्स १९७६ में लिखते हैं कि "इस्लाम का प्रसार सैनिक रहा है। इसके लिये क्षमा वादी होने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो कुरान का आदेश है कि उसके प्रसार के लिये युद्ध करना आवश्यक है।" [५० ख]

सयद कुत्ब भी जिहाद को एक व्यवहारिक सिद्धान्त मानते हैं जिसे मुसलमानों द्वारा कभी भी त्यागा जाना नहीं चाहिये। वह उन आधुनिक मुसलमानों की भर्त्सना करते हैं जो जिहाद को "केवल रक्षात्मक" सिद्ध करने के लिये लम्बे लम्बे लेख लिखते हैं। कुत्ब ऐसे व्यक्तियों को "आध्यात्मिक और बौद्धिक पराजयवादी" कहते है।" जो समझते है कि जिहाद को "रक्षात्मक" सिद्ध करने से वह इस्लाम की सेवा कर रहे हैं वास्तव में वह इस्लाम से एक ऐसे सिद्धान्त को छीनने का प्रयास करते है जो कि सभी आधुनिक गैर–इस्लामी राजनीतिक दर्शनों को नष्ट करने में विश्वास करता है।"[५१]

इसलिये श्रद्धानन्द या लेखराम अथवा मिस्र के अनवर सादात के हत्यारे या काश्मीर के आतंकवादी या मालाबार, कोहाट इत्यादि स्थानों के मुस्लिम दंगाई, जिन्होंने अपने हिन्दू पड़ोसियों के कत्ल बलात्कार और बलात धर्मान्तरण किये, मुस्लिम विद्वानों की भर्त्सना के पात्र नहीं हो सकते। कोई भी मुस्लिम विद्वान उनके कृत्यों की निंदा नहीं कर सकता क्योंकि काफिरों के साथ यह व्यवहार कुरान और हदीसों के अनुकूल है और इस्लाम के प्रसार में सहायक है जो इस्लाम का धार्मिक ध्येय है।

निश्चय ही इस्लाम कुफ्र के विरुद्ध निरन्तर युद्धरत है। यह युद्ध तभी समाप्त होगा जब विश्व से कुफ्र समाप्त होकर अल्लाह का मत इस्लाम और अल्लाह का कानून शरियत स्थापित हो जाये।

९

युद्ध के अनिवार्य परिणाम

युद्ध के कुछ अनिवार्य परिणाम होते हैं। निरन्तर युद्धरत समाज में यह परिणाम निरन्तर बने रहते हैं। यहाँ तक कि वह सम्पूर्ण समाज की स्थायी मानसिकता ही बन जाते हैं। युद्ध भयानक होता है किन्तु युद्ध में पराजय इससे भी अधिक भयावह होती है। इसलिये युद्ध में विजय प्राप्त करना युद्धरत राज्य के प्रत्येक नागरिक का प्राथमिक ध्येय और कर्तव्य बन जाता है। जीवन के नैतिक और दूसरे मूल्य, नागरिकों के जन्मजात अधिकार इत्यादि गौण हो जाते हैं। युद्ध जीतने के साधन जुटाना और जैसे भी हो साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा युद्ध जीतना ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य रह जाता है।

कसौटियाँ और माप दण्ड बदल जाते हैं। नैतिकता का मूल मंत्र "जिसे अपने लिये बुरा समझते हो उसे दूसरों के लिये भी बुरा और जिसे अपने लिये अच्छा समझते हो उसे दूसरों के लिये भी अच्छा समझो" जैसे सिद्धान्त उलट जाते हैं। शत्रु की हानि, शत्रु का नाश, शत्रु के आत्म सम्मान, आत्म विश्वास का हनन और सम्पत्ति का नाश कर उसको आतंकित कर देना ही धर्म बन जाता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किये गये कार्यों को कूटनीति और रणनीति के नाम पर औचित्य प्रदान कर दिया जाता है। पैगम्बर ने कहा है "युद्ध छल कपट (दाँव घात) है। (सही मुस्लिम ४३११)

निरन्तर युद्धरत इस्लाम में काफिरों और कुफ्र के विषय में की गई घोषणाओं को इसी परिप्रेक्ष्य में पढ़ने पर उनको समझना सरल हो जाता है।

नागरिक क्षेत्र में भी अनेक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। युद्ध विधवाओं की और अनाथों की समस्यायें खड़ा करता है। इसलिये इस्लाम में विधवा विवाह, बहु पत्नी तथा अनाथों की रक्षा को महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य का रूप देकर इस समस्या का समाधान कर दिया गया है। स्वयं पैगम्बर ने एक हज़रत आयशा को छोड़कर सभी शादियाँ विधवाओं से की थीं यद्यपि वह चाहते तो सभी विवाह कुँवारी लड़कियों से कर सकते थे। अनाथों की रक्षा अत्यन्त पुण्य और उनकी सम्पत्ति का हरण भयंकर पाप बताया गया है।

(सही मुस्लिम ७१०७) (कुरान २:८३, १७७, २१५, ४:२, ३६, १२७, ६:१५३, १७:३४)

युद्धरत समाज के लिये अनुशासन और कुशल नेतृत्व की कितनी आवश्यकता है यह बताने की आवश्यकता नहीं। कुरान और हदीस में इस विषय पर अनेक आदेश हैं। "ऐ मुसलमानों ! अल्लाह और उसके रसूल और उन मुसलमानों की आज्ञा का पालन करो जिन्हें तुम्हारे ऊपर अधिकार दिया गया है।" (सही मुस्लिम ४५१७)

एक दूसरी हदीस है : "मुस्लिम के लिये अनिवार्य है कि अपने ऊपर नियुक्त

शासक की बात सुने (उसकी आज्ञा का पालन करे) भले ही ऐसा करना उसे पसन्द हो या न हो जब तक कि उसे कोई वर्जित कार्य करने को न कहा जाये।" (सही मुस्लिम ४५३३)

पैगम्बर और फ़र्माते हैं: "जो मेरे द्वारा नियुक्त किये गये कमाण्डर की आज्ञा का पालन करता है वह मानो मेरी आज्ञा का पालन करता है और जो उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता वह मानों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करता। (सही मुस्लिम ४५१८)

कमाण्डर और शासक की आज्ञाकारिता सैनिक अनुशासन में कितनी महत्वपूर्ण है उसको ध्यान में रखते हुए कहा गया है। "तुम अमीर (कमाण्डर, नेता अथवा शासक) की बात सुनोगे और उनके आदेश का पालन करोगे भले ही वह तुम्हारी पीठ पर कोड़े लगायें और तुम्हारी सम्पत्ति छीन लें। तुम्हें उनकी बात सुननी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।" (सही मुस्लिम ४५५४) नैतिकता की दृष्टि से अग्राह्य परन्तु युद्धरत सेना के लिये अनिवार्य। किसी अंग्रेज़ कवि के अनुसार "क्यों" पूछने का अधिकार नहीं है, तुम्हें तो केवल "करने और मरने" का अधिकार है।

इस प्रकार के सैनिक अनुशासन को धार्मिक अनिवार्यता से बाँधने के कारण ही साम्प्रदायिक दंगे हों या शान्तिपूर्ण चुनाव मुसलमान एकबद्ध होकर अपने नेताओं की आज्ञानुसार कार्य करते हैं। यह नेतृत्व मोहल्ले से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक का हो सकता है।

विजय प्राप्ति के लिये एकल नेतृत्व और एकबद्धता (संगठन) अति महत्वपूर्ण सैनिक गुण हैं।" जो भी तुम्हारी एकता को नष्ट करने का प्रयास करे उसे तलवार से मारो।" (सही मुस्लिम ४५६८)

"उसका वध कर दो।" (सही मुस्लिम ४५६९)

रण में एक से अधिक कमाण्डर भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं इसलिये "जब तुमने एक नेता चुन कर उसके अनुसरण का निश्चय कर लिया हो तो उस व्यक्ति का वध कर दो जो एकता और संगठन को हानि पहुँचाता हो।" (सही मुस्लिम ४५६७)

युद्धरत सेना के सैनिकों में बन्धुत्व भावना अत्यन्त बलवान होती है। विशेष रूप से विपक्ष के विरुद्ध। मुस्लिम समाज में गैर मुसलामनों के प्रति जिनसे वह निरन्तर युद्धरत है बन्धुत्व भावना न होने का और आपस में इस भावना के बलवान होने का यही मुख्य कारण है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने अपनी पुस्तक "भारत विभाजन के गुनहगार" में हिन्दू मुस्लिम समस्या पर विचार करते समय जिन्नाह की मुसलमानों पर असाधारण पकड़ पर गहरा आश्चर्य प्रकट किया है। वह लिखते हैं : "मुस्लिम लीग के एक सालाना जलसे में मैंने मिस्टर जिन्नाह का भाषण सुना था। इस सभा ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला। मिस्टर जिन्नाह बैठे, देखा और एक बादशाह की तरह बोले और उनके श्रोता उन्हें इस तरह निहार और सुन रहे थे जैसे वे उनके ही द्वारा चुने हुए बादशाह हैं। मैंने अपने जीवन में हिटलर की सभाओं से बढ़कर कृत्रिमता और कहीं नहीं देखी लेकिन यह उससे कुछ भिन्न थी। मैंने गाँधी जी की सभाओं में जितनी भक्ति देखी वैसी और कहीं नहीं। पर यह उससे भी भिन्न

थी। मिस्टर जिन्नाह और उनकी भीड़ के बीच एक स्वाभाविक बन्धन था जो बहुत विस्फोटक नहीं था लेकिन आसानी से तोड़ा जा सके ऐसा भी नहीं। जैसा एक राजा और उसकी प्रजा के बीच। वहाँ किसी अजनबी के प्रति एक आदिम अरुचि थी। मुझे याद है कि इस सभा में मैंने बड़ी उलझन महसूस की। मुझे देखने वालों की नजरों में जैसे कटार थी और राजनीति के प्रति अविश्वास, मैंने ऐसा ही सोचा। अलगाव और आक्रमण के भय का यह वातावरण उनमें उद्भूत हुआ या मुझमें, यह महत्वपूर्ण बिन्दु नहीं है। महत्वपूर्ण यही है कि वहाँ ऐसा वातावरण था।"[५२]

डॉ. राम मनोहर लोहिया को तनिक भी आश्चर्य न होता यदि उन्हें इस्लाम की वह सूक्ष्म जानकारी होती जो अब तक के अध्ययन से पाठकों को हो जानी चाहिये। काफ़िर, कुफ़्र और उनकी राजनीति के प्रति घोर घृणा और अविश्वास और एक बार अपने द्वारा चुने गये नेता के प्रति सैनिक अनुशासनबद्ध निष्ठा इस्लाम के ऐसे गुण हैं जो सदैव ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसकी चर्चा डॉ. लोहिया ने की है।

आक्रामता सैनिकों का गुण समझा जाता है और उनमें इस भावना का विकास तथा उसे परिपक्व करने के विशेष प्रयास किये जाते हैं। शताब्दियों से युद्धरत समाज में आक्रामकता के पारम्परिक संस्कार उत्पन्न और परिपुष्ट हो जाना स्वाभाविक है। गाँधी जी ने इसी को मुसलमानों का स्वाभाविक धौंसिया स्वभाव (Bully) होना कहा था।[५२क]

मौलाना मौहम्मद अली आदि मुस्लिम नेता सदैव हिन्दुओं को चौथे पानीपत के लिये चुनौती दिया करते थे और डींग मारा करते थे कि प्रत्येक हिन्दू मुस्लिम युद्ध में एक मुसलमान ने तीन-तीन काफिरों का वध किया है। विजेताओं द्वारा विजित लोगों के प्रति ऐसी धारणा बन जाना स्वभाविक है और एक बार स्वभाव बन जाने पर वह सहसा बदलता नहीं। मुसलमान के धौंसियापन और हिन्दू की लगातार पराजय और गुलामी से उत्पन्न कायरता का यही रहस्य है।

गुलामी के कारण जो दोष उत्पन्न होते हैं वह सहस्रों वर्षों की गुलामी भोगने वाले हिन्दू समाज के स्वभाव बन गये हैं। गुलाम को अपनी जीवन रक्षा के लिए झूठ, चापलूसी और चोरी का सहारा लेना पड़ता है। स्वामी दास को कितना ही तिरस्कृत, अपमानित और प्रताड़ित क्यों न करे उसके दो-चार सहानुभूतिपूर्ण शब्दों से दास निहाल हो जाता है। स्वामी के रीति रिवाज़, उठने बैठने का ढंग, भाषा इत्यादि दास को उत्तम लगने लगते हैं। उनकी नकल करना वह गौरवपूर्ण समझने लगता है। इसके विपरीत स्वामी अपने सेवकों के रीति रिवाज, रहन-सहन, भाषा इत्यादि की नकल कभी नहीं करते। विजेता की दृष्टि में विजित सदैव हीन होता है, सम्मान योग्य नहीं। गुलाम का सम्मान कूटनीति जन्य दिखावा हो सकता है।

सिकन्दर के साथ आये ग्रीक इतिहासकारों और चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज ने हिन्दुओं को सर्वश्रेष्ठ योद्धा बताया है। कहा है कि देश में चोरों के न होने से घरों में ताला लगाने की प्रथा नहीं है। करार लिपिबद्ध नहीं किये जाते हैं क्योंकि मौखिक

करारों से कोई पलटता नहीं है। झूठ बोलकर जान बचाने से सत्य बोलकर दण्ड पाना हिन्दू उत्तम समझते हैं।(५२ख)

१००० वर्ष मुसलमानों और २०० वर्ष अंग्रेजों की गुलामी के पश्चात् गाँधी जी को कहना पड़ा "मेरा अनुभव है कि मुसलमान धौंसिया होता है और हिन्दू कायर।" कर्नल वेजवुड ने पार्लियामेन्ट में बोलते हुए कहा था कि "मुसलमान हिन्दुओं से अधिक शौर्यवान् होता है" और आशा की थी कि "समय के साथ हिन्दू वह सीख जायेंगे जो हमने सीखा है कि जो व्यक्ति अपनी रक्षा करने में असमर्थ होता है वह सदैव अपने को निःसहाय पाता है।"(५२ग)

और चोरी की तो बात ही क्या? प्रधानमंत्री, अनेक मंत्रियों, कम से कम एक सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश और पत्रकारों पर सार्वजनिक रूप से रिश्वत के आरोप हैं। सम्भव है यह आरोप बेबुनियाद सिद्ध हों। परन्तु यह सब तो वह स्तम्भ हैं जो इस प्रकार के संशय से बिल्कुल ऊपर होने चाहियें।

इसके विपरीत मुसलमान अपने इतिहास के १००० वर्षों में अनेक देशों पर आक्रमण करते और विजय पाते रहे हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपनी शिक्षा और प्रवचनों द्वारा उन्होंने अपनी आक्रामकता को बनाये रखा है जैसा कि मौहम्मद साहब ने उनको बार-बार अन्यत्र उद्धृत उपदेश दिया है। हमने उड्यन मंत्री गुलाम नबी आज़ाद द्वारा मुस्लिम मदरसों में बन्दूक की संस्कृति की शिक्षा दिये जाने सम्बन्धी वक्तव्य भी उदधृत किया है।

हथियारों को चलाना सीख लेना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें निरन्तर अभ्यास बनाये रखना भी आवश्यक है : "जिसने धनुर्विद्या सीखकर फिर उसका अभ्यास छोड़ दिया है वह अल्लाह के पैगम्बर के आदेशों की अवहेलना का दोषी है।" (सही मुस्लिम ४७१४)

फिर मुसलमानों को सावधान करते हुए फ़र्माते हैं : (भविष्य में) तुम्हें राज्याधिकार प्राप्त होंगे और तुम्हारे (शत्रुओं) के लिये अल्लाह काफ़ी होगा। किन्तु अपने बाणों से खेलना कभी बन्द मत करना।" (सही मुस्लिम ४७१७) अर्थात् हथियार रखना और उनके उपयोग में भी सदैव पारंगत बने रहना।

इसलिये मुसलमान अपने को अपनी हैसियत के अनुसार सदैव हथियार बन्द रखते हैं। क्योंकि यही उनकी धर्मनिष्ठा है। अपने हथियारों के उपयोग में वह कभी शिथिल नहीं होते और अपने नेता के आह्वान पर काफिरों के विरुद्ध युद्ध के लिये सदैव तैयार मिलते हैं। फिर यदि एक-एक मुसलमान तीन-तीन अहिंसावादी, हथियार विहीन, असंगठित, अनुशासन हीन, असावधान, इस्लाम के वास्तविक स्वरूप से नितांत अनभिज्ञ नेतृत्व के पीछे चलने वाले हिन्दुओं को मारने में सफल हो जैसा मौहम्मद अली ने कहा था तो आश्चर्य क्या?

निरन्तर चलने वाले युद्ध की कुछ अपरिहार्य आवश्यकतायें होती हैं। पहली आवश्यकता होती है पर्याप्त संख्या में और कभी भी कम न पड़ने वाली योद्धाओं और नेतृत्व

की संख्या को जुटाना। निरन्तर शताब्दियों तक चलते शीत और सामरिक युद्ध में बूढ़े नेतृत्व की जगह युवा नेतृत्व और बूढ़े सैनिकों की जगह युवा सैनिकों की आपूर्ति होते रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य मदरसों मकतबों द्वारा निरन्तर होता रहता है और इनकी संख्या बढ़ाने पर बहुत बल दिया जाता है। इसलिये इस्लाम को न मिशनरियों की कमी रहती है न कुशल योद्धाओं और नेतृत्व की।

श्रद्धानन्द का वध हो जाने से हिन्दू संगठन और शुद्धि कार्य लगभग समाप्त हो गया क्योंकि आर्य समाज कोई दूसरा श्रद्धानन्द उत्पन्न नहीं कर सका। भगत सिंह इत्यादि की फाँसी के बाद क्रांतिकारी आन्दोलन ठप हो गया। ऐसी स्थिति इस्लामिक संगठन में आना सम्भव नहीं है क्योंकि वहाँ लाखों दीन के दीवाने अपूर्व और समर्पित विद्वान् मदरसों से तैयार होकर प्रतिवर्ष निकलते हैं।

काफ़िर देश में इस्लाम परिवार नियोजन की अनुमति नहीं दे सकता। निकाह के समय एक हदीस पढ़ी जाती है जिसमें पैगम्बर द्वारा कहा गया बताते हैं कि कयामत के दिन उन्हें उन मुसलमानों पर गर्व होगा जिनके परिवार बड़े होंगे और उस दिन उनके अनुयाइयों की संख्या अन्य तमाम धर्मों के अनुयाइयों से अधिक होगी। इस प्रकार के प्रोत्साहन में आश्चर्यजनक अथवा असंगत कुछ भी नहीं है। युद्धरत आर्यों में भी नवविवाहिता को यही आशीष दी जाती थी "तुम एक सौ पुत्रों की माता बनों।" दूसरे विश्व युद्ध में फ्रांस की हार का कारण मार्शल पेताँ के अनुसार जन्म दर का अति कम हो जाना था।

युद्धरत कौम के सैनिकों को सदैव हथियारों के उपयोग में पारंगत रहना चाहिये। पैगम्बर ने अपने एक प्रवचन में कहा था : "उनका (काफिरों का) सामना करने के लिये अपनी भरपूर शक्ति के साथ सदैव तैयार रहो। याद रखो शक्ति का स्रोत है धनुर्विद्या में निपुणता। शक्ति का स्रोत है धनुर्विद्या में निपुणता।"(सही मुस्लिम ४७११)

मुस्लिम समाज में हथियार रखने का आकर्षण इसी परम्परा का परिणाम है। यदि आंकड़े इकट्ठे किये जायें तो कदाचित् आग्नेय अस्त्रों के लाइसेंस दूसरे सम्प्रदायों की तुलना में मुसलमानों के पास सबसे अधिक होंगे।

पैगम्बर के १४०० वर्ष पश्चात् इसी सत्य को महान कॉम्युनिस्ट चीनी नेता माओ ने अपने अनुयाइयों को बताया था "शक्ति की स्रोत है बन्दूक की नाल।"

अच्छे सैनिक अनुशासनबद्ध होने के कारण मुसलमान अच्छे सेवक और मित्र भी होते हैं। इसलिए जब तक साम्प्रदायिक उबाल न आवे मुसलमान अच्छे मित्र, साथी और अच्छे सेवक भी सिद्ध होते हैं। धर्मनिष्ठा के तकाजे पर काफिर विरोधी स्वाभाविक उत्तेजना आने पर ही वह सब नाते रिश्तों को भुलाकर अल्लाह और पैगम्बर के आदेशानुसार अपने दीन का पक्ष लेते हैं।

१०

सुधरे समाज की सुरक्षा

जहाँ निरन्तर युद्धरत समाज को सदैव युद्ध के लिये तैयार रहना पड़ता है वहीं उसे सदैव शत्रु के आक्रमण का भय भी बना रहता है। उसे शत्रु के प्रतिघात से चौकन्ना रहना पड़ता है। ऐसी सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं कि शत्रु किसी समय भी उसे असावधान न पा सके इसलिये मुसलमानों को आदेश है कि यदि उन्हें शत्रु द्वारा आक्रमण का खतरा हो तो अपने हथियार पास रखकर ही नमाज़ पढ़ें। सब एक साथ नमाज़ न पढ़ें। एक दल नमाज़ पढ़े तो दूसरा दल सुरक्षा के लिए तैयार खड़ा रहे।

यह तो हुई शत्रु द्वारा सशस्त्र आक्रमण के विरुद्ध सावधानी। किन्तु शीत युद्ध में भी एक दूसरा भय बना रहता है। कहीं सुधरा हुआ समाज अथवा व्यक्ति फिर उसी बुराई में लिप्त न हो जाय जिससे कठिनतापूर्वक उसका पीछा छुड़ाया गया है। ऐसा बहुधा होता है। लोग सिगरेट, शराब इत्यादि बुराई बड़े परिश्रम और कष्ट उठाकर छोड़ते हैं किन्तु थोड़ी असावधानी अथवा उन बुराइयों में लिप्त व्यक्तियों के सम्पर्क के कारण फिर उन्हीं बुराइयों में लिप्त हो जाते हैं।

मूर्ति पूजा छोड़कर मुसलमान बनाये गये व्यक्ति विशेषरूप से जब वह सामाजिक जीवन में काफिर और मूर्ति पूजकों के दिन रात सम्पर्क में आते हों फिर मूर्ति पूजक बन जाने के खतरे का सामना करने के लिये, अल्लाह मूर्ति पूजकों, ईसाईयों, यहूदियों इत्यादि के प्रति जीवनोपरान्त इतने भीषण दंड निर्धारित करता है कि कोई भी मुसलमान जो उस पर, उसकी वाणी (कुरान) और उसके पैगम्बर पर दृढ़ विश्वास ले आया हो दुबारा मूर्ति पूजक, ईसाई अथवा यहूदी बनने की सोच ही नहीं सकता "देखो जो इस्लाम पर विश्वास नहीं करते उन्हें हम (अल्लाह) दोज़ख़ की आग में सेकेंगे। जब उनकी खाल जल जायेगी हम दूसरी (नई) खाल पैदा कर देंगे, जिससे उन्हें इस भीषण कष्ट का (बार-बार) अनुभव हो।"(कुरान ४:५६)

"जो लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर के विरुद्ध युद्ध करते हैं और इस पृथ्वी पर भ्रष्टाचार (मतलब है इस्लाम विरोधी विचार, जो अल्लाह और उसके पैगम्बर की दृष्टि में भ्रष्ट विचार हैं) फैलाते हैं उनके लिये यह पुरस्कार है कि वह बध कर दिये जायें, क्रॉस पर चढ़ा दिये जायें, उनके हाथ पैर विपरीत दिशा में काट दिये जायें या उन्हें देश निकाला दे दिया जाये। यह तो इस संसार में उनकी दुर्दशा होगी और परलोक में उनका अंत अति भयानक होगा। (कुरान ५:३३)

इह लोक में इस्लाम, पैगम्बर और उसके द्वारा लाये गये संदेश का उपहास करने वालों का सामना वह अपनी स्वाभाविक सैनिक आक्रामकता, नियोजित तथा

अनुशासनबद्ध तरीकों से करता है। वह ऐसे व्यक्ति को मृत्यु दण्ड देता है। उसको ऐसा करने के लिये उत्साहित करने वाले को भी। पैगम्बर फर्माते हैं : "जो मुसलमान सत्यापित करता है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा उपास्य नहीं है और मैं उसका सन्देशवाहक हूँ उसका वध करने की अनुमति केवल तीन दशाओं में है : "विवाहित व्यभिचारी, जीवन के बदले में जीवन और इस्लाम को छोड़ने वाला।" (सही मुस्लिम ४१५२-४१५५)

इस्लाम (सुधार) और पैगम्बर (सुधारक) की खिल्ली उड़ाने वालों अथवा अपमान करने वालों को भी उसी दण्ड का विधान है। "काब-बिन-अशरफ का वध कौन करेगा?" पैगम्बर ने पूछा- "उसने सर्वशक्तिमान अल्लाह और उसके संदेश वाहक का अपमान किया है।" मौहम्मद-बिन-मसलम ने पूछा- "अल्लाह के रसूल क्या आप चाहते हैं कि मैं उसका वध कर दूँ?" पैगम्बर ने कहा- "हाँ" (सही मुस्लिम ४४३६)

मौहम्मद-बिन-असलम-काब के घर गया। पैगम्बर की बुराई कर उसका विश्वास जीता और फिर रात के समय उसको उसके घर से बाहर ले जाकर अपने दो साथियों की सहायता से उसकी हत्या कर दी।

इस्लामी राज्य में तो इस अपराध के लिये राज्य ही विधि पूर्वक मृत्यु दण्ड दे देता है। गैर इस्लामी राज्य में इस प्रकार का कानून न होने से कोई दूसरा मुस्लिम राज्य अथवा कोई मुस्लिम धर्माचार्य इस दोष के कारण मृत्यु दण्ड का फतवा दे सकता है। ऐसी दशा में यह सम्भावना हो जाती है कि कोई भी मुसलमान जो इसको अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता है ऐसे व्यक्ति का बध कर दे। फतवा देने वाला जितना ही प्रभावशाली धर्माचार्य होगा उतना ही यह भय अधिक और व्यापक होगा। सलमान रशदी के विरुद्ध अयातुल्लाह खुमैनी और तस्लीमा नसरीन के विरुद्ध बांग्लादेश के उलेमा का फतवा इसके आधुनिक उदाहरण हैं।

शताब्दियों से चलने वाली यह सावधानी, सुरक्षा के प्रति यह चिन्ता, पत्ता खड़कने पर भी खतरे का एहसास करने की मानसिकता बना देती है। मुसलमानों को छोटी से छोटी बातों में इस्लाम खतरे में नज़र आना और उनका आक्रामक मुद्रा अखितयार कर लेने का कारण यही मानसिकता है।

मदरसों, मकतबों में अपने लाखों बच्चों को इस विशिष्ट प्रकार की शिक्षा देकर मस्जिदों की सामूहिक नमाजों और हत्याओं के अतिरिक्त अपनी सुरक्षा के लिये इस्लाम और भी बहुत कुछ करता है। जैसा कि स्वाभाविक है अपने सैनिक अनुशासन के अनुसार करता है। भारत में शान्तिपूर्वक मूर्ति पूजकों को इस्लाम की ओर मोड़ने और उसी की ओर मुड़ा रखने के लिये एक अति सक्रिय संगठन है तबलीगी जमात। इस संगठन के कार्यक्षेत्र को समझने के लिये इसके जन्मदाता और ध्येय को समझना आवश्यक है।

तबलीगी ज़मात

ज़िला मुजफ्फरनगर में एक छोटे से नगर काँधला में जन्मे मौलाना मौहम्मद इलियास (१८८५-१९४४) का इस संगठन को खड़ा करने में ध्येय था मुस्लिम समाज

का सुधार अर्थात् उसके धर्म परिवर्तन से पहले के काफिर संस्कारों रीति रिवाजों को एक दम मिटाकर पक्का धर्मनिष्ठ मुसलमान बनाना। मौलाना इलियास के परिवार के प्रेरणा स्रोत थे शाहवली उल्लाह (१७०२-१७६२)। शाहवलीउल्लाह ने मुगल साम्राज्य के पतन के बाद मराठों, जाटों और सिखों के अभ्युदय से चिंतित होकर अहमदशाह अब्दाली को अफगानिस्तान से और नजीबुद्दौला को रूहेलखण्ड से बुलाकर पानीपत में मराठों को पराजित करवाया था। उनकी गिनती इस्लाम के चोटी के धर्माचार्यों और रक्षकों में की जाती है। वह शिया मुसलमानों के भी घोर विरोधी थे। शाहवली उल्लाह आलिम भी थे और सूफी भी। इसलिये इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह उलेमा की शरियत और सूफियों के तरीके को इस्लाम के प्रचार-प्रसार और सुधार के लिये प्रयोग करना चाहते थे।

मौलाना इलियास के पिता मौहम्मद इस्माइल निज़ामुद्दीन दिल्ली में रहकर वहाँ एक मदरसा चलाते थे। अपने पिता और बड़े भाई मौहम्मद यैहया की मृत्यु के पश्चात् मौहम्मद इलियास यह मदरसा चलाने लगे। इस प्रकार मौहम्मद इलियास ने शाहवलीउल्लाह के कार्य को पूरा करने के लिए तबलीगी जमात की नींव डाली। किन्तु यह शाहवलीउल्लाह का ज़माना न था। परिस्थितियाँ बदल गईं थीं। फलस्वरूप तबलीगी जमात को अपनी कार्यशैली परिस्थितियों के अनुकूल बनानी थी।

श्रद्धानन्द के शुद्धि और संगठन आन्दोलन का मुकाबला करने में जिसके कारण नव-मुस्लिम सहस्रों की संख्या में हिन्दू धर्म में लौट रहे थे श्रद्धानन्द के वध और तबलीगी जमात ने बड़ा काम किया। श्रद्धानन्द के पश्चात् आर्य समाज का शुद्धि कार्य तो ठंडा पड़कर समाप्त प्रायः ही गया। परन्तु तबलीगी जमात का धर्मान्तरण का कार्य बल पकड़ता गया। तबलीगी जमात से सहस्रों साधारण मुसलमान दुकानदार, वकील, डाक्टर, पेंशन याफ्ता पुलिस के और दूसरे अधिकारी अनेक लोग जुड़े हैं। उनका मुखय कार्य है काफिरों को इस्लाम में दीक्षित करना और मुसलमानों को धर्मनिष्ठ मुसलमान बनाना। **लगभग सभी मदरसों में तबलीग का अलग विभाग है और मदरसे अपने अपने ढंग से तबलीग के कार्य में जुटे हैं।**[५३]

इस कार्य के प्रचार के लिये जमात देहाती क्षेत्रों में इजतिमा (काँफ्रेन्स) करती है। इनमें लाखों की संख्या में लोग आते हैं और अनुशासनपूर्वक बिना सरकार और पुलिस की सहायता के अपने ठहरने, खाने और प्रचार का कार्य करते हैं। मेरठ और गोरखपुर के हाल के इजतिमा में १० लाख लोगों द्वारा शिरकत करने का अनुमान प्रेस द्वारा किया गया था। कान्फ्रेन्स में अनुभवी उलमा से प्रेरणा और पथ प्रदर्शन लेकर वह १०-१० अथवा ५-५ की टोली में देश भर में बिखर जाते हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में जाकर धर्मान्तरण के कार्य में जुट जाते हैं।

११

घृणा की मशाल बुझने न पायें

इस्लाम जैसे विश्वव्यापी और सहस्रों वर्षों तक चलने वाले सुधारात्मक आन्दोलन के लिये पूरी तरह प्रशिक्षित, समर्पित और बुद्धिमान लाखों कार्यकर्ताओं की आवश्यकता अनिवार्य है। इन के अभाव में सुधार का कार्य इतने लम्बे समय तक और इतने देशों में चलना सम्भव नहीं है। विशेषरूप से उन देशों में जहाँ सत्ता विरोधी लोगों के हाथ में हो। कार्यकर्ताओं में बुराई के प्रति घृणा और सुधार तथा सुधारक के प्रति प्रेम और समर्पण में किसी प्रकार की कमी न आये इसका भी त्रुटिहीन उपाय होना सुधार की सफलता के लिये आवश्यक है।

इस्लाम में इस कठिन कार्य को बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया गया है। अपने मदरसों, मकतबों, मस्जिदों में प्रवचनों और उन पर एकाधिकार रखने वाले उलमा, मुफ्ती और इमामों द्वारा।

इस्लाम में साधु, महात्मा, सन्यासी, पुजारी इत्यादि हिन्दुओं जैसा वर्ग नहीं रखा गया है। अरब का भारत से घनिष्ट सम्बन्ध मौहम्मद साहब के जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले से रहा है। वास्तव में हमारे देश को हिन्द (सिन्ध नदी का देश) का नाम अरबों ने ही दिया है। और उनके देश को अरबस्थान (घोड़ों का स्थान, संस्कृत में घोड़े को अर्ब कहा जाता है) भारतवासियों ने दिया प्रतीत होता है। भारत वर्ष अरब देश से २०,००० घोड़े प्रतिवर्ष आयात करता था।

इसलिये मौहम्मद साहब जैसे कुशल दूरदर्शी और ज्ञानी व्यापारी को भारत के गेरुवे वस्त्रधारी हिन्दू सन्यासियों और पीले वस्त्रधारी बौद्ध श्रवणों की पर्याप्त जानकारी रही होगी इसमें सन्देह नहीं है। उन्हें पता होगा कि भारत में इन रंगों के कपड़े पहन लेने मात्र से कोई भी व्यक्ति सुगमतापूर्वक बिना किसी योग्यता, त्याग अथवा विद्वता के समाज में पूज्य हो जाता है। इसलिये उन्होंने अपने मत में इस श्रेणी के लोगो को कोई स्थान नहीं दिया अपितु इस रंग के पहनने पर ही रोक लगा दी। उन्होंने कहा बताते हैं : "यह गेरुवे (केसरी) कपड़े गैर मुसलमानों द्वारा पहने जाते हैं। तुम (मुसलमानों) को इन्हें नहीं पहनना चाहिए।"(सही मुस्लिम ५१७३)

जब एक मुसलमान को पैगम्बर साहब ने गेरुवे कपड़े पहनने से मना किया तो उसने कहा कि वह उन कपड़ों को धो डालेगा। पैगम्बर साहब ने कहा नहीं, इन्हें जला डालो।

एक दूसरी हदीस के अनुसार रेशम और पीले वस्त्र पहनने को भी मना किया गया। (सही मुस्लिम ५१७६)

इस प्रकार मौहम्मद साहब ने छद्म वेशधारी, कपटी, धूर्त, अध्ययन विहीन धार्मिक

नेताओं से अपने समाज की रक्षा कर, उसका भार केवल कुरान और हदीस की गहन विद्या प्राप्त, इस्लाम के ध्येय के प्रति समर्पित, निष्ठावान विद्वान् (आलिम) लोगों (उलमा) के हाथों में दिया। उलमा मदरसों में कुरान हदीस और इस्लामी दर्शनशास्त्र के लम्बे समय तक शिक्षा प्राप्त लोग होते हैं। अंग्रेजी स्कूलों में अरबी फारसी की शिक्षा प्राप्त विद्वानों को धर्माचार्य (उलमा) नहीं माना जाता भले ही वह इन विषयों में कितने ही विद्वान् हों क्योंकि उन पर पश्चिमी संस्कृति की धूल लगने का भय होता है। मुसलमानों का पूर्ण शिक्षातंत्र मकतब, मदरसे, सम्पूर्ण पूजा पद्धति (मस्जिद में सामूहिक नमाज़ और प्रवचन), पूर्ण विधि तंत्र (जुडीशियरी) अर्थात् काजी, मुफ्ती इत्यादि जो समाज से सम्बन्धित प्रत्येक प्रश्न पर फतवे देने वाले हैं इन्हीं उलमा के स्वतंत्र और एकल अधिकार में होते हैं।

इन कारणों से उलमा का अपने समाज पर अद्भुत प्रभाव है। डॉ. ताराचन्द के अनुसार उलमा किसान, मज़दूर, कारीगर इत्यादि साधारण लोगों को इस्लाम के नाम पर इतना उत्तेजित कर सकते हैं कि वह अपने प्राणों की भी बलि देने में संकोच नहीं करते हैं। [(५४)]

मस्जिदों में सामूहिक नमाज़ के पश्चात् जो प्रवचन दिया जाता है उसमें गैर मुस्लिम दर्शनों, रीति-रिवाजों इत्यादि के प्रति जो कुछ कहा जाता है वह कुरान और हदीस के अनुसार होने के कारण उस पर गैर मुस्लिम शासन भी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। ऐसा करने से शासन पर मुसलमानों के धार्मिक कृत्यों में हस्तक्षेप करने का दोष लग जाता है।

उलमा का मुस्लिम प्रजा के अतिरिक्त मुस्लिम शासकों पर भी कड़ा अनुशासन होता था। मुस्लिम शासकों के इतिहास में केवल अकबर ही उनके प्रभाव से मुक्त रहा है। अन्य सभी मुस्लिम शासकों की नीति कमोवेश उलमा के आदेशों से प्रभावित होती रही है। फलस्वरूप गैर मुस्लिम प्रजा और विशेषकर मूर्तिपूजक हिन्दुओं के प्रति शासन अति कठोर और निर्मम रहा है।

जैसा कि हम पिछले अध्यायों में बता चुके हैं कुरान और हदीस आदि की शिक्षा प्राप्त लोगों का जो इस्लाम के पवित्र और माननीय ग्रन्थ हैं कुफ्र और काफिरों के प्रति सहनशीलता और सहृदयता का दृष्टिकोण हो ही नहीं सकता। उसके लिए उसके विद्वानों (उलमा) अथवा मदरसे चलाने वाले दूसरे संगठनों को दोष देना किसी प्रकार भी न्याय संगत नहीं है। वास्तव में यह (उलमा) उन दूसरे लोगों से कहीं अधिक ईमानदार हैं जो इस्लाम में उन सिद्धांतों को अपनी राजनीतिक मजबूरियों के कारण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं जो उसकी प्रकृति के नितान्त विरुद्ध है। सैयद कुत्ब फर्माते हैं : "असत्य और सत्य का सहअस्तित्व पृथ्वी पर सम्भव नहीं है इस्लाम पृथ्वी पर अल्लाह के शासन को स्थापित करने की घोषणा करता है और मानवता को उसके अतिरिक्त दूसरों की पूजा करने से रोकता है। उसका विरोध उन लोगों द्वारा किया जाता है जिन्होंने अल्लाह की पृथ्वी पर शासन का अपहरण कर लिया है। वह कभी शान्ति नहीं होने देंगे। तब इस्लाम मानव को उनके पंजे से मुक्त कराने के लिये उनको नष्ट करने लगता है। यह एक निरन्तर चलने वाली क्रिया है

और जिहाद की यह स्वतंत्रता की लड़ाई तब तक समाप्त नहीं होती जब तब अल्लाह का धर्म (इस्लाम) पूर्णतया स्थापित नहीं हो जाता।" (५४क)

कुत्ब उन मुसलमानों को, जो जिहाद के विषय में लम्बे-लम्बे खेद सूचक लेख यह सिद्ध करने के लिये लिखते हैं कि जिहाद रक्षात्मक होता है, आध्यात्मिक और बौद्धिक पराजयवादी कहते हैं "वह समझते हैं कि वह इस प्रकार इस्लाम की सेवा कर रहे हैं जबकि वास्तव में उसका (जिहाद का) ध्येय इस प्रकार की तमाम अन्यायी, राजनीति व्यवस्था को नष्ट करना है।"(५५)

जमाते इस्लामी के संस्थापक मौलाना अबू आला मौदूदी भी फ़र्माते हैं: "जो मुल्के-खुदा के नाजायज़ मालिक बन बैठते हैं और खुदा के बन्दों को अपने सेवक बना लेते हैं वे साधारणतया अपने प्रभुत्व को केवल उपदेशों के आधार पर त्याग नहीं देते और न वह इसको सहन करते हैं कि जनता में हकीकत का इल्म फैले क्योंकि उनको भय होता है कि इससे उनका प्रभुत्व खुद-बा-खुद खत्म हो जायेगा। इसलिये मोमिन (मुसलमान) को मजबूरन युद्ध करना पड़ता है ताकि अल्लाह के दीन और कानून की स्थापना में जो बाधा हो उसे रास्ते से हटा दें।"(५६)

इसका सीधा अर्थ यह है कि यद्यपि इस वांछित कार्य के लिये शान्तिमय प्रयासों से इन्कार नहीं है किन्तु इस्लाम अपने सुधारों को लाने के लिये अन्ततः सशस्त्र युद्ध की अनिवार्यता न केवल स्वीकारता है अपितु उसकी आज्ञा देता है।

बहुत से लोग इन उलमा को कट्टरवादी अथवा मूलतत्ववादी (फन्डामेन्टलिस्ट) कहकर उनकी बुराई करते हैं और हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के उभरने और परिपुष्ट करने का उनको मुख्य दोषी बताते हैं। इसके विपरीत वह उन लोगों की प्रशंसा के पुल बाँधते हैं और उनको उदारवादी तथा राष्ट्रवादी मुस्लिम कहते हैं जो कुरान और हदीस के कुछ चुने हुए उद्धरण देकर इस्लाम को गैर मुस्लिमों, मूर्ति पूजकों इत्यादि के प्रति सहनशीलता, सहृदयता और शान्ति का सन्देशवाहक सिद्ध करने की चेष्टा करते रहते हैं। इस पिछले वर्ग में बहुत से मुस्लिम और हिन्दू नेता राजनीतिक लाभ उठाने के हेतु शामिल हो जाते हैं।

हमारा विचार है कि सैय्यद कुत्ब और मौदूदी जैसे स्पष्ट, सत्यवादी, मूलतत्ववादी (फन्डामेन्टलिस्ट) उलमा गैर मुसलमानों के लिये उतने ख़तरनाक नहीं है जितने ये मृदुभाषी कूटनीतिज्ञ विद्वान् हैं जो इस्लाम को राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता, विश्वबन्धुत्व जैसे पश्चिमी रंग में पेश कर उन्हें भरमाते हैं जो उसका वास्तविक रूप नहीं है। इस प्रकार वह गैर मुस्लिमों को उनके ऊपर मंडराते विश्व इस्लामवाद के आसन्न संकट से बेखबर रखते हैं।

१२

युद्ध की कुरानी संकल्पना

पाकिस्तानी सेना के अवकाश प्राप्त ब्रिगेडियर एस.के. मलिक द्वारा लिखित पुस्तक "कुरानिक कन्सेप्ट ऑफ वार" से हमें इस्लामी युद्ध के दृष्टिकोण का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही मलिक जिहाद और युद्ध के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं : "जिहाद को अक्सर युद्ध समझ लिया जाता है किन्तु वास्तव में वह तो सम्पूर्ण रणनीति है। जिहाद कुफ्र के विरुद्ध राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, गृह और अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चे पर लड़े जाने वाला कभी न समाप्त होने वाला संघर्ष है जिसका ध्येय इस्लामी शासन के अपने मंतव्य को प्राप्त करना है (इस्लाम का दूसरे धर्मों पर वर्चस्व और शरियत कानून को स्थापित करना पढ़ें– लेखक) सशस्त्र युद्ध तो उसके अनेक मार्गों में से एक मार्ग है। जिहाद वैयक्तिक और सामूहिक कर्त्तव्य है।"

जिहाद का यह धार्मिक स्वरूप और ध्येय ही प्रत्येक मुसलमान को इस्लाम का समर्पित मिशनरी और योद्धा बना देता है। "इस प्रकार जिहाद से सीधे–सीधे तो वांछित फल प्राप्त होता ही है यह सशस्त्र युद्ध की सफलता के लिये भूमि भी तैयार कर देता है।"

इस्लाम के विश्व में तेज़ी से फैलने का इतिहास मलिक की इस बात की पुष्टि करता है। जहाँ उत्तर भारत में इस्लाम तलवार द्वारा खून की नदियाँ बहाकर फैल रहा था वहीं शान्तिपूर्ण किन्तु छद्म तरीकों से सहस्त्रों सूफ़ी और मुस्लिम व्यापारी और उनके नाविक भारत के राजाओं और उनकी प्रजा को लाखों की संख्या में मुसलमान बना रहे थे।

ब्रिगेडियर मलिक अपनी पुस्तक में इस बात पर विशेष बल देते हैं कि शत्रु के विश्वास और मनोबल को ध्वस्त कर उसको आतंकित कर देना अति महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि "शत्रु का मनोबल युद्ध में पराजय अथवा उसकी रसद के मार्ग अथवा बच निकलने के मार्ग को बन्द कर देने मात्र से नहीं टूटता। भौतिक हार अस्थाई होती है। आध्यात्मिक हार स्थायी होती है।"

मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़कर वहाँ इस्लाम की शक्ति का निरन्तर प्रदर्शन करने वाली कुव्वतुल इस्लाम मस्जिदें बनाने और हिन्दुओं की उन उपास्य मूर्तियों को सीढ़ियों पर बिछा कर सार्वजनिक अपमान का ध्येय हिन्दुओं के मूर्ति पूजा पर विश्वास को ध्वस्त करना था। उनके अध्यात्म को पराजित करना था।

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो ब्रिगेडियर मलिक ने कुरानी युद्ध के विषय में लिखी है वह है युद्ध में आतंक की भूमिका। कुछ ही लोगों को पता होगा कि मौहम्मद साहब पहले और आखिरी पैगम्बर थे जिनको अल्लाह ने आतंक बखशा था।

हदीस है "मुझे (मौहम्मद को) पिछले सभी पैगम्बरों पर ६ प्रकार से वरीयता दी गयी है। इस प्रकार के शब्द (वाक्चातुर्य) बख़्शे गये हैं जो संक्षिप्त होते हुए भी गहन अर्थ रखते हैं। मुझे (शत्रुओं के हृदय में) आतंक द्वारा सहायता बख़्शी गयी है। युद्ध में लूट का माल मुझे हलाल (विधि सम्मत) कर दिया गया है। सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी नमाज़ के लिये शुद्ध कर दी गयी है। मैं सम्पूर्ण मानवता को (सत्य मार्ग पर लाने के लिये) भेजा गया हूँ और मेरे पश्चात् पैगम्बरों की परम्परा समाप्त हो गयी है। (सही मुस्लिम १०६३)

मौहम्मद साहब का उनके जीवन काल में कितना आतंक था। उसका एक उदाहरण इतिहास में मिलता है। ६२९ ई. में कुछ मुस्लिम मिशनरी नज्रान के ईसाईयों के पास पहुँचे। इन ईसाइयों ने कुरान में वर्णित इस कथित असत्य बात का उदाहरण देकर उनका उपहास किया कि ईसा मसीह की माता "मेरी" मूसा और आरों की बहिन थी (मूसा और ईसा में कई शताब्दियों का अंतर है)। मुस्लिम मिशनरियों से कोई उत्तर नहीं बन पड़ा तो उन्होंने जाकर पैगम्बर से शिकायत की जिन्होंने उन ईसाईयों को तलब कर लिया। ईसाइयों के प्रतिनिधि पैगम्बर के सामने यह कहते हुए उपस्थित हुए "हम आपके सामने ऐसी स्थिति में उपस्थित हो रहे हैं कि हमारी ऊंटनियों के गर्भ भी परेशान हैं।"[(५६क)] पैगम्बर ने उन्हें इस्लाम ग्रहण करने को कहा और मना करने पर उन पर जिज़िया टैक्स लगा दिया।

इस आतंक का कारण अवश्य ही इस्लाम के शत्रुओं के प्रति उनका कठोर बर्ताव रहा होगा। मुस्लिम इतिहासकारों ने अनेक दृष्टांत दिये हैं जिनसे पता लगता है कि कितनी सख्ती से मदीना राज्य और नये मत के प्रकट और छिपे शत्रुओं से निपटा गया। मुस्लिम काल में मुस्लिम सेनाओं की बर्बरता और क्रूरता भी हिन्दू सेनाओं पर उनके भारी पड़ने का एक कारण थी क्योंकि इससे वह जहाँ भी जाती थीं आतंक फैल जाता था। तुरुष्क एक हव्वा हो गया था और आतंक के पक्षाघात का पर्याय बन गया था।[(५६ख)] युद्ध हो या साम्प्रदायिक दंगे हिन्दू काल हो या मुस्लिम काल या ब्रिटिश काल आतंक सदैव ही इस्लाम का सहायक साथी रहा है। कुरान की अनेक आयतों में इस आतंक की झाँकी मिलती है जो अल्लाह ने इस्लाम के शत्रुओं के हृदय में उत्पन्न किया। केवल कुछ इस प्रकार हैं:

"हम उन लोगों के हृदय में आतंक उत्पन्न कर देंगे जो विश्वास नहीं लाते और अल्लाह के सहयोगी ऐसे (उपास्यों) को बनाते हैं जिनके विषय में कोई देववाणी नहीं प्रकट की गई है। उनका निवास स्थान (जहन्नम की) अग्नि है। (कुरान ३:१५१)

"(ऐ मौहम्मद) तेरे मालिक ने (अपने देवदूतों को) यह कहकर प्रेरणा दी कि मैं तुम्हारे साथ हूँ जिससे वह (युद्ध में) जमें रहें। मैं उन लोगों के हृदय में जो (इस्लाम में) विश्वास नहीं करते भय उत्पन्न कर दूँगा। तब तुम उनकी गर्दनें और उंगलियाँ काट डालना। (कुरान ८:१२)

किन्तु अल्लाह मुसलमानों से आशा करता है कि वह भी अपना भरपूर प्रयास करें। "(ऐ मौहम्मद) उनके विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण शक्ति घोड़ों सहित लगा कर तैयारी करो जिससे अल्लाह और तुम्हारे शत्रुओं के हृदय आतंकित हो जायें और उन (छिपे हुए शत्रुओं) के

मन में भी जिन्हें तुम नहीं जानते पर अल्लाह जानता है।"(कुरान ८:६०)

ब्रिगेडियर मलिक इस बात पर बार बार बल देते हैं कि "शत्रुओं को आतंकित कर देना केवल साधन ही नहीं साध्य भी है। एक बार विपक्षी के मन में आतंक बैठ जाता है तो करने को कुछ विशेष नहीं रह जाता। परन्तु किसी सेना को उसके रसद का मार्ग काटकर अथवा उसके बच निकलने के मार्ग को बन्द कर देने मात्र से आतंकित नहीं किया जा सकता। इसके लिये उसका विश्वास नष्ट करना आवश्यक है। मानसिक टूटन स्थाई होती है। रणनीति चाहे कोई भी उपयोग में लाई जाय वह शत्रु के हृदय में आतंक उत्पन्न करने में समर्थ होनी चाहिए।"

और मूर्तिपूजकों का विश्वास नष्ट करने के लिए इससे अधिक प्रभावी क्या मार्ग हो सकता है, कि उनके उपास्य देवों की मूर्तियाँ जिनके ऊपर वह अपनी रक्षा के लिए निर्भर करते हैं, उनकी आँखों के समाने तोड़-तोड़ कर अपमानित की जायें? उनके भक्तों को कत्ल कर दिया जाये और उनके परिवारों को गुलामी में बाँध दिया जाये? मन्दिरों को नष्ट कर, मूर्तियों को तोड़कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाकर, उनकी सीढ़ियों पर मूर्तियाँ बिछाकर जिससे वह मुसलमानों के जूतों से सदैव रगड़ी जाती रहें इसी ध्येय को प्राप्त करना था।

विश्वास के नष्ट होने पर किस प्रकार बड़े पैमाने पर हिन्दू स्वेच्छा से मुसलमान हो गये वह एक घटना से प्रकट होता है। एक हिन्दू का एक मात्र पुत्र कठिन रोग ग्रस्त हो गया। राजगुरु से उपाय के लिये पूछा गया तो उसने राज्य के इष्ट देवता की पूजा का लम्बा चौड़ा और कीमती विधान बताकर राजा को आश्वस्त कर दिया कि ऐसी पूजा कर देने पर राजकुमार स्वस्थ हो जायेंगे। राजा ने तदानुसार पूजा करवा दी किन्तु राजकुमार की मृत्यु हो गई। मुसलमान व्यम्पारियों से प्रेरणा पाकर राजा अपने पूरे मंत्रिमण्डल और सहस्त्रों प्रजाजनों के साथ मुसलमान हो गया।

इस्लाम में इस प्रकार के विश्वास टूटने का कोई खतरा नहीं है। पहली बात तो यह है कि उसमें मूर्तियों की तरह कोई नष्ट करने वाली भौतिक वस्तु नहीं है जिसे सर्वशक्तिमान माना जाता हो। दूसरी बात यह है कि उनका विश्वास है कि मनुष्य के श्रेष्ठ कर्मों का फल देना या न देना अथवा उनके बावजूद भी कष्ट देना अल्लाह के हाथ में है। मनुष्य को तो हर हालत में उसे अल्लाह की मर्ज़ी मानकर धैर्य करना चाहिये। इसलिये बड़ी से बड़ी पराजय अथवा विपत्ति भी उन्हें भयभीत नहीं करती। अपितु उन्हें उन कार्यों को करने को प्रेरित करती है जो अल्लाह को प्रसन्न करते हैं।

१३

इस्लामी यथार्थवाद बनाम भावनात्मक हिन्दू आदर्शवाद

किसी भी सैनिक संगठन और उसके कमाण्डर के लिये यथार्थवादी होना अत्यन्त आवश्यक है। भावुकता का रण में कोई महत्व नहीं होता। वह हानिकारक भी हो सकती है। युद्धरत इस्लाम के पैगम्बर की यथार्थवादिता की यदि अहिंसावादी, शान्ति प्रिय, युद्धविरत प्रचलित हिन्दू धर्म से तुलना करें तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी। इसकी तुलना करने में हमारा उद्देश्य किसी एक को दूसरे से श्रेष्ठ दर्शाना या सिद्ध करना नहीं है अपितु उनके विपरीत चरित्रों और दृष्टिकोण को उजागर करना मात्र है।

जैसा सबको मालूम है सीता रावण के यहाँ एक वर्ष कैद रहीं। कहा जाता है वहाँ से छूटने के पश्चात् राम ने उनकी अग्नि परीक्षा ली और अपने साथ अयोध्या ले आये। फिर वह सिंहासनारूढ़ हुए और धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। वहाँ एक धोबी द्वारा सीता के सतीत्व पर कटाक्ष करने मात्र से राम ने सीता का, जिनके सतीत्व की अग्नि परीक्षा हो चुकी थी, परित्याग कर दिया। अन्ततः सीता को पृथ्वी में प्रवेश करना पड़ा।

इससे मिलता जुलता प्रसंग पैगम्बर मौहम्मद साहब के जीवन में भी आता है। उनकी पत्नी हज़रत आयाशा जब किसी कार्यवश गई हुई थीं उनका कैम्प कूच कर रहा था। उनका भार इतना कम था के सेवकों ने उनकी खाली डोली को यह समझ कर ऊँट पर लाद दिया कि वह डोली में हैं। कैम्प कूच कर गया। आयशा रात भर रेगिस्तान में भटकती रहीं। सबेरे उधर से निकलने वाले किसी ऊँट सवार ने उन्हें पहचान कर पैगम्बर साहब के पास पहुँचा दिया। कुछ लोगों ने इस पर कानाफूसी की जो पैगम्बर साहब तक पहुँची। पैगम्बर साहब को बहुत मानसिक कष्ट हुआ और आयशा को भी। बाद में स्वयं अल्लाह ने उनकी निर्दोषिता और सच्चरित्रता को एक आयत द्वारा सत्यापित कर दिया। मौहम्मद साहब ने अफवाह फैलाने वालों को ८०-८० कोड़े लगाकर दण्डित किया। (म्यौर लाइफ ऑफ मौहम्मद पृष्ठ-३०३) राम की भावुक आदर्शवादिता और पैगम्बर की प्रशासनिक यथार्थवादिता स्पष्ट है।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण है। महाराजा हरिश्चन्द्र (राम के पूर्वज) एक बहुत धर्मात्मा राजा थे। उनकी परीक्षा के लिए एक महात्मा ने उनका सम्पूर्ण राज्य दान में माँग लिया। राजा ने सहर्ष अपना राज्य उन्हें दे दिया। किन्तु महात्मा ने उनसे दान के पश्चात् दी जाने वाली दक्षिणा तलब की। क्योंकि राज्य देने के पश्चात् उनके पास दक्षिणा देने के लिए कुछ भी नहीं बचा था उन्होंने अपने को, अपनी पत्नी एवं पुत्र को दासता में बेंच डाला।

इस प्रकार अपने वचन की रक्षा की। राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र से गाँधी जी इतने प्रभावित थे कि उन्होंने बचपन में एक नाटक में इस कथा को देखकर अपने मन पर पड़े प्रभाव का मार्मिक वर्णन किया है। वह कहते हैं कि मैंने अपने बचपन में अनेकानेक बार मन ही मन इस नाटक को अपने मन में दोहराया है। महाराजा हरिश्चन्द्र हिन्दुओं के आदर्श शासक हैं।

किन्तु इसके विपरीत इस विषय पर पैगम्बर का दृष्टिकोण देखिये। वह कहते हैं "अल्लाह की सौगन्ध, अल्लाह की दृष्टि में यह अधिक बड़ा पाप है, यदि तुम अपने परिवार के विरुद्ध दिये गये किसी वचन को पूर्ण करने के लिए ज़िद करते हो जबकि तुम अल्लाह द्वारा नियत मुआवजा देकर उस वचन को तोड़ सकते हो। (सही मुस्लिम ४०७६)

एक दूसरी हदीस है कि यदि किसी ने कोई वचन दे दिया है और फिर उसे उससे उत्तम कोई दूसरा मार्ग दिखाई दे तो उसे वही करना चाहिए जो उत्तम दिखाई दे रहा है। (सही मुस्लिम ४०६०)

इसी प्रकार प्रचलित हिन्दू धर्म में जहाँ अहिंसा को न केवल एक आदर्श माना गया है अपितु उसकी अति प्रशंसा की जाती है, युद्धरत इस्लाम में उसके लिए केवल रणनीति के तहत ही एक अस्थाई सा स्थान दिया जा सकता है जैसा कि मौहम्मद अली आदि नेताओं ने खिलाफ़त के समय एलान किया था।

इसी प्रकार की एक भावुकतापूर्ण कथा है जो हिन्दू बच्चों और भक्तों को अक्सर सुनाई जाती है। एक साधु नदी में बहते एक बिच्छू के प्राण बचाने के लिये उसे निकालने का प्रयास कर रहा था। बिच्छू बार–बार उसे डंक मारता था और छूट कर पानी में गिर जाता था। साधु उसे बार–बार डंक खाने पर भी बचाने का प्रयास कर रहा था। किसी व्यक्ति ने यह दृश्य देखकर उससे कहा "महात्मा ! इस दुष्ट को मर जाने दो। क्यों बार–बार इसके डंक का कष्ट उठा रहे हो।" "साधु ने कहा यह अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं अपना क्यों त्यागूँ।"

अब पैगम्बर मौहम्मद साहब की हदीस देखिये। फ़र्माते हैं : मुसलमान को एक ही सुराख़ से दो बार डंक नहीं खाना चाहिऐ" अर्थात् दो बार धोखा नहीं खाना चाहिए (सही मुस्लिम ७१३) गाँधी जी का कहना है : "दूसरों पर अविश्वास करने की अपेक्षा मैं एक हजार बार धोखा खाना पसन्द करूँगा।"

हिन्दू समाज की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न करने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि अनेक विद्वानों और घटनाओं की चेतावनी के बाद भी हिन्दू बच्चों को स्कूलों और परिवारों में इसी प्रकार के भावुकतापूर्ण आदर्शवाद की शिक्षा दी जाती है।

इसी प्रकार की दूसरी मिसाल देखिये। उन्होंने (गाँधी जी ने) दुःखी होकर कहा कि "अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि जो हिन्दू और मुसलमान ठीक दो वर्ष पूर्व मित्रवत कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रहे थे, अब कुत्ते–बिल्ली के समान आपस में लड़ रहे हैं।" इस स्थिति को ठीक करने के लिये उपवास के मध्य एक बार महादेव देसाई ने उनसे पूछा

कि "वह अपनी किस गलती का प्रायश्चित कर रहे हैं।" गाँधी जी का उत्तर था : "मेरी गलती? क्यों, क्या मुझ पर लांछन नहीं लगाया जा सकता कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया है? मैंने उनसे कहा था कि वे अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए अपना तन और धन मुसलमानों को सौंप दें। आज भी उनसे कह रहा हूँ कि वे अपने झगड़े अहिंसा के मार्ग पर चल कर निपटायें भले ही मर जायें, पर मारें नहीं। और फल क्या निकला? कितनी अधिक बहिनें मेरे पास शिकायतें लेकर आयीं हैं। जैसा कि मैं कल हकीम जी से कह रहा था, हिन्दू महिलाएँ मुसलमान गुंडों से त्रस्त हैं, उनके प्राण सूख रहे हैं। अनेक स्थानों पर उन्हें अकेले जाने में डर लगता है। मुझे.....का पत्र मिला है– जिस प्रकार उनके नन्हें मुन्नों पर अत्याचार किया गया, उसे मैं कैसे सहन करूँ? मैं किस मुँह से कहूँ कि हिन्दू हर स्थिति में धैर्य धारण करें।

"मैंने उन्हें आश्वासन दिया था कि मुसलमानों की मैत्री के अच्छे परिणाम निकलेंगे। मैंने उनसे कहा था कि वे निष्काम भाव से मैत्री करें। आज मैं असमर्थ हूँ। उस आश्वासन को पूरा नहीं कर सकता। मेरी कोई नहीं सुनता। लेकिन आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहूँगा कि भले ही मर जाओ, मारो मत।"(५७) युद्धरत, संगठित, दृढ़ संकल्पारूढ़ यथार्थवादी मुस्लिम समाज के जिहाद का इस प्रकार के भावनात्मक, अव्यवहारिक आदर्शवाद से कैसे प्रतिरोध किया जा सकता है?

इस्लाम में एक युद्धरत सुधारक समाज का यथार्थवाद भरा पड़ा है चाहे वह दैनिक दिनचर्या हो अथवा अस्थाई शान्तिकाल हो या सशस्त्र युद्ध हो। कठिनाई में पड़े शत्रु के प्रति भी सावधानी की मिसाल देखिये। पैगम्बर ने कहा बताते हैं : "जब तुमने किसी किले को घेर रखा हो और उसके लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर के नाम पर तुमसे रक्षा की गुहार लगायें तो उनको अल्लाह और उसके पैगम्बर की ओर से सुरक्षा की गारन्टी मत दो अपितु अपनी और अपने साथियों की ओर से ही सुरक्षा की गारन्टी दो क्योंकि अल्लाह और उसके पैगम्बर के नाम पर दी गई गारन्टी को भंग करने से अपनी ओर से दी गई गारन्टी को भंग करने में बहुत कम पाप है। (सही मुस्लिम ४२९४)

"यदि तुमने किसी किले को घेर रखा है और घिरे हुए लोग अल्लाह के आदेश के अनुसार बाहर आने के लिये गुहार लगायें तो उनको अल्लाह के आदेश से नहीं अपितु अपने आदेश से बाहर आने दो क्योंकि तुम नहीं जानते कि तुम उनके विषय में अल्लाह के आदेश का पालन कर सकोगे अथवा नहीं।"(सही मुस्लिम ४२९४)

ध्यान दीजिए भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए रणनीति से सम्बन्धित कितनी दूर–दृष्टि है। स्थानीय कमाण्डर द्वारा एक वचन दिलाकर सुप्रीम कमाण्डर ने किसी नई परिस्थिति में उस वचन को भंग करने के लिये अपना मार्ग खुला रखा है।

इस यथार्थवाद की कर्नल टाड द्वारा "एनल्स एण्ड एन्टीक्वुटीज ऑफ राजस्थान" नामक अपनी पुस्तक में राजपूतों के विषय में दी गयी इस टिप्पणी से तुलना करें कि राजपूत

की अतिवादी उदार शूरवीरता बहुधा उसे अपने सिद्धान्तहीन (यथार्थवादी पढ़ें) शत्रुओं के मुकाबले में अपंग बना देती है। यदि उसने अपनी मूर्खतापूर्ण शौर्य उदारता में थोड़ा सा भी राजनीतिक विवेक का पुट दिया होता जैसा कि भारत में इस्लाम के योद्धाओं की कार्यशैली में दृष्टिगोचर होता है तो भारत को उस अपमान का बार-बार मुँह न देखना पड़ता जो अनेक बार उसे देखना पड़ा।[५८]

हिन्दुओं की इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण आदर्शवादिता के विषय में औरंगजेब ने अपने पुत्रों को लिखी गई अपनी वसीयत में सावधान किया है। उसने लिखा हैः तूरानी जो हमारे पूर्वजों के देश से आये हैं हमारे बिरादर हैं---उन्हें जब युद्ध में पीछे हटने का आदेश दिया जाता है तो इसमें वह लज्जा का अनुभव नहीं करते। (अनुशासनपूर्वक पीछे हट जाते हैं)। वह इन महामूर्ख हिन्दुओं से सैकड़ों गुना श्रेष्ठ हैं जो सिर कटाना स्वीकार करते हैं पर पीछे नहीं हटते।" खिलाफ़त आन्दोलन के स्तम्भ मौलाना मौहम्मद अली ने इस्लाम की इस यथार्थवादिता को हिन्दू मुस्लिम एकता के स्वर्णयुग खिलाफत आन्दोलन से लगभग १० वर्ष पहले ही बड़े सुन्दर शब्दों में स्पष्ट कर दिया था : "इस अभागे देश में हिन्दू मुस्लिम एकता पैदा करने के लिये निष्कपट किन्तु विपरीत फलदायक इतने प्रयास किये जा चुके हैं कि अब हमारे पास इस प्रकार के किसी दूसरे अविश्वसनीय प्रयास की कब्र पर भावुकतापूर्ण पुष्पांजलि अर्पित करने के लिये सस्ते और सुगन्धहीन फूल भी नहीं बचे हैं। हम काँच के टूटे हुए टुकड़ों को गोंद से जोड़ने की दूसरी गलती कर अपनी असफलता पर यह कहकर आँसू नहीं बहायेंगे कि यह काँच का दोष है। दूसरे शब्दों में हमारा प्रयास यह होगा कि हम तथ्यों का आदर करते हुए चाहे वह कितने ही घिनौने और विपरीत क्यों न हों, परिस्थिति का डटकर मुकाबला करें। असुविधाजनक तथ्यों से आँखें चुराना निकृष्ट राजनीति है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए यह कम आवश्यक नहीं है कि हम ईमानदारी से इन दो समुदायों में गहराई तक बैठे हुये पूर्वाग्रहों को स्पष्ट रूप से स्वीकार करें जो इनके बीच की गहरी खाई के वास्तविक कारण हैं।"[५९]

सिद्धांत

जब मैं कमजोर हूँ तो आपसे स्वतंत्रता का हकदार हूँ क्योंकि यही आपका सिद्धान्त है और जब मैं ताकतवर हूँ तो आपको स्वतंत्रता माँगने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है।

(मान्टालम्बर्ट : एम.ए.करिन्दकर की पुस्तक इस्लाम पृ. 333 से उद्धत)

इसी प्रकार

जहाँ हम अल्प संख्यक हैं और आपका बाहुल्य है वहाँ आप हमें अपने धर्म के प्रचार प्रसार की स्वतंत्रता दें क्योंकि सभी धर्मों को सच्चा और समान आदर योग्य समझने का आपका सिद्धांत हैं। जहाँ आप अल्पसंख्यक हैं और हमारा बाहुल्य है वहाँ हम आपको अपने धर्म प्रचार व प्रसार की स्वतंत्रता नहीं देंगे, क्योंकि सभी दूसरे धर्म झूठे, भ्रष्ट और भटके हुये हैं। हमारा यही सिद्धान्त है।

जापान
मंगोलिया
अफ़गानिस्तान
ईरान
चीन
जापान
अरबिस्तान
भारत
बर्मा
थाईलैंड
मालद्वीव
दीप समूह
मलाया
इंडोनेशिया
इस्लाम के आगमन
से पहले
बृहत्तर भारत और
हिन्दू-बौद्ध संस्कृति
आस्ट्रेलिया

१४
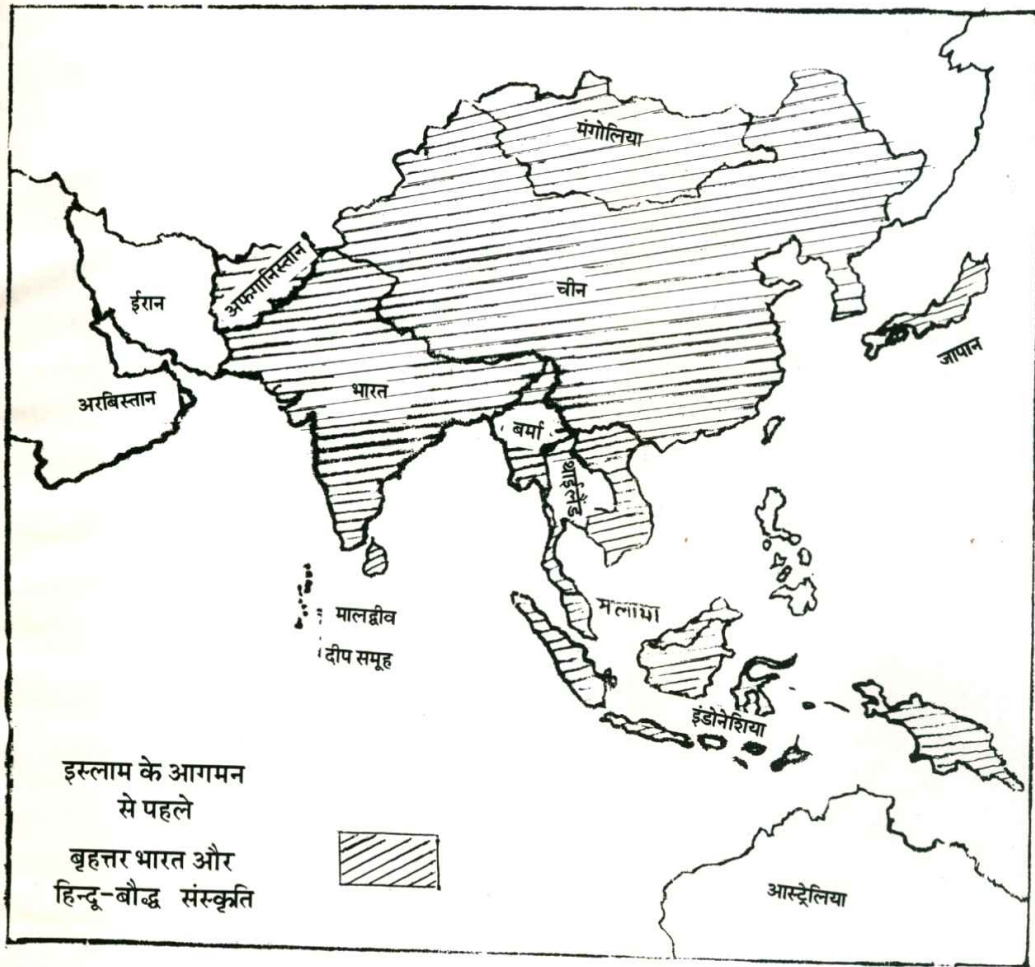
भारत के इस्लामीकरण का प्रथम चरण

इतिहास की दृष्टि से भारत के इस्लामीकरण को चार चरणों में बाँटा जा सकता है। पहला चरण दक्षिण भारत में मुस्लिम अरब व्यापारियों द्वारा इस्लाम के प्रवेश से पैगम्बर के जीवन काल में ही प्रारम्भ हो गया था। अरबों का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध इस्लाम के जन्मकाल से भी पुराना है। मध्य एशिया, यूरोप और उत्तरी अफ्रीका का भारत और दक्षिण पूर्वी द्वीप समूह से जो बृहत्तर भारत के अंग थे व्यापार अरबों के हाथ में था। समुद्र पर उनका एकाधिकार था। दक्षिणी भारत के शासकों की समृद्धि इस व्यापार पर आश्रित थी। इसलिये इन अरब व्यापारियों का हिन्दू शासक बहुत सम्मान करते थे। बहुत से अरब व्यापारियों ने यहाँ अपने केन्द्र बना लिये थे और यहाँ की हिन्दू स्त्रियों से विवाह भी कर लिया था।

जब अरब में इस्लाम आया तो पैगम्बर के जीवन काल में ही सभी अरब निवासी मुसलमान हो गये। अरब व्यापारी और नाविक भी। भारत का इस्लामकीरण उसी अज्ञात दिन से प्रारम्भ हुआ जब पहले मुसलमान ने मालाबार में भारत भूमि पर पैर रखा।

जैसा हम पिछले अध्यायों में बता चुके है पैगम्बर की शिक्षा ही कुछ ऐसी है कि प्रत्येक मुसलमान इस्लाम का मिशनरी भी होता है और योद्धा भी। वह अपने को अल्लाह और पैगम्बर का गुलाम कहना, समझना और उनके बताये ध्येय को जीवन की बलि देकर भी प्राप्त करना सबसे अधिक सम्मानजनक और गौरवपूर्ण पुण्य कार्य समझता है।

इसलिए इन मुसलमान नाविकों ने साधारण प्रजा से और व्यापारियों ने शासकों से जिनसे वह घनिष्ठ सम्पर्क में आते थे अपने पैगम्बर और नये धर्म की बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की। पैगम्बर की कुछ तथाकथित चमत्कारी बातों का भी वर्णन किया।

यह भारत की अंधकारमय अवनति का काल था। महाभारत से भी पहले भारत के शासकों के चरित्र में गिरावट आनी प्रारम्भ हो चुकी थी। बिहार में जरासंध, मथुरा में कंस, चेदि में शिशुपाल, सिन्ध में जयद्रथ इत्यादि अत्याचारी राजा अत्यन्त बलशाली हो गये थे। हस्तिनापुर में अंधा धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठा अपने दुष्ट पुत्रों के प्रति मोहग्रस्त था। कृष्ण ने इस दशा को सुधारकर भारत में एक बलशाली, चरित्रवान् और समर्थ केन्द्रीय राज्य की स्थापना के लिये महाभारत जैसा विनाशकारी युद्ध किया जिसमें अनेक क्षत्रिय महायोद्धा मारे गये।

केन्द्रीय शासन तो स्थापित हो गया परन्तु साधारण प्रजा में जो चरित्रहीनता आ चुकी थी वह रुकी नहीं। इसी को कलियुग का प्रारम्भ कहा जाता है।

भारत में इस्लाम के प्रवेश के समय हिन्दू शासकों का एक मात्र ध्यान अपनी सम्पदा

और अपनी गद्दी सुरक्षित रखने की ओर था। जनता की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। यह स्थिति आज भी वैसी ही है।धर्माचार्य आध्यात्मिक वाद–विवाद में अपना समय लगा रहे थे। बौद्ध संघों में दुराचार और व्यभिचार व्याप्त हो गया था। आदि शंकराचार्य भारत में घूम–घूम कर बौद्ध इत्यादि मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ कर उनके स्थान पर अपने मत को स्थापित कर रहे थे। कितने आश्चर्य की बात है कि इस महापुरुष ने जिसने केवल ३२ वर्ष की आयु में सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर उस के चारों कोनों पर अपने मठ स्थापित किये और अनेकानेक ग्रन्थ लिखे, अरब से आने वाले इस नये मत के विषय में जिसका एक मात्र ध्येय उनके तथा उनके प्रतिद्वन्दियों समेत सभी हिन्दू दर्शनों, संस्कृतियों, पूजा पद्धतियों को जड़ से उखाड़ फेंकना था कुछ भी नहीं लिखा। कदाचित् उनकी दृष्टि में उसका कोई महत्व ही नहीं था। पूरा हिन्दू समाज वेद और उपनिषदों की यथार्थवादी आक्रामक राष्ट्रिय शिक्षाओं को छोड़कर मूर्ति और अनेक देवी–देवताओं की पूजा में लग चुका था। वेद और उपनिषद् प्रायः लुप्त हो गये थे। वह वेद और उपनिषद् जिनके एकेश्वरवाद के ज्ञान की एक झलक ने दारा शिकोह को इतना मोहित कर लिया था कि उसने उनको कुरान के एकेश्वरवाद की अनेक गुत्थियों को खोलने की कुंजी ही कह डाला और अपने मतावलंबियों के हितार्थ संस्कृत सीखकर उनका अनुवाद फारसी में कर उसे "सिर्रे अकबर" अर्थात् "महान रहस्य" का नाम दिया। हिन्दू समाज अनेक जातियों में बँट चुका था और बराबर बँटता जा रहा था। नये–नये देवी देवताओं का आविष्कार हो रहा था। समाज के विभिन्न वर्गों में छुआछूत का भूत सिर चढ़कर बोल रहा था। ऐसी स्थिति में इस्लाम ने चुपचाप व्यापार के वस्त्र पहने दक्षिण भारत में प्रवेश किया।

हिन्दू मानस वेदों और उपनिषदों के स्पष्ट यथार्थवादी मार्ग से भटक कर अध्यात्यम की नई–नई खोजों, चमत्कारी साधु सन्तों और अविद्या युक्त घोर अन्धविश्वास की ओर आकृष्ट होता जा रहा था। इसलिये भारत में अनेक साधु सन्तों के और भगवानों के अलग–अलग सैकड़ों पन्थ बन गये थे जैसा आज भी बनते जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त कदाचित् लाखों साधु सन्तों, अघोरियों मुसलमान सूफियों, बाबाओं, गाजियों, शहीद की मजारों को भगवान, मुक्तिदाता और कष्ट निवारक मानने वालों के अपने–अपने सहस्रों अंध श्रद्धालु भक्त हैं।

एकेश्वरवाद, निर्जीव मूर्तियों की पूजा का खण्डन, सात–आसमानों के ऊपर अदृश्य सिंहासन पर बैठे एक मात्र अल्लाह की तन–मन–धन से भक्ति और सामाजिक समानता का सन्देश और पैगम्बर के चमत्कारी व्यक्तित्व की गाथाओं को लेकर जब इस्लाम मालाबार में आया तो उसे वहाँ की उर्वरा भूमि में पैर जमाते देर नहीं लगी। शासकों और उच्च वर्ग के लोगों ने उसको अध्यात्म का एक नया मार्ग, अपार सम्पदा का स्रोत और बिना कष्ट साध्य आत्मानुशासन और तपस्या के स्वर्ग प्राप्ति का सहज साधन समझकर अपनाया तो दलित वर्ग ने उसकी सामाजिक समानता का स्वागत किया। कलमें के चार शब्द बोलकर वह उन लोगों के सम्मान के पात्र हो जाते थे जो उनके हिन्दू रहते उनकी छाया को भी अपवित्र

करने वाला मानते थे। अरबों से व्यापार इतना महत्वपूर्ण था कि एक नरेश ने तो अपने पूरे मंत्रिमण्डल और सैकड़ों हिन्दू नाविकों सहित अरब देश जाकर इस्लाम की दीक्षा ही ले ली। इस लोभ का अन्दाजा इस बात से लग सकता है कि मालाबार अरेबिया से २०,००० घोड़े प्रति वर्ष आयात करता था और बदले में मसाले, लकड़ी इत्यादि निर्यात करता था।

अपने निजी स्वार्थवश शासकों द्वारा दिये गये इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्मान से अरब मुसलमानों के सहज आक्रामक स्वभाव की अवश्य ही पुष्टि हुई होगी। फलस्वरूप उन धर्मनिष्ठ विद्वान हिन्दुओं से उनके कुछ झगड़े प्रारम्भ हुये होंगे, जिन्हें अपने धर्म दर्शन पर गर्व था। क्योंकि शासक उन मुसलमानों के व्यापार पर आश्रित था इसलिये वह मुसलमानों का पक्ष लेता था। अपने नागरिकों को किसी न किसी प्रकार समझा बुझाकर, डरा धमकाकर, दण्ड देकर शान्त करता था तो मुसलमानों को कुछ इनाम, इकराम, भेंट सुविधायें, इत्यादि देकर उनकी तुष्टि करता था। हिन्दुओं के धर्मान्तरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

एक मुस्लिम इतिहासकार लिखता है कि "कैम्बे का राजा सिद्धराज मुसलमानों पर सदैव कृपा करता था। एक बार उसकी हिन्दू प्रजा ने मुसलमानों के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसने अपनी हिन्दू प्रजा को दण्डित किया और मुसलमानों को एक मस्जिद बनाकर भेंट की।"[(६०)]

हिन्दू प्रजा ने मुसलमानों के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया इस पर इतिहास चुप है। किन्तु यह जानते हुये कि उन्हें राज्य संरक्षण प्राप्त है इस विद्रोह के पर्याप्त कारण रहे होंगे।

इस प्रकार दक्षिण भारत के शासकों की नीति से और हिन्दू समाज में फैले अज्ञान, अंधविश्वास, छुआछूत इत्यादि अनेक कुरीतियों के कारण भारत इस्लामीकरण के पथ पर अग्रसर हुआ। थोड़ा ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि यह परिस्थितियाँ आज भी ज्यों की त्यों हैं। केवल स्वार्थ का रूप और तुष्टीकरण के तरीके बदल गये हैं। अंधविश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। ऐसी-ऐसी मज़ारें और भगवान पूज्य बन गये हैं जिनका ५० वर्ष पहले किसी ने नाम भी नहीं सुना था। सन् १९२४ में उन्हीं अरबों की हिन्दू स्त्रियों से उत्पन्न सन्तान मोपालाओं ने ५००० हिन्दुओं को कत्ल कर और २०,००० को बलात् मुसलमान बनाकर मालाबार में मुस्लिम राज्य घोषित किया।

उत्तरी भारत में इस्लाम ने तलवार और कुरान लेकर भू-मार्ग से सिन्ध में प्रवेश किया। वहाँ भी उसको विजय प्राप्त करने के लिये उर्बरा भूमि मिली किन्तु दूसरी प्रकार से।

सिन्ध में पहले किसी समय अयोध्या से वहाँ गये सूर्यवंश के क्षत्रिय राणा लोगों का शासन था। दाहिर के पिता ब्राह्मण चाच को राणा ने विश्वस्त सेवक बनाकर अपनी सेवा में रख लिया था। चाच ने कुटिलतापूर्वक अपने स्वामी के साथ विश्वासघात कर उसका वध कर दिया और स्वयं सिन्ध का राजा बन बैठा। इस्लाम के प्रवेश के समय इसी

चाच का पुत्र दाहिर सिन्ध का शासक था। अरबों द्वारा सिन्ध पर आक्रमण पैगम्बर मौहम्मद साहब की ६३२ में हुई मृत्यु के पश्चात् ही प्रारम्भ हो गये थे। उसके पश्चात् के ८० वर्ष के काल में सिन्ध पर ८–१० आक्रमण हुये। सीमा पर बसे मेढ़ राजपूतों और पराक्रमी जाटों द्वारा सभी आक्रमण असफल हो गये। एक भी आक्रमणकारी जीवित नहीं लौटा। केवल हिन्दू अफगानिस्तान में १२००० हिन्दू और बौद्धों का बलात् इस्लाम में धर्म परिवर्तन करने की ही सफलता उनके हाथ आयी।[६१]

दाहिर के समय में १७ वर्षीय युवक मौहम्मद–बिन–कासिम के नेतृत्व में अरबों द्वारा अजेय सिन्ध का पतन हुआ। इतिहासकारों ने इस पराजय के कारणों का विश्लेषण किया है। ऐसा लगता है कि क्षत्रिय राजवंश को विश्वासघात द्वारा हटाने के पश्चात् चाच और दाहिर ने हिन्दू क्षत्रियों, राजपूतों और जाटों के स्थान पर बौद्धों और ईराक ईरान से आये हुये सिन्ध में बसे मुसलमानों पर विश्वास करना उत्तम समझा। दाहिर के समय में किलों के रक्षक सेनापति, मंत्री और सलाहकार अधिकतर बौद्ध थे। मेढ़ राजपूतों और जाटों पर जो सदैव सीमान्त की रक्षा करते आये थे अनेक अपमानजनक कानून लागू कर दिये गये थे। वह जूता और टोपी नहीं पहन सकते थे। घोड़ों पर नहीं चढ सकते थे और सार्वजनिक स्थानों में उनको एक कुत्ते को साथ लेकर चलना पड़ता था। कुत्ते सिन्ध से विदेशों को निर्यात किये जाते थे। मेढ़ों और जाटों को कुत्ते पालने के लिये बाध्य किया जाता था। इसके विपरीत दाहिर ने मुसलमानों की एक अलग सैन्य टुकड़ी ही खड़ी कर ली थी। उसका कमाण्डर वारिस अल्लाफी नामक अरब मुसलमान था, जिसने ऐन युद्ध के समय आक्रान्ता मुस्लिम सेनाओं से लड़ने के स्थान पर पीछे से दाहिर की सेना पर आक्रमण कर दिया था। और इस प्रकार सिन्ध के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दाहिर इस सेना को अपने निवास की और अपनी सुरक्षा का दायित्व सौंपे हुए था।

स्वयं दाहिर की छवि उसकी प्रजा में अत्यन्त निकृष्ट रही होगी। उसका एक कारण था। दाहिर की एक छोटी बहिन थी बाई। वह दाहिर के छोटे भाई के पास रहकर पली थी जो साधु हो गया था। जब बाई युवा हुई तो उसने उसे दाहिर के पास विवाह करने के उद्देश्य से भेज दिया क्योंकि साधु होने के कारण वह इस कार्य को सम्पन्न करने में असमर्थ था। बाई के साथ उसने उसकी जन्मपत्री भी भेज दी जिसमें लिखा कि बाई का पति चक्रवर्ती राजा होगा। जन्मपत्री पढ़कर दाहिर के मन में यह पाप आया कि वह स्वंय ही बाई से विवाह कर उसके ग्रह नक्षत्रों का लाभ क्यों न उठाये? उसने बाई से विवाह कर लिया। यद्यपि उसने अपनी छोटी बहिन से शारीरिक सम्बन्ध तो नहीं बनाया परन्तु एसा विवाह सभी मतों, धर्मों और समाज में जघन्य–पाप समझा जाता है। इस कुकर्म से दाहिर की प्रजा में उसका क्या सम्मान रहा होगा वह बताने की आवश्यकता नहीं है।

दाहिर की पराजय के दो कारण और थे। मुस्लिम सेना में मुखयतया रण में मंजे हुए अनुभवी सीरिया के घुड़सवार थे। दाहिर की सेना में मुख्यतया हाथी थे। हाथी सदैव ही भारतीय सेना की पराजय का कारण बना है। देखने में हाथियों की पंक्ति एक अभेद्य दीवार

सी लगती है किन्तु जख्मी होने पर अथवा अग्नि के गोलों से डरकर जिसका उपयोग मुस्लिम सेना करती थी हाथी जब मुड़कर भागते थे तो अपनी ही सेना को रौंदते चले जाते थे। भागते हाथी को रोकने के लिये घोड़े की लगाम की भाँति कोई चीज नहीं होती। बेकाबू हाथी पर महावत का भी वश नहीं चलता। हाथी उसको सूंड से पकड़कर मार देता है।

भारतीय सेना की दूसरी कमज़ोरी थी उसके पास आधुनिक मजनीको (पत्थर तथा आग के गोले फेंकने वाली मशीन) का न होना। इस प्रकार मुस्लिम सेनायें भारतीय सेना की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षित, अनुभवी और उत्तम हथियारों से सुसज्जित थीं।

दाहिर के समय में सिन्ध की परिस्थिति क्या थी? एक ऐसा राजा जिसके लिये प्रजा में सम्मान नहीं। सिन्ध पर पूर्वकाल में हुये ८-१० आक्रमणों को निष्फल करने वाले मेढ़ राजपूतों और जाटों की अपमानजनक व्यवहार से क्षुब्ध होकर आक्रमण के प्रति उदासीनता। दुर्गपति, सेनापति, मंत्री और सलाहकार ऐसे बौद्ध जो रक्तपात को पाप समझकर युद्ध से विमुख होकर बिना रोके टोके आक्रमणकारी को स्वदेश में घुस आने दें। उसकी सेना के लिये शिविरों में गोमांस के ढेर लगा दें। राजा की विश्वस्त मुस्लिम सेना और उसका प्रमुख अधिकारी अल्लाफी मुसलमान जो हिन्दुओं को और बौद्धों को काफिर और संहार योग्य समझते हैं। अनुभवी सुसज्जित घुड़सवार मुस्लिम सेना के सामने तुलनात्मक दृष्टि से आधुनिक हथियारों से वंचित अनुभवहीन सेना।

ऐसी दशा में फल वही हुआ जो होना था। मौहम्मद-बिन-कासिम ने हज्जाज को लिखे गये अपने पहले पत्र में लिखा : "राजा दाहिर के भतीजे, उसके मुख्य-मुख्य अधिकारी और सैनिकों का वध कर दिया गया है। हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया है अथवा उनका वध कर दिया गया है। मूर्ति मंदिरों के स्थान पर मस्जिदें और दूसरे मुस्लिम पूजा स्थल बना दिये गये हैं। नमाज़ के बाद (खलीफा के नाम पर) खुतबा पढ़ा जाता है। अज़ान दी जाती है जिससे ठीक समय पर नमाज़ पढ़ी जा सके। प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल अल्लाह की प्रशंसा में तकबीर पढ़ी जाती है।"[६२]

इस पत्र के उत्तर में हज्जाज ने लिखा "अल्लाह कहता है काफिरों को शरण मत दो अपितु उनके गले काट डालो। इसलिये याद रखो यह अल्लाह का हुक्म है "हिन्दुओं को शरण देने की रियायत मत करो। इससे तुम्हारा काम बढ़ जायेगा। इसके पश्चात् शत्रु को बिल्कुल क्षमा मत करो सिवाय उनके जो बहुत शक्तिशाली हों।"[६३] (अर्थात् जिनको क्षमा करने से तुम्हें उनका लाभदायक सहयोग मिल सके) सिन्ध में जो नरक लीला खेली गयी उसकी झलक मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा वर्णित कुछ घटनाओं से मिलती है।

देवल के मन्दिरों के ध्वस्त होने पर ७० सुन्दर लड़कियाँ मुसलमानों के हाथ रहीं। युद्ध बन्दी सब कत्ल कर दिये गये। मन्दिर को तोड़कर मस्जिद बना दी गयी। रावर के किले में ६००० हिन्दू थे। सब कत्ल कर दिये गये। ३०,००० स्त्री-पुरुष, बच्चे हज्जाज की मार्फत खलीफा के पास गुलाम बनाकर बेच दिये गये। इनमें दाहिर की दो पुत्रियाँ और एक भांजी भी थी। पकड़े गये तमाम युद्ध बन्दियों का मुस्लिम कानून के अनुसार यह केवल

१/५ भाग रहा होगा। शेष १,२०,००० हिन्दू कैदी सैनिकों में बाँट दिये गये। हज्जाज का उपरोक्त पत्र मिलने के बाद अगली विजय पर १६००० हिन्दू कत्ल कर दिये गये २०,००० गुलाम बना लिये गये ४००० मौहम्मद-बिन-कासिम के भाग में आये और शेष १६००० सैनिकों में बाँट दिये गये। असकन्द में ४००० और मुल्तान में ६००० युद्ध बन्दी कत्ल कर दिये गये। कत्ल किये हुए सभी लोगों के परिवार गुलाम बना लिये गये।

मौहम्मद-बिन-कासिम के कृपा पात्र बहुत से ब्राह्मण और बौद्ध मुसलमान हो गये। कहा जाता है कि आक्रान्ता के जुल्मों से बचने और अपनी स्थिति सुदृढ़ रखने के लिये भी अनेक शासकों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। पंजाब के एक राजा असीफान ने मुस्लिम सौदागरों के बहलाने फुसलाने से इस्लाम स्वीकार कर लिया। मुस्लिम व्यापारियों ने सदैव ही अपने सम्पर्क में आने वाले विशिष्ट लोगों का धर्मान्तरण करने में विशेष रुचि ली है। कुरान का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद भी किया गया। फलस्वरूप सिन्ध ने इस्लाम की बौद्धिक दुनिया में कुछ जानी मानी हस्तियों को जन्म दिया।

इसी समय के आसपास अनेक सूफी मध्य एशिया देशों में अपनी जड़ें जमा चुके थे। भारत के इस्लामीकरण के दूसरे चरण में इन सूफियों ने भारत में अपने डेरे डाले और हिन्दुओं के शांतिपूर्वक धर्मान्तरण को नई दिशा दी। इसका वर्णन हम दूसरे चरण के इतिहास में करेंगे।

सिन्ध की विजय के पश्चात् इस्लामी दुनिया में उथल पुथल के कारण अरब सेना को वापिस जाना पड़ा। दाहिर की पुत्रियों के चातुर्य और षड्यन्त्र के कारण मौहम्मद-बिन-कासिम को उसके खलीफ़ा द्वारा ही प्राण दण्ड दिया गया। शेष रह गयीं तो कुछ मुस्लिम बस्तियाँ, ध्वस्त मन्दिर, उन पर बनी मस्जिदें, उनकी सीढ़ियों पर बिछी टूटी फूटी देव मूर्तियाँ जो आक्रान्ता के नये धर्म का प्रदर्शन कर रही थीं। मक़तब और मदरसे जो विजेता ने नव मुस्लिमों को धर्मनिष्ठ कट्टर मुस्लिम बनाने के लिये स्थापित किये थे।

इसके पश्चात् लगभग ढाई सौ वर्ष लम्बे अन्तराल में इस्लाम सिन्ध में शान्तिपूर्वक फैलता रहा। मस्जिदें बनी रहीं अज़ाने होती रहीं। मुसलमान अपने धर्म का आचरण, प्रचार और प्रसार करते रहे। भारत के उस शान्तिपूर्ण इस्लामीकरण की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। १००१ ई. में महमूद गजनवी के प्रथम आक्रमण से भारत के इस्लामीकरण का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ।

अरबों द्वारा सिन्ध विजय के विषय में एयर मार्शल (सेना निवृत्त) असगर खाँ जो पाकिस्तानी वायु सेना के प्रमुख रहे थे ठीक ही लिखते हैं : "भारतीय भू-खण्ड पर पहला इस्लामी युद्ध देवल (आधुनिक कराँची) में हुआ था। इस युद्ध में मौहम्मद-बिन-कासिम की विजय से सिन्ध में मुसलमानों के पैर दृढ़ता से जम गये और इस भू-भाग में इस्लाम के फैलने का मार्ग प्रशस्त हो गया।"(६४)

१५

भारत के इस्लामीकरण का दूसरा चरण

मुसलमान सुल्तानों और बादशाहों के द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार और उनके बलपूर्वक धर्मान्तरण की साक्षी अनेक मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थ, उन शासकों की स्वलिखित और दूसरी जीवनियाँ उस काल के हिन्दू नरेशों से की गयी सन्धियों के सन्धि पत्र, शासकों द्वारा सूबों के गवर्नरों को भेजे गये आदेश पत्र, उन आदेशों के पालन की रिपोर्टें और दूसरे अभिलेख हैं जो आज भी उपलब्ध हैं। इस्लाम के अनुसार मुस्लिम शासन में केवल यहूदियों और ईसाईयों को ही अपमानजनक ज़िजिया कर देकर अपने धर्म का पालन करते हुये जीवित रहने का अधिकार है। शेष लोगों को तलवार अथवा इस्लाम ही दो विकल्प हैं। भारत में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों की अपेक्षा अति विशाल थी। वह अपने धर्म के लिये मरते दम तक विकट युद्ध करते थे। इस परिस्थिति में मौहम्मद-बिन-कासिम से लेकर मुस्लिम शासन के अन्त तक हिन्दुओं को भी ज़िजिया कर देकर ज़िम्मी बनकर जीवित रहने का अधिकार देना ही मुस्लिम शासकों की नीति रही। अनेक मुस्लिम विद्वानों, सूफियों, इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों की इस नीति पर क्षोभ व्यक्त किया है। अपनी धर्मनिरपेक्षता और हिन्दू संस्कृति के प्रेम के लिये धर्मनिरपेक्ष हिन्दुओं द्वारा प्रशंसित आलिम और सूफी अमीर खुसरों की यह घोषणा इस श्रेणी के लोगों की भावनाओं का अच्छा उदाहरण है:

"धर्म की शान ! प्रसन्न हिन्दुस्तान ! जहाँ शरियत को सम्पूर्ण सुरक्षा और आदर प्राप्त है। हमारे धर्म योद्धाओं की तलवार से पूरा देश ऐसा हो गया है जैसा दावानल के कारण कंटकविहीन बन....इस्लाम विजयी है। मूर्ति पूजा का दमन हो गया है। यदि कानून द्वारा जिज़िया देकर मृत्यु से बचने की छूट न दे दी गयी होती तो हिन्दू नाम ही जड़ मूल से नष्ट हो गया होता।"[६५]

जिज़िया केवल एक आर्थिक टैक्स ही नहीं था। उसका ध्येय ज़िम्मी को अपमानित करना भी था। तंग होकर उसका मनोबल टूट जाय और वह अन्ततः इस्लाम स्वीकार कर ले।....जिज़िया वसूल करते समय ज़िम्मी को गर्दन से पकड़ कर बलपूर्वक इधर-उधर धकेला जाता था जिससे उसे अपने अपमान का अनुभव हो... प्रत्येक मोड़ पर मृत्यु उसके इन्तज़ार में खड़ी दिखाई देती थी। मूर्ति पूजक होने के नाते उन्हें किसी समय भी इस्लाम और मृत्यु में से एक को चुनने को कहा जा सकता था। विदेशी मुसलमानों को धर्मान्तरित भारतीय मुसलमानों पर वरीयता दी जाती थी। अशिक्षित और चरित्रहीन विदेशी मुसलमानों को महत्व और सम्मानपूर्ण पदों पर नियुक्ति मिल जाती थी। शिक्षित तथा सम्मानित धर्मान्तरित हिन्दू भी उनसे वंचित रखे जाते थे।[६६]

हिन्दुओं के साथ सौतेले और पाशविक व्यवहार के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। केवल कुछ ही पर्याप्त होंगे। अमीर खुसरो के अनुसार जलालुद्दीन खिलज़ी १२९०–९६ के शासनकाल में युद्ध के बाद जो भी हिन्दू विजयी सुल्तान के हाथ लग जाता था उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया जाता था। मुसलमानों को बख्श दिया जाता था।[(६७)] दक्षिण भारत में मलिक कफूर द्वारा जो स्वयं पहले हिन्दू था, हिन्दू राजाओं की ओर से युद्ध में लड़ने वाले मुसलमान अपने अन्नदाताओं के साथ विश्वासघात कर मुसलमान सेना से मिल जाते थे। उनकी जान बख्श दी जाती थी।[(६८)]

रिजकुल्लाह मुश्तकी सुल्तान सिकन्दर लोदी (१४८९–१५१७) की बड़ी प्रशंसा करता है क्योंकि उसके शासनकाल में मुसलमानों का वर्चस्व रहता था जबकि हिन्दुओं का दमन किया जाता था।[(६९)]

गोस्वामी तुलसी दास (१४९७–१६१३) ने राक्षसों और निसिचरों के बहाने अपने समय में सिकन्दर लोदी से जहाँगीर के शासनकाल तक हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों का आँखों देखा वर्णन किया है। यह राक्षस रावण जैसे अत्याचारी ब्राह्मण नहीं थे। रावण जैसे राक्षस गौ–हत्या, ब्रह्म हत्या नहीं करते थे। रावण तो स्वयं ब्राह्मण था। किन्तु तुलसीदास जिन राक्षसों निसिचरों का वर्णन कर रहे हैं वह गाय, ब्राह्मण के हत्यारे और नगरों को जला देते थे। जैसे भी हो सके वह हिन्दू धर्म को निर्मूल करने को कटिबद्ध थे। सत्ता प्राप्ति के लिये माता–पिता के प्रति भी कोई सम्मान अथवा दया भाव नहीं था।

बालकांड

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी।।
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।।
जेहि विधि होई धर्म निर्मूला। सो सब करहीं वेद प्रतिकूला।।
जेहि जेहि देसु धेनु, द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आगि लगावहिं।।
सुभ आचरन कतहुँ नहीं होई। देव विप्र गुरु मान न होई।।
नहिं हरि भगति जोग्य तप ज्ञाना। सपनेहु सुनी न वेद पुराना।।
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा ।।
मानहिं मात पिता नहीं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी।।

(राम चरितमानस : बाल काण्ड १८२)

गौंड़ गंवार नृपाल कालि यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद अब केवल दंड कराल।।

हिन्दुओं की कैसी दशा थी? उसका वर्णन करते हुये लिखते हैं :

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक का बनिज, न चाकर को चाकरी

जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहें एक एकन सों कहाँ जाइ का करी?

अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में "हिन्दुओं का कार्य लकड़हारों और पानी लाने वालों तक सीमित रह गया था। वह कठिनता से जीवित् मात्र रह सकते थे। घोड़े पर नहीं चढ़ सकते थे। उत्तम वस्त्र नहीं पहन सकते थे। हथियार नहीं रख सकते थे। यहाँ तक कि पान भी नहीं चबा सकते थे। भयानक दरिद्रता के कारण उनकी स्त्रियों को मुस्लिम परिवारों में चाकरी करनी पड़ती थी। अलाउद्दीन सत्य ही कहता था "मेरे हुक्म से वह चूहों की तरह बिलों में रेंगने को तैयार हैं।"(७०)

श्री चैतन्य देव का आविर्भाव वि सं.-१४५२ (१४८६ ई.) में गोस्वामी तुलसीदास से पहले हुआ था। जयानंद लिखित चैतन्य मंगल में तत्कालीन मुसलमान शासकों के अमानुषिक अत्याचारों का दुखदायी वर्णन इस प्रकार किया गया है।

राजा (मुसलमान शासक) ब्राह्मणों को पकड़ लेता है, उन्हें धर्मभ्रष्ट करता है और मार भी डालता है। यदि किसी घर में शंख ध्वनि सुनाई पड़ती है तो उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है और कभी कभी ग्रह स्वामी को बेधरम कर या उसको मौत के घाट उतार दिया जाता है। जो लोग यज्ञोपवीत पहनते हैं या मस्तक पर तिलक चन्दन लगाते हैं उनके घर लूट लिये जाते हैं। तथा उनको रस्सी से बाँध दिया जाता है। मंदिरों को तोड़ा जाता है। गंगा स्नान की मुमानियत है और सैकड़ों पीपल और बेल के वृक्ष काट दिये गये हैं। ऐसा ही अत्याचारों का वर्णन "मधुरा विजयम" में कवियत्री गंगा देवी ने किया है। यथा-

म्लेच्छ प्रतिदिन हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करते है। देव मूर्तियों को तोड़ कर खण्ड विखण्डित कर डालते हैं। श्री मद्भगवद्गीता आदि धर्म शास्त्रों को जला डालते हैं। ब्राह्मणों से शंख, घंटा, घड़ियाल छीन लेते हैं और उनके शरीर पर चंदन लेप चाट लेते हैं। तुलसी वृक्ष पर कुत्तों के समान मूतते हैं और हिन्दू मंदिरों में पाखाना कर देते हैं। पूजा पाठ करते हुये हिन्दुओं पर मुँह में पानी भरकर थूकते हैं। इस प्रकार पागलों जैसा व्यवहार हिन्दू साधु संतों के साथ करते हैं।

मुस्लिम सेना का सजीव वर्णन चौदहवीं शताब्दी के मैथली कवि विद्यापति ने दिया है। यह कवि बंगाल के सुल्तान गयासुद्दीन और नसीरूद्दीन के कृपा पात्र रहे हैं। मुस्लिम सैनिकों के विषय में वह लिखते हैं : "कभी-कभी यह लोग कच्चा मांस खा जाते हैं। शराब पीने के कारण इनकी आँखें सुर्ख रहती हैं। वह आधे दिन में बीस योजन भाग सकते हैं। पूरा दिन एक रोटी पर व्यतीत कर देते हैं। शत्रु के नगर की तमाम स्त्रियों को छीन लेते हैं-----वह जहाँ से भी गुज़रते हैं उस जगह के हिन्दू शासकों की रानियाँ बाजार में बिकने लगती हैं। वह नगरों को आग लगा देते है। स्त्रियों और बच्चों को घरों से निकाल देते हैं और मार देते हैं। लूटपाट उनकी आमदनी का ज़रिया है और उसी से उनका निर्वाह होता है। उन्हें न निर्बलों पर दया है और न बलशालियों से भय। उनका सदाचार से कोई वास्ता नहीं है। वचन पालन करना वे जानते ही नहीं। नेकनामी व बदनामी का उन्हें कोई भय नहीं है।"

एक दूसरे स्थान पर वह कहते हैं कि "मुसलमान जब हिन्दुओं पर हमला करता है तो उसको देखकर ही ऐसा लगता है कि वह तमाम हिन्दुओं को कच्चा खा जायेगा।[७१]

मुस्लिम सैनिक जोशीला योद्धा होता था। मानसिक रूप से वह अपने को अल्लाह का सिपाही मानता था। जिहाद शब्द का उसके ऊपर जादू जैसा प्रभाव होता था। धार्मिक नारों और युद्ध में लूट तथा मरने पर जन्नत में स्थान पाने की आशा में उसका युद्ध में जोश कई गुना हो जाता था। और वह अत्यंत निष्ठुर और क्रूर हो जाता था। ---- सब स्थानों पर उस का ऐसा आतंक फैल जाता था कि उसको सुनकर ही आदमी सुन्न हो जाते थे।[७२]

हिन्दुओं के दमन के इन अनेक तरीकों में मृत्यु और अपमान से भी भयंकर था परिवार का दासता में जकड़ जाना। युद्ध के बाद हिन्दू प्रजा का कत्लेआम असाधारण नहीं था। मुसलमान द्वारा हिन्दू का कत्ल कोई जुर्म नहीं माना जाता था। वयस्क पुरुष वध कर दिये जाते थे। छोटे-छोटे बच्चे गुलाम बना लिये जाते थे। उन्हें मुसलमान बनाकर गुलामों की सेना में युद्ध शिक्षा दी जाती थी। धीरे-धीरे वह अपने माता-पिता को भूल जाते थे। सुल्तान ही उनका सब कुछ होता था। अनेक अवसरों पर इन गुलामों ने अपने स्वामी के सैनिक अभियानों में सुल्तानों से भी अधिक क्रूरता का परिचय दिया है। मलिक कफूर (धर्मान्तरित हिन्दु गुलाम) द्वारा दक्षिण के मन्दिरों और हिन्दुओं पर किये गये घोर अत्याचार इसके साक्षी हैं।

इन गुलामों की संख्या से इस अत्याचार का अनुमान लगाया जा सकता है। अलाउद्दीन खिलज़ी के पास ५०,००० गुलाम लड़के थे।[७३] उस समय सम्पूर्ण आबादी १०-१२ करोड़ रही होगी। अलाउद्दीन द्वारा शासित जनसंख्या यदि ७-८ करोड़ मान लें तो ५०,००० नौ-दस साल के कम उम्र बच्चों को कितने परिवारों से पकड़ा गया होगा?

कटेहर के विरुद्ध अपने अभियान में बलबन ने ८-९ वर्ष से ऊपर की आयु के सभी कैदियों का वध करवा दिया था। फीरोज तुग़लक का अपने जागीरदारों और अधिकारियों को आदेश था कि वह जहाँ कहीं युद्ध के लिये जायें वहाँ से दासों को पकड़ें। सरकारी टैक्स वसूल करने वाले अधिकारियों को आदेश था कि जो परिवार टैक्स न दे सके उसे दास बना लिया जाये। भारत में भी दूसरे मुस्लिम देशों की भाँति दासों के बाजार लगते थे। दासों को बेंचकर शासन अपना टैक्स वसूल लेता था। इन सभी जुल्मों से बचने का एक आसान मार्ग था इस्लाम ग्रहण कर लेना। अनेक सुल्तानों ने अपने इन हथकण्डों से बड़ी मात्रा में हिन्दुओं के इस्लाम ग्रहण करने पर संतोष और प्रसन्नता प्रकट की है।

बिल ड्यूरेन्ट ने लिखा है कि विश्व के इतिहास की अत्यधिक रक्तरंजित गाथा भारत में इस्लाम काल की है। उस गाथा का १००० वर्ष का रक्तरंजित, कष्टपूर्ण, अपमानजनक, इतिहास हम चाहते हुए भी यहाँ देकर पुस्तक का विस्तार नहीं करना चाहते। जो पाठक उसमें रुचि रखते हों उन से हम केवल प्रोफेसर एस.पी. शर्मा की प्रमाणिक पुस्तक "द क्रीसेन्ट इन इण्डिया" जो आसानी से उपलब्ध है पढ़ने का आग्रह करते हैं।

मुस्लिम इतिहास में शाहजहाँ का शासनकाल अकबर को छोड़कर शेष सभी

भारत के इस्लामीकरण का
प्रथम चरण ७१२ ई.
मौहम्मद बिन कासिम
के आक्रमण के बाद सम्पन्न
मुस्लिम बस्तियाँ
बदख्शाँ
हिरात
काफिरिस्तान
चीन
काश्मीर
अफगानिस्तान
६६४ ई. में अरबों
द्वारा १२०० हिन्दुओं
का बलात धर्मान्तरण
चिनाब नदी
तिब्बत
मुल्तान
सतलज नदी
भटिंडा
कटेहर
सिन्धु नदी
उछ
बलूचिस्तान
ईरान
नेपाल
मारवाड़
ब्रह्मपुत्र नदी
मकरान
सिन्ध
राजस्थान
अजमेर
जमुना नदी
गंगा नदी
पटना
असम
मंसूरा
देवल
थट्टा
मेवाड़
चित्तौड़
गंगा नदी
बिहार
पाटन
कच्छ
ईदर
मालवा
सोन नदी
बंगाल
गोंडवाना
उड़ीसा
काठियावाड़
बराड़
अराकान
गोदावरी नदी
महाराष्ट्र
दक्खन
कृष्णा नदी
तुंगभद्रा नदी
कर्नाटक
मद्रास
जजीरे-अल-मालाबार
मालाबार
माबार
लंका

शासकों की तुलना में हिन्दुओं के प्रति उदार कहा जाता है। उसी शाहजहाँ के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति का वर्णन करते हुए शेख अब्दुर्रहमान लिखते हैं कि "अग्नि पूजक और हिन्दू इतने भयभीत रहते हैं कि सड़कों और बाजारों में खुले आम गौवध होने पर भी कोई बोल नहीं सकता। इस्लाम इतना बलशाली हो गया है कि हिन्दू खुशी-खुशी अपनी बेटियाँ बादशाह और अमीरों को दे देते हैं।"

रिजकुल्लाह मुश्तकी के अनुसार मुसलमानों का सर्वत्र वर्चस्व था और हिन्दू विनीत और आज्ञापरायण थे। किन्तु सहस्रों सूफियों ने भारत के इस्लामीकरण में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उसके साहित्य की ओर अभी कुछ ही समय से विद्वानों की दृष्टि गयी है। जनसाधारण को कदाचित सुल्तानों के अत्याचारों के विषय में तो थोड़ा बहुत ज्ञान है भी किन्तु यह सूफी लोग तो हिन्दू जीवन में इस प्रकार रम गये हैं कि उनको हिन्दू-मुस्लिम सम्मिलित संस्कृति का देवदूत मान लिया गया है।

सूफ़ियों द्वारा भारत का इस्लामीकरण

सूफ़ियों के कारनामों की दो अंग्रेजी पुस्तकें हाल ही में प्रकाशित हुई हैं,एक है सैय्यद अथर अब्बास अली रिज़वी की पुस्तक "द हिस्ट्री ऑफ सूफ़िज्म इन इण्डिया"। इस पुस्तक के लगभग ७००-७०० पृष्ठों के दो खण्ड हैं। दूसरी पुस्तक "श्राइन एण्ड कल्ट ऑफ मोइनुद्दीन चिश्ती ऑफ अजमेर" है। लेखक हैं पी. एम. करी। स. अबुल हसन अली नदवी की पुस्तक "मुस्लिम्स इन इंडिया" और डॉ. के. एस. लाल की दो पुस्तकें "इण्डियन मुस्लिम्स व्हू हार दे" तथा "लीगेसी ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इण्डिया" भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। इस अध्याय में हमने मुख्यतया इन्हीं पुस्तकों को आधार बनाया है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि सूफ़िज्म भारतीय दर्शन के भक्ति और ध्यान योग की ही उपज है जिसका प्रभाव इस्लाम के पदार्पण से पहले मध्य एशिया और उसके आस-पास के क्षेत्रों में व्यापक रूप से हो गया था। चाहे भारतीय दर्शन की सूफ़िज्म के विकास में कोई भूमिका रही हो या न रही हो मुस्लिम सूफ़ी हर प्रकार से कट्टर धर्मनिष्ठ मुसलमान होते हैं और हिन्दू काफ़िरों, मूर्ति पूजकों इत्यादि को इस्लाम में दीक्षित करना अथवा उनको समूल नष्ट कर देना अपना मुख्य धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। सूफ़ियों की अनेक परम्परायें हैं। इनके ध्यान, कीर्तन आदि के तरीकों में अनेक भेद हो सकते हैं परन्तु हिन्दुओं के प्रति उन सब का दृष्टिकोण वही है जो एक धर्मनिष्ठ मुसलमान का होना चाहिये।

१००० ई. के बाद भारत के इस्लामीकरण का जो दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ उसमें एक ओर तो महमूद गजनवी से प्रारम्भ होकर दूसरे अनेक आक्रामक तलवार और कुरान लेकर भारत में घुसे अथवा उनके वंशजों ने भारत में इस्लाम का विस्तार तलवार के बल पर किया। दूसरी ओर सूफी लोग मुँह में भजन, कीर्तन, चमत्कार के दावे और बगल में तलवार और कुरान लेकर आये। इनमें से अधिकांश ने प्रकट रूप से तलवार का उपयोग नहीं किया किन्तु कुछ एसे भी थे जो आवश्यकता पड़ने पर तलवार लेकर स्वयं भी जिहाद में उतर

पड़ते थे।

सूफ़ी इतने शक्तिशाली थे कि मुगलकाल के पतन के समय जब मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूत स्वतंत्र हो गये तब भी वह नागौर में सूफ़ियों के प्रभाव को कम नहीं कर सके।

जब अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण में देवगिरि विजय किया तो सैकड़ों सूफियों ने वहाँ जाकर अपनी खानकाहें स्थापित कर लीं और धर्मान्तरण के कार्य में लग गये। इनमें से कुछ ने खुलकर हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया और इतने हिन्दुओं का वध किया कि उनके नाम के साथ कत्ताल और कुफ्फार भंजन जैसे शब्द जुड़ गये।

कुछ दूसरे ऐसे भी थे जो वर्षों तक जंगलों में योग साधना और तपस्या करते थे। धीरे-धीरे जब उनकी योगी, तपस्वी ब्रह्मचारी होने और चमत्कार करने की ख्याति आस-पास की हिन्दू जनता में फैल जाती थी उनके हिन्दू भक्त बनने लगते थे और फिर प्रारम्भ होता था वही धर्मान्तरण का सिलसिला।

महमूद गज़नवी ने १००१ ई. से १०२५ ई. तक भारत पर अनेक आक्रमण किये। इन आक्रमणों के प्रारम्भ करने के पहले उसने धार्मिक शपथ ली थी कि वह भारत से मूर्ति पूजा का चिन्ह मिटाकर वहाँ के समस्त निवासियों को इस्लाम में दीक्षित करेगा। महमूद गज़नवी के आक्रमणों के साथ-साथ मध्य एशिया से बहुत से सुन्नी सूफी शेख़ भारत में आकर बसने प्रारम्भ हो गये थे। ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक सूफ़ी लोग पंजाब और उसके आसपास के इलाकों में फैलकर अनेक स्थानों पर जम गये थे।

बंगाली लड़ाकू सूफियों में एक मुख्य नाम है सिलहट के शेख जलाल का। गुलज़ार-ए-अबरार के अनुसार शेख़ जलाल जन्म से तुर्किस्तानी थे और सिलसिले ख्वाजगान के सैय्यद अहमद मसावी के ख़लीफ़ा थे। उनकी विनती पर जलाल के पीर ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि वह जिस प्रकार आत्मिक जिहाद में विजयी हुए हैं उसी भाँति दारुल हर्ब (काफिरों के देश) में भी कुफ्र के विरुद्ध जिहाद में सफल हों। सैय्यद ने अपने प्रतिभाशाली ७०० शिष्यों को शेख़ जलाल के साथ इस मिशन पर भेजा। यह कोई शान्तिपूर्ण धर्म प्रचार नहीं था। युद्ध में मिली लूट से वह ऐश का जीवन बिताते थे। शेख जलाल मार्ग में विजय किये गये क्षेत्रों में इस्लाम के प्रचार के लिये अपने साथियों को छोड़ते जाते थे। जब वह सिलहट पहुँचे तो उनके साथ केवल ३१३ साथी रह गये थे। वहाँ उनका राजा गौढ़ गोविन्द की कई लाख पैदल सेना और कई सहस्र घुड़सवारों की सेना से भयानक युद्ध हुआ और शेख जलाल विजयी हुए। उन्होंने विजित क्षेत्र को अपने साथियों में बाँट दिया, वहाँ की औरतों से विवाह कर लिया और वहीं बस गये। शेख जलाल के बारे में अनेक चमत्कारी कहानियाँ प्रसिद्ध हो गईं जैसे कि वह प्रातःकाल की नमाज़ मक्का में पढ़कर आते हैं। इन चमत्कारी बातों से प्रभावित होकर अनेक हिन्दू और बौद्ध उनके भक्त होकर मुसलमान हो गये।

शेख़ जलाल और उसके तुर्किस्तानी शिष्य मध्य एशिया के ख्वाजगान और

नक्शबन्दिया ऐसे सूफ़ी थे कि वह यदा कदा कुछ वर्ष तलवार लेकर जिहाद करते थे और हिन्दुओं का धर्मान्तरण करते थे। शत्तरिया, कादिरइया और नक्शबन्दिया, सिलसिले के सूफी जिन्होंने १५वीं शताब्दी में भारत में अपनी खानकाहें स्थापित करनी प्रारम्भ कर दी थीं। अपने पूर्वजों द्वारा मध्य एशिया और फारस के इस्लामीकरण के अनुभवों से खूब परिचित थे और उस धर्म परिवर्तन के अनुभव का प्रयोग उन्होंने अपने को हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में ढालकर किया। इन्होंने बंगाल से लेकर मालवे तक अपनी खानकाहें स्थापित कीं। इनके शिष्य वहाँ से पश्चिमी गुजरात तक फैल गये।

सुहरावर्दिया, शेख जलालुद्दीन सिमानी, मीर सैय्यद अली हमदानी और उसके पुत्र मीर मोहम्मद की खानकाओं में जिन अनेक सूफियों को ट्रेनिंग दी जाती थी उनका मुखय ध्येय हिन्दुओं को मुसलमान बनाना था। इनमें से कुछ से हमारी भेंट अगले पत्रों में होगी।

इन सूफियों ने न केवल भारत में हिन्दुओं, बौद्धों और जनजातियों का बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण किया अपितु बंगाल होते हुये दक्षिणी पूर्वी एशिया के हिन्दू और बौद्ध उपनिवेशों जावा सुमात्रा, मलाया इत्यादि में जाकर वहाँ के राजाओं का धर्मान्तरण कर इन देशों को मुस्लिम देश बना दिया।

भारत का वह काल उसके अवनति का काल था। वेदों उपनिषदों के काल का जगद्‌गुरु भारत अपने उस काल के ज्ञान को भुलाकर अन्ध विश्वासों और कुरीतियों का शिकार हो चुका था। हिन्दू समाज में मूर्ति–पूजा, अन्धविश्वास, छुआछूत, जातिवाद जैसे दोष घर कर गये थे। ईश्वर और मोक्ष प्राप्ति के अलग–अलग सहज उपाय बताने वाले लाखों अधिकतर छद्म वेषधारी, साधु, सन्यासी, तान्त्रिक, अघोरी इत्यादि लोगों ने अपने भक्तों के अलग–अलग सम्प्रदाय बना लिये थे। न कोई केन्द्र राज्य शक्ति रह गयी थी और न कोई केन्द्रीय धार्मिक शक्ति की विचारधारा, जैसी कि वेदकालीन भारत में थी। ऐसी दशा में जहाँ महमूद गज़नवी की सुशिक्षित, अनेक युद्धों की अनुभवी लड़ाकू सेना को रोकना कठिन हो गया वहीं सूफ़ियों की चमत्कारी घोषणाओं में अन्धविश्वासी हिन्दुओं ने सहज ही विश्वास कर लिया। जहाँ रोज़ ही नये देवी देव्रता, नई पूजा पद्धति, नई ध्यान विधि, नये गुरु, नये अवतारों और नई संस्कृतियों का आविष्कार हो रहा हो वहाँ एक और नई पूजा पद्धति, ध्यान विधि अथवा संस्कृति को चुपचाप प्रवेश पाना कौन कठिन कार्य था?

बहराइच के शहीद सलार महमूद गाज़ी

उन सूफियों में जो तलवार लेकर भारत के इस्लामीकरण के लिये इस देश में घुसे एक विशेष नाम है शहीद सिपहसालार मसूद गाज़ी का जिनको साधारणतया गाज़ी मियाँ के नाम से जाना जाता है। इनकी मज़ार उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपद बहराइच में है।

यह सुल्तान महमूद गज़नवी की बहिन के पुत्र थे और सोमनाथ के मन्दिर को तुड़वाने के लिये महमूद को इन्होंने प्रेरित किया था। इन्होंने अपने पिता और घुड़सवारों के साथ गज़नी से चलकर पंजाब में प्रवेश किया। मार्ग में लूट के लोभ में अनेक नव

धर्मान्तरित मुसलमान उनके साथ जुड़ते गये। प्रारम्भ से ही हिन्दुओं के सामने उनका एक ही प्रस्ताव था "मृत्यु या इस्लाम"। जिस मार्ग से चलकर यह पंजाब से बहराइच पहुँचे उस मार्ग पर आज सहस्रों मज़ारें उनके उन साथियों और सैनिकों की हैं जो हिन्दुओं से युद्ध करते उस स्थान पर मारे गये। उन सबके नाम के साथ गाज़ी, शहीद, पीर अथवा बाबा आदर सूचक शब्द जोड़ दिये गये। गाज़ी अर्थात काफिर का वध करने वाला। शहीद अर्थात् काफिर के हाथ से धर्मयुद्ध में मारा जाने वाला। पीर अर्थात् चमत्कारिक गुरु। बाबा अर्थात् साधु, फकीर अथवा आदरणीय गुरु। बहुत बाद में अंग्रेजी काल में यह शब्द उन लोगों के नाम के साथ भी जोड़ दिये गये जिन्हें साम्प्रदायिक दंगों अथवा हिन्दुओं के कत्ल के आरोप में अंग्रेजी शासन द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया।

हिन्दुओं को मुसलमान न बनने पर कत्ल करने वाले यह लोग कैसे हिन्दुओं के उपास्य बन गये हैं उसके दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

लखनऊ के खम्मन पीर बाबा

इस प्रकार के अनेक मज़ारों में दो मज़ारें लखनऊ के हिन्दू निवासियों की अभी कुछ २५–३० वर्षों से अत्यन्त श्रद्धा और पूजा की केन्द्र बन गयी हैं। एक है चारबाग के खम्मनपीर बाबा। इनकी मज़ार लखनऊ जंक्शन में रेल की पटरियों के बीच बनी हुई है। पहले इसका कोई नाम भी नहीं जानता था। इधर पिछले २५–३० वर्षों से इसके सहस्रों हिन्दू भक्त बन गये हैं और मुख्यतया उनके दान से प्राप्त सरकारी भूमि घेरकर इसका अपूर्व विस्तार कर लिया गया है। सप्ताह में एक दिन मेला लगता है और लखनऊ जंक्शन का स्वाभाविक कार्य अस्त व्यस्त हो जाता है। अनेक श्रद्धालु रेल की पटरियों को कूदते फांदते मज़ार पर जाते आते हैं। वहाँ पर लगे एक पत्थर के अनुसार (मनोहर कहानियाँ के अनुसार) यह गाज़ी मियां के साथ आये थे और इस स्थान पर युद्ध करते हुए मारे गये।

दिलकुशा लखनऊ के हज़रत शहीद कासिम बाबा

लखनऊ चारबाग में स्थित खम्मन पीर बाबा की मज़ार की तरह दिलकुशा में स्थित हजरत शहीद कासिम बाबा की मजार भी हिन्दुओं के विशेष श्रद्धा की केन्द्र है। मायावती सरकार के मंत्री राजभर अपने रोग से पीछा छुड़ाने के लिये इस दरगाह की शरण में जाते रहे हैं। (दैनिक जागरण लखनऊ ६–९–९५)

खम्मन पीर बाबा की तरह कासिम बाबा भी शहीद सलार मसूद गाज़ी के साथ समस्त भारत निवासियों को तलवार के बल पर मुसलमान बनाने के इरादे से आये थे और उन्हीं की तरह हिन्दुओं से युद्ध करते हुये लखनऊ में मारे गये। इसीलिये उनके नाम के साथ शहीद शब्द मुसलमानों द्वारा जोड़ा गया।

दैनिक जागरण लखनऊ २५–७–९४ के अनुसार दिलकुशा गार्डेन स्थित हज़रत शहीद कासिम बाबा की मज़ार पर चादर चढ़ाकर श्रद्धासुमन अर्पित करने के बाद वहाँ आयोजित समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री वोरा गवर्नर उत्तर प्रदेश ने कहा कि "भारत

में ऋषि मुनियों और सूफ़ी संतों ने मानवता को जो सबसे बड़ा संदेश दिया है वह किसी देश, धर्म, जाति और सम्प्रदाय तक ही सीमित नहीं है। हज़रत शहीद कासिम बाबा ने भी **मानव जाति के उद्धार के लिये धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर प्रेम एकता और मानवता का पैग़ाम दिया।"** उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की कि प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने हज़रत शहीद कासिम बाबा की मज़ार तक सम्पर्क मार्ग निर्मित करा दिया है तथा वहाँ बिजली पानी की भी समुचित व्यवस्था करा दी है।"

उसी समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री मुलायम सिंह यादव ने कहा कि ९०० वर्ष से भी पुरानी इस दरगाह पर सभी धर्मों तथा आस्था के लोग नतमस्तक होते हैं। उन्होंने कहा यह हमारी गंगा जमुनी तहज़ीब का उत्कृष्ट नमूना है। **शहीद बाबा के राष्ट्रीय एकता तथा साम्प्रदायिक सद्भाव तथा आपसी प्रेम और भाई चारे को मज़बूत बनाने के फ़तवे को पूरा किया जा सकेगा।"** दरगाह के आस पास की भूमि सेना के स्वामित्व में थी जिसे हस्तान्तरित कर दरगाह को दे दिया गया।

जिस देश के गवर्नर, मुख्यमंत्री और मंत्री ऐसे मनुष्य को जिसके जीवन का ध्येय ही अंतिम समय तक उनके पूर्वजों को तलवार के बल पर धर्मान्तरित करना रहा हो, जिसने इस्लाम स्वीकार न करने के कारण सहस्त्रों हिन्दुओं का बध कर दिया हो ऐसे धर्मान्ध व्यक्ति को राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव और भाई-चारे का संदेश देने वाला भारत के ऋषि मुनियों जैसा प्रचारित करते हों, वहाँ साधारण अनपढ़ हिन्दू अपने गवर्नर, मुख्यमंत्री और मंत्री की श्रद्धा देखकर ऐसे क्रूर व्यक्ति को अपना मुक्तिदाता समझकर उसकी पूजा करने लगे तो क्या आश्चर्य है? आश्चर्य तो यह है कि यह विशिष्ट लोग सूफ़ियों के लिये बार-बार शहीद शब्द का प्रयोग करते हैं और उसी साँस में उन्हें राष्ट्रीय एकता तथा साम्प्रदायिक सद्भाव और आपसी भाई चारे का संदेश देने वाला भी कहते हैं। क्या वह नहीं जानते कि इन लोगों के संदर्भ में "शहीद" का अर्थ क्या है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी मज़ारों की तरह इन मज़ारों पर भी हिन्दुओं की संख्या ही अधिक आती है। इस्लाम में मज़ार पूजा का निषेध होने के कारण कुछ ही अंधविश्वासी मुसलमान इन पर श्रद्धा सुमन चढ़ाने आते हैं।

चार वर्ष की आयु से सलार मसूद को इस्लाम की शिक्षा दी गयी थी। ५०,००० घुड़सवारों के साथ उसने सिन्धु नदी पार की। उसकी आयु उस समय १७ वर्ष थी। यह सेना जहाँ भी पहुँची तबाही मच गयी। महमूद गज़नवी के दो आक्रमणों ने मुल्तान को पहले ही वीरान कर दिया था। वहाँ के राजा उछ में जाकर बस गये थे। उन्होंने मसूद से कहलवाया कि विदेशी भूमि पर इस प्रकार आक्रमण करने का क्या औचित्य है ? मसूद ने उत्तर दिया: "भूमि अल्लाह की है। वह अपने जिस दास को देना चाहता है देता है। मेरे पूर्वजों का यही विश्वास रहा है कि "काफ़िरों को मुसलमान बनाना कर्त्तव्य है। यदि वह हमारा धर्म स्वीकार कर लें तो ठीक अन्यथा हमें उनका बध कर देना चाहिए।"

इसके पश्चात् मसूद ने हिन्दू राजाओं पर आक्रमण किया और असंख्य हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। बहुत से तुर्क भी मारे गये। वर्षा ऋतु के अन्त तक मसूद मुल्तान में ही पड़ा रहा। उसके बाद वह अवध की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसने अपना "इस्लाम अथवा मृत्यु" का अभियान अगली बरसात के अन्त तक जारी रखा।

वर्षा ऋतु के पश्चात् वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। राजा महिपाल दिल्ली का शासक था। उसकी विशाल सेना से मसूद भयभीत हुआ परन्तु उसी समय गज़नी से नई सेना उसकी सहायता के लिए आ पहुँची। इस युद्ध में भी असंख्य हिन्दू मारे गये। बहुत से तुर्क सरदार भी खेत रहे। महाराज महिपाल भी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। तुर्की सरदार जहाँ मरे वहीं दफन कर दिये गये और कुछ समय उपरान्त मूर्ख हिन्दुओं के उपास्य बन गये। अनेक हिन्दू भय और लोभ से मुसलमान हो गये। धर्मान्तरित हिन्दुओं में से ५००० अथवा ६००० लोगों की नई सेना भर्ती की गयी। इसके बाद मसूद कन्नौज की ओर चल पड़ा। वहाँ के राजा अजय पाल ने जो महमूद द्वारा परास्त किया जा चुका था उसकी काफी आवभगत और सहायता की।

वहाँ मसूद ने गंगा पार की और सतरिख (सीतापुर जनपद) की ओर चल पड़ा। सतरिख हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ था और वहाँ हिन्दुओं की घनी आबादी थी। इसलिए उसने वहाँ डेरा डाला और अपने सरदारों को सेना देकर चारों ओर भेजते समय कहा : "हम तुम्हें अल्लाह के सुपुर्द करते हैं। तुम जहाँ जाओ पहले समझा बुझाकर हिन्दुओं को मुसलमान बनाओ। यदि वह इस्लाम ग्रहण कर लें तो उन पर दया करना अन्यथा उनका बध कर देना।" फिर वह गले मिलकर अपनी-अपनी दिशा में चल दिये।

मुस्लिम इतिहासकार लिखता है "कैसा अद्‌भुत दृश्य है कैसी अद्‌भुत मित्रता? कैसा अद्‌भुत विश्वास है कि केवल सत्यमत (इस्लाम) के प्रचार के लिये बिना किसी भय के इस प्रकार कुफ्र के समुद्र में कूद पड़ना?"

मीर बख्तियार दक्षिण की ओर चल पड़ा और कानपुर तक पहुँच गया। वहाँ वह युद्ध में मारा गया। वहाँ उसकी विख्यात मज़ार है।

मसूद ने अमीर हसन अरब को महोना पर और मीर सैय्यद अज़ीज़ुद्दीन को गोपामऊ पर आक्रमण करने के लिये भेजा। मीर सैय्यद अज़ीज़ुद्दीन अब लाल पीर के नाम से क्षेत्र में मशहूर है। मलिक फ़ज़ल को बनारस पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। मसूद सतरिख में ही ठहरा रहा।

इस समय कर्रा और मानिकपुर के राजाओं के दूतों ने मसूद को उनके देश से शान्तिपूर्वक वापस जाने के लिये अन्यथा युद्ध के लिये तैयार रहने के लिये दूत भेजे। मसूद ने उत्तर दिया : "हम यहाँ मौज मस्ती के लिये नहीं आये हैं। हम यहीं रहेंगे और इस भूमि से कुफ्र और काफिरों को समूल नष्ट कर देंगे।"

सलार मसूद के सिपहसालार सैफुद्दीन ने बहराइच में तुरन्त सहायता माँगी तो मसूद ने उसकी सहायता के लिये सतरिख से बहराइच के लिये प्रस्थान किया।

बहराइच में हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान सूरज कुण्ड होता था। वहाँ सूर्य देवता की एक प्रतिमा थी और देश भर से हिन्दू सूर्य ग्रहण के अवसर पर वहाँ पूजा और कुण्ड में स्नान के लिये आते थे। मसूद को यह देखकर अपार कष्ट होता था। वह बहुधा कहा करता था कि वह कुफ्र के इस गढ़ को ध्वस्त कर देगा।

किन्तु बहराइच में चारों ओर से हिन्दू राजाओं ने अपनी-अपनी सेना के साथ मसूद को घेर लिया। बार-बार युद्ध होता रहा। १५ जून १०३३ को सायंकाल के समय पासी राजा सुहल देव के एक बाण से मसूद का प्राणान्त हो गया। पूरी मुस्लिम सेना नष्ट हो गई। मसूद के आदेश से जितने मुसलमान सैनिक मरते थे वह सूरज कुण्ड में डाल दिये जाते थे। मसूद का विचार था कि उनकी दुर्गन्ध से हिन्दू अपने तीर्थ को भ्रष्ट समझ कर त्याग देंगे। मसूद की मृत्यु के बाद उसे वहीं दफन कर दिया गया जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी। बाद में इस क्षेत्र में मुस्लिम राज्य हो जाने पर उसे सूरज कुण्ड के पास ही दफना दिया गया। (स्रोत : ईलियट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स खण्ड-२ पृ.-५२९-५४७)

शेख जलालुद्दीन तबरीज़ी

यह विख्यात सूफी बंगाल में लखनौती में रहते थे। वहाँ धीरे-धीरे इन्होंने काफी भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद वहाँ अपने शिष्यों को छोड़कर यह देवतल्ला चले गये। वहाँ किसी काफ़िर ने एक बड़ा मन्दिर और कुआँ बनवाया था। इस सूफी सन्त ने उस मन्दिर को तोड़कर वहाँ अपनी खानकाह बना ली और वहाँ के हिन्दू और बौद्ध निवासियों का बड़ी संख्या में धर्मान्तरण किया। यह महाशय भी हिन्दुओं की श्रद्धा के पात्र हैं। उनकी स्मृति में देवतल्ला तबरीज़ाबाद हो गया है।

बंगाल में अपने धर्मान्तरण कार्य के मज़बूती से संगठित हो जाने के बाद यह उत्तर प्रदेश में बदायूँ में आकर जम गये और उसी उत्साह से यहाँ भी धर्मान्तरण करते रहे।

बदायुनी के अनुसार शेख दाऊद नामक सूफी पंजाब और सिन्ध में ५० से लेकर १०० तक हिन्दुओं को प्रतिदिन मुसलमान बनाता था। सम्राट अकबर के आदेशों के बावजूद सूफ़ी लोग धड़ल्ले से हिन्दुओं का धर्मान्तरण कर रहे थे। जौनपुर से लेकर बिहार तक के मुस्लिम बहुल क्षेत्र कादरियों के रशदिया खानकाओं की देन हैं। दीवान अब्दुर्रशीद के वंशजों और शिष्यों ने बंगाल में अनेक खानकाहें स्थापित कीं। शेख नियामतुल्लाह कादिरी और उसके वंशजों और शिष्यों की सम्राट औरंगजेब और उसके भाई शाहज़ादा शाहशुजा ने बराबर सहायता की जिससे बंगाल के उस भाग का इस्लामीकरण हो गया और अन्ततः इस्लामी बांग्ला देश बन गया।

अजमेर के मोइनुद्दीन चिश्ती

भारत के सूफ़ियों में कदाचित इस सूफ़ी की ख्याति सबसे अधिक है। इसको ग़रीब नवाज़-ग़रीबों पर कृपा करने वाला भी कहा जाता है। सम्राट अकबर ने एक पुत्र की लालसा में इस की मज़ार की कई बार श्रद्धापूर्वक यात्रा की थी। स्वाभाविक है कि तब से इनका

ओहदा और भी उंचा हो गया। इस सूफी को महान सन्त, धर्मनिरपेक्षता और भारत की सम्मिश्रित गंगा यमुना संस्कृति की साक्षात मूर्ति कहा जाता है। धर्मनिरपेक्षता की मिसाल बताया जाता है। छोटे लोगों की तो बात ही छोड़ दें हमारे प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भी उसकी मज़ार पर जाकर चादर चढ़ाने, शीश नवाने और मन्नत माँगने पर गर्व करते हैं। लाखों की संख्या में यात्री जिनमें अधिकांश हिन्दू होते हैं प्रतिवर्ष इसकी मज़ार का दर्शन करते हैं और लाखों रुपये दान में देते हैं।

यह कम लोग ही जानते हैं कि इस व्यक्ति ने भारत के इस्लामीकरण में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज अपनी मृत्यु के लगभग ८०० वर्ष पश्चात् भी निभा रहा है जो पी.एन.करीज़ की पुस्तक "द श्राइन एण्ड कल्ट ऑफ मुइनुद्दन चिश्ती ऑफ अजमेर" में उद्धृत है।

जैसे कि कमोवेश प्रत्येक सूफ़ी और मज़ार के करिश्मों की कहानियाँ मशहूर हैं मुइनुद्दीन चिश्ती भी अपने करिश्मों, संतपन और सिद्धियों के लिये विख्यात हैं। यह मौहम्मद साहब के वंशज सैय्यद समझे जाते हैं। इन्होंने सूफी संत में दीक्षा उस्मान हरवानी से ली थी जो सूफ़ियों में एक अत्यन्त महान सूफ़ी जाने जाते हैं। सियर-अल-अकताब नामक पुस्तक के अनुसार उनके भारत में पदार्पण करने से वहाँ इस्लाम की स्थापना हुई। उन्होंने अपने तर्क और विद्वता से भारत में पुरातन काल से चले आ रहे कुफ़्र और शिर्क (हिन्दू धर्म) के अंधेरे को नष्ट कर दिया। इसलिये इनको नबी-अल-हिन्द, हिन्दुस्तान का पैगम्बर भी कहा जाता है। सत्तर वर्ष तक वह निरन्तर भारत भूमि पर नमाज़ पढ़ते रहे। जिस पर भी उनकी दया दृष्टि पड़ी वही तुरन्त अल्लाह का सामीप्य पा गया (मुसलमान हो गया) उनके पास जो कोई भी पापी (हिन्दू) आता था वह तुरन्त अपने पापों की क्षमा माँगने लगता था (अर्थात् मुसलमान हो जाता था) प्रत्येक बार जब वह कुरान का पाठ समाप्त करते थे अदृश्य से एक आवाज़ आती थी। "मुइनुद्दीन तुम्हारा पाठ स्वीकार है!" यद्यपि कहा जाता है कि मुइनुद्दीन सोना बनाना जानते थे परन्तु (इतना तो सत्य है कि) उनकी पाकशाला में प्रतिदिन इतना भोजन बनता था कि नगर के सभी दरिद्र लोग वहाँ भोजन कर लेते थे। पाकशाला का नौकर जब उनके पास धन माँगने जाता था तो वह अपनी नमाज़ की दरी का एक कोना उठा देते थे। वहाँ अपार धनराशि सोने के रूप में पड़ी रहती थी। वह नौकर से कह देते थे जितना चाहे उठा ले जाय।"

"कहा जाता है कि एक बार जब वह पैगम्बर मौहम्मद की मज़ार की तीर्थ यात्रा पर गये तो एक दिन अन्दर से आवाज़ आई "मुइनुद्दीन को भेजो" जब मुइनुद्दीन दरवाज़े पर आकर खड़े हुये तो उन्होंने पैगम्बर को बोलते देखा "मुइनुद्दीन तुम मेरे मज़हब का सार हो किन्तु हिन्दुस्तान जाना है। वहाँ एक स्थान अजमेर है जहाँ मेरा एक वंशज जिहाद के लिये गया था और शहीद हो गया और वह स्थान काफिरों के कब्ज़े में चला गया है। तुम्हारे चरण वहाँ पड़ने से एक बार फिर इस्लाम वहाँ अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा और काफ़िर हिन्दू अल्लाह के क्रोध के भोजन बनेंगे।"

"चुनाचे मुइनुद्दीन अजमेर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा अल्लाह का यश बढ़े क्योंकि मैंने अपने भ्राता की सम्पत्ति पर फिर अधिकार कर लिया है। यद्यपि उस समय वहाँ की झील के चारों ओर बहुत मूर्ति मन्दिर थे, ख़्वाजा ने कहा यदि अल्लाह और पैगम्बर ने चाहा तो मुझे इन मूर्ति मन्दिरों को ध्वस्त करने में देर नहीं लगेगी।"

सियर–अल–अकताब फिर वर्णन करता है कि ख़्वाजा ने किस प्रकार चमत्कारिक तरीकों से उन हिन्दू गुरुओं (ब्राह्मणों) और हिन्दू देवी–देवताओं पर विजय प्राप्त की जो उनके वहाँ रहने का घोर विरोध कर रहे थे।

इन कहानियों में एक के अनुसार उस समय के दिल्ली सम्राट राय पिथौरा (पृथ्वी राज चौहान) का कोई विश्वासघाती सेवक जो अपने स्वामी से किन्हीं कारणों से द्वेष रखता था ख़्वाजा की शरण आया। ख़्वाजा ने राय पिथौरा के पास इस व्यक्ति की सिफारिश भेजी जो राय पिथौरा ने अस्वीकार कर दी। ख़्वाजा ने इस पर क्रुद्ध होकर श्राप दिया "हमने राय पिथौरा को जीवित इस्लामी सेना के हाथों में दे दिया है।"

इन कहानियों के चमत्कारिक भाग को छोड़ दें तो वास्तविकता यही लगती है कि अजमेर में पहले कोई सूफ़ी इस ध्येय से वहाँ आकर बसे थे कि वहाँ के हिन्दुओं का धर्मान्तरण कर उसे मुस्लिम बाहुल्य प्रदेश बनायें। स्थानीय हिन्दुओं ने उसे मार डाला। ख़्वाजा जब हज करने गये तो वहाँ उन्हें यह बात बताई गई। उस धर्मान्तरण कार्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अजमेर आकर बसने का निश्चय किया। उनके वहाँ आने और धर्मान्तरण करने पर फिर वहाँ के धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों इत्यादि ने उनका विरोध किया। किन्तु अपने अथाह धन के बल पर जो कदाचित मुसलमान शासकों द्वारा उनको मिलता था उन्होंने स्थानीय अंधविश्वासी लोगों में अपनी चमत्कारिक शक्तियों का प्रदर्शन कर (जो अनेक साधु और फ़कीर हाथ की सफाई से आज भी कर दिखाते हैं) कुछ को मुसलमान बना लिया। इनमें कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग भी थे जो किन्हीं कारणों से अपने स्वामी दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान से रुष्ट थे और विश्वासघात के लिए तैयार हो गये। इस स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर ख्वाजा ने राय पिथौरा से सीधे–सीधे अनेक आग्रह करने प्रारम्भ किये जो तिरस्कारपूर्वक नामंजूर कर दिये गये। ख़्वाजा ग़ज़नी गये और तत्कालीन सुल्तान शिहाबुद्दीन गौरी को परिस्थितियाँ अनुकूल बताकर भारत पर आक्रमण के लिये आमंत्रित किया।

शिहाबुद्दीन ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किया। किन्तु हर बार पृथ्वीराज ने उसे परास्त कर उसके क्षमा माँगने पर अपनी अहेतु उदारतावश उसे स–सैन्य वापिस जाने दिया। किन्तु पृथ्वी राज का शत्रु तो घर में ही बैठा रहा। दूसरे शत्रु भी बढ़ गये। फलस्वरूप पृथ्वीराज शिहाबुद्दीन के हाथ पराजित होकर बन्दी बना लिया गया।

यथार्थवादी शिहाबुद्दीन ने एक बार भी वह मूर्खतापूर्ण उदारता नहीं दिखाई जो पृथ्वीराज दिखाता रहा था। हाथ में आते ही उसने पृथ्वीराज का बध कर दिया।

सियार–अल–अकताब से मालूम होता है कि इस घटना से पहले ही ख्वाजा

मुइनुद्दीन अजमेर के प्रसिद्ध जोगी अजयपाल को मुसलमान बनाने में सफल हो गया था। इसके पश्चात् उसने अपना डेरा जोगी के विशाल मंदिर में ही जमा लिया। मुइनुद्दीन की दरगाह पर बने बुलन्द दरवाजों में नक्काशी किये जो पत्थर लगे हैं उनको देखने से लगता है कि वह पहले मंदिर के निर्माण में प्रयोग किये गये थे।

ऐसे कट्टर हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के शत्रु ने किस प्रकार वास्तविक ध्येय को छिपाकर अपनी धर्मनिरपेक्षता का भ्रम अन्धविश्वासी हिन्दुओं में उत्पन्न किया होगा इसका नमूना आज भी शेष है। एक ब्राह्मण परिवार चन्दन घिस कर वह लेप दरगाह में भेजता है जो ख्वाजा की मज़ार पर चढ़ाया जाता है। मुसलमानों में चंदन के लेप का प्रयोग किसी धार्मिक कृत्य में नहीं किया जाता। यह चन्दन का लेप वहाँ पर अजयपाल योगी के इष्ट देवता की मूर्ति के लिये भेजा जाता रहा होगा।

सियार-अल-आरिफीन इस 'महान संत' के जीवन कार्य का इस प्रकार जायज़ा लेती है।

उस (मुइनुद्दीन चिश्ती) के हिन्दुस्तान आने से उस देश में इस्लाम का मार्ग प्रशस्त हो गया। उसने (इस्लाम के प्रति) अविश्वास के अंधेरे को नष्ट कर दिया और इस्लाम का प्रकाश (चहुँ ओर) फैला दिया।

अमीर खुर्द की दो चौपाइयों में ख्वाजा के आगमन से पहले और पश्चात् के हिन्दुस्तान का वर्णन इस प्रकार है।

"सम्पूर्ण भारत (इस्लाम) धर्म और (शरियत) कानून से अनभिज्ञ था। किसी को अल्लाह और पैगम्बर का पता न था। किसी ने काबा के दर्शन नहीं किये थे। किसी को अल्लाह की महानता का ज्ञान नहीं था।"

और ख्वाजा के आने के बाद "उसकी तलवार के कारण इस कुफ्र की भूमि में मूर्तियों और मंदिरों के स्थान पर मस्जिद मिम्बर और मेहराब बन गये। जिस भूमि पर मूर्तियों का गुणगान होता था अब नारये तक़वीर (अल्लाहो अकबर) सुनाई देती है" सचमुच ही भारत के इस्लामीकरण में मुइनुद्दीन का महत्व मौहम्मद-बिन-कासिम, महमूद गज़नवी, शिहाबुद्दीन गौरी, खिलज़ी, तुगलक, बाबर, औरंगजेब इत्यादि सुल्तानों से कम नहीं है और यही उसकी महानता है।

बंगाल का इस्लामीकरण

काश्मीर की भाँति बंगाल के इस्लामीकरण में भी सूफ़ियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

१४०० ई. में बंगाल में एक राजा गणेश सिंहासनारूढ़ थे। इस हिन्दू राज्य में मुस्लिम उलेमा और सूफ़ी (हिन्दुओं के धर्मान्तरण और इस्लाम के प्रचार द्वारा) अनेक समस्यायें उत्पन्न कर रहे थे। राजा गणेश को इन सूफ़ियों की राजनीतिक शक्ति का कोई आभास नहीं था। उसने इन लोगों का दमन करने की ठानी।

कुतबुल आलम शेख नूरुल हक नामी सूफी ने सुल्तान इब्राहीम शरकी को पत्र लिखा कि वह आकर बंगाल के मुसलमानों की रक्षा करे। स्पष्ट है कि सूफियों ने वहाँ सुल्तान के पक्ष में काफी कुछ तैयारियाँ कर ली होंगी।

सुल्तान इब्राहीम ने इस पत्र की प्राप्ति पर बंगाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राजा गणेश ने इस अनपेक्षित युद्ध में अपनी स्थिति कमज़ोर समझ कर उसी शेख़ नूरुल हक से जिससे वह पीछा छुड़ाना चाहता था सहायता की अपील की। शेख़ ने कहा कि वह उसकी सहायता तभी कर सकता है जब वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। राजा तो तैयार हो गया परन्तु रानी के विरोध के कारण समझौता इस बात पर हुआ कि राजा सिंहासन अपने पुत्र जदु को सौंप दे और पुत्र इस्लाम स्वीकार कर ले। तद्नुसार जदु (जलालुद्दीन मौहम्मद बनकर) सिंहासन पर बैठा और सुल्तान इब्राहीम ने अपनी सेनायें वापस बुला लीं। इस एक घटना से ही सूफ़ियों की शक्ति और भारत के इस्लामीकरण के पुण्य कार्य में तत्कालीन मुस्लिम सुल्तानों से उनके तालमेल का ज्ञान हो जाता है।

जलालुद्दीन मौहम्मद को तो शेखों और सूफ़ियों के हाथ कठपुतली की तरह रहना ही था। उसने १४१४–१४३१ के अपने १७ वर्ष के शासन में अपनी हिन्दू प्रजा का बड़े पैमाने पर बलात धर्म परिवर्तन किया। और बंगाल को मुसलमान बनाने में अपनी पूरी राज्य शक्ति लगा दी।

जो राजा इस्लाम ग्रहण कर लेते थे वह दूसरे हिन्दुओं के धर्मान्तरण में बहुत रुचि लेते थे। इसका कारण यह था कि हिन्दू प्रजा धर्मान्तरित राजा को बहुत घृणा की दृष्टि से देखती थी। राजा को विद्रोह और षडयंत्र का सदैव भय बना रहता था। बंगाल के इस्लामीकरण में इस प्रकार के धर्मान्तरित राजाओं का बड़ा योगदान है। सुल्तान जलालुद्दीन (जदु), काला पहाड़, मुर्शिद अली खाँ, पीर अली और मौहम्मद मुसलमान होने से पहले ब्राह्मण थे। इसी प्रकार परसेनी के मुस्लिम राजा, राजा पुदित सिंह के वंशज है। चिटगाँव के असद खाँ, श्याम राय चौधरी के वंशज हैं। तिप्परा के परगना सरायन, मेमन सिंह के हैबत नगरी और जंगम वाड़ी के दीवान परिवारों और दरभंगा के मफौली के पठान परिवारों के पूर्वज हिन्दू थे। इन लोगों ने भयानक रूप से हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया।

डॉ. वाइज जलालुद्दीन सुल्तान के विषय में लिखते हैं। "एक ही शर्त थी" "कुरान अथवा मृत्यु"। बहुत से हिन्दू कामरूप और आसाम के जंगलों में भाग गये।

उस समय इस्लाम से बचने का यही एक मार्ग था। घर बार छोड़कर जंगलों में जाकर रहने लगना। किन्तु क्या इससे वह सदैव भय मुक्त हो जाते थे? मुसलमान सुल्तान जंगलों में भी उनका पीछा नहीं छोड़ते थे। जिस प्रकार जंगली पशुओं के शिकार में हाँका दिया जाता है उसी प्रकार जंगल के एक भाग पर सैनिक चारों ओर से घेरा डाल देते थे फिर वह घेरा धीरे–धीरे छोटा होता जाता था। उसमें जो भी स्त्री पुरुष बच्चे पकड़े जाते थे। वह गुलाम बना लिये जाते थे। यदि विदेश में बेचने के लिये न भेजे गये तो अपने ही देश में निम्न कोटि भंगी इत्यादि का काम करने को मजबूर किये जाते थे। इस्लाम ग्रहण तो उनको

करना ही पड़ता था। इस प्रथा को कमरघा कहा जाता है।

डॉ. वाइज़ आगे लिखते हैं "यह सम्भव है कि इस जलालुद्दीन सुल्तान ने अपने चौदह वर्ष के शासनकाल में जितने बंगाली हिन्दुओं को मुसलमान बना दिया उतने अगले ३०० वर्ष में भी नहीं बने।" बारबोसा लिखता है कि १६वीं शताब्दी के बंगाल में मुसलमान होना इतना लाभदायक था कि शासकों के कृपा पात्र बनने के लिये बड़ी संख्या में हिन्दू प्रतिदिन मुसलमान हो रहे थे।

स्पष्ट है कि यदि गणेश जैसा दृढ़ प्रतिज्ञ हिन्दू राजा सूफ़ियों का सामना करने में असमर्थ रहा तो छोटे-छोटे राजा और ज़मींदार उनकी कारगुजारियों को कैसे रोक सकते थे। फलस्वरूप भारत वर्ष एक विशाल शिकारगाह बन गया था। जहाँ शासक हथियार लेकर और सूफ़ी उनकी सहायता के लिये धार्मिक आवरण में चमत्कारों के नाम पर संगठित होकर हिन्दुओं का शिकार करने को उतर पड़े थे।

छोटे-छोटे राजा और ज़मींदार यदि सुल्तान को खिराज देने में असमर्थ होते थे तो उन्हें सपरिवार मुसलमान हो जाना पड़ता था। छोटे-छोटे किसान जिज़िया देने में असमर्थ होने के कारण सपरिवार गुलाम बना लिये जाते थे। यह प्रथा बंगाल में ही नहीं पूरे भारत में प्रचलित थी क्योंकि गुजरात से बंगाल तक इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। मुस्लिम सुल्तानों और बादशाहों के यहाँ गुलामों के अतिरिक्त हिजड़ों की भी बहुत अधिक माँग थी। उनका शाही हरम में भिन्न-भिन्न पदों पर कार्य करने के लिये उपयोग किया जाता था। स्वयं सुल्तान की सुरक्षा के लिये हिजड़ों की एक सेना तैयार की जाती थी। बहुत कम उम्र के बच्चों को बधिया कर दिया जाता था। धीरे-धीरे उन्हें अपने परिवार जन भूल जाते थे। फिर उनको सैनिक शिक्षा दी जाती थी। घुड़सवारी सिखाई जाती थी और उनका मुख्य कर्तव्य सुल्तान की रक्षा करना होता था। इस प्रकार हिंजड़ों को बंगाल से सहस्त्रों की संख्या में प्रतिवर्ष दूसरे सुल्तानों को बेंचा जाता था। सहस्त्रों दास भी यहाँ से बाहर भेजे जाते थे।

प्रचलित विश्वास के विपरीत कि यह सूफ़ी हिन्दुओं के प्रति दयालु होते थे यह भी सुल्तानों की तरह उन हिन्दुओं के प्रति जो धर्म परिवर्तन को तैयार नहीं होते थे अति क्रूर होते थे। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

शेख अब्दुल कुद्दुस गंगोही (सहारनपुर उ.प्र.) चिश्तिया सिलसिले के सूफी थे। यह सिलसिला दूसरे सिलसिलों की अपेक्षा अधिक उदार समझा जाता है। इस सूफी ने सुल्तान सिकन्दर लोदी, बाबर और हुमायूँ को अनेक पत्र लिखे। उसका आग्रह था कि शरियत (कानून) को सख्ती से लागू किया जाये और हिन्दुओं को भूमि टैक्स और अपमानजनक जिजिया टैक्स देने पर मजबूर कर दिया जाय। बाबर को लिखे गये पत्र में उसने आग्रह किया : "उलमा और सूफ़ियों को अधिक से अधिक संरक्षण और सहायता दी जाय।...किसी भी गैर मुस्लिम को अधिकारी न बनाया जाय....शरियत नियमों के अनुसार उन पर सब प्रकार के अपमान तिरस्कार लादे जायें।" वास्तव में मुस्लिमकाल में हिन्दुओं को इस्लाम में लाने के लिए जो अत्याचार और अन्यायपूर्ण तरीके अपनाये गये

उनकी फ़ेहरिस्त अंतहीन है।

१६वीं और १८वीं शताब्दी के बीच मुस्लिम शासकों और सूफ़ियों के संगठित प्रयास द्वारा हिन्दुओं का बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण किया गया। सूफ़ी लोग इस कार्य से सम्बन्धित फारस, ईराक और मध्य एशिया का अपना अनुभव साथ लेकर आये थे। भारतवर्ष में आज भी इन मृत और जीवित सूफियों द्वारा अनेक धर्म परिवर्तन हो रहे हैं।

काश्मीर का इस्लामीकरण

दैनिक समाचार पत्रों में काश्मीर में चरार–ए–शरीफ नामक नन्द ऋषि नूरुद्दीन की दरगाह को आतंकवादियों द्वारा जला दिये जाने पर अनेक समाचार और लेख छपे। १०–११ मई १९९५ की रात काश्मीर में चरार–ए–शरीफ दरगाह जल कर खाक हो गई। फलस्वरूप देश विदेश में विख्यात हो गई। इस घटना के पहले गिने–चुने लोगों ने ही इसका नाम सुना होगा। भारतीय प्रेस ने अपनी आदत के अनुसार उसे "सूफी संत नूरुद्दीन नूरानी की पवित्र दरगाह" (इण्डिया टुडे) "सिम्बल ऑफ सैक्युलरिज्म" "ए मोस्ट वैल्युबिल सिम्बल ऑफ कल्चरल आइडेन्टिटी" (फ्रन्टलाइन) "एबोड ऑफ रिशीज" (द एकोनामिक टाइम्स) इत्यादि न जाने क्या–क्या कह कर गौरव मण्डित किया।

"चरार–ए–शरीफ गये सर्वदलीय संसदीय प्रतिनिधि मण्डल की तरफ से जारी एक विज्ञप्ति में **कम्युनिस्ट नेता इन्द्रजीत गुप्ता ने वहाँ पहुँच कर उस "महान सूफी संत" को अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित की जो "साम्प्रदायिक एकता के प्रतीक" रहे थे। (नवजीवन लखनऊ)** हे भगवान कैसी घोर अनभिज्ञता? और वह भी देश के गौरव के प्रतीक संसद के सदस्यों में।

कुछ ही लोगों को कदाचित् यह ज्ञात होगा कि यह नूरुद्दीन कौन थे? यह कौन सी सांस्कृतिक परम्परा की पहचान थे। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में काश्मीर में फैले रक्तरंजित आतंकवाद में इन संत ऋषि और उनके अन्य सहयोगी सूफी सन्तों की क्या महत्वपूर्ण भूमिका रही है? बात अजीब सी लगती है परन्तु सत्य यह है कि यदि इन तथाकथित संतों, ऋषियों, सूफ़ियों का काश्मीर में पदार्पण न हुआ होता अथवा वहाँ के शासकों ने इन्हें संत और ऋषि समझ कर आश्रय न दिया होता तो आज काश्मीर विश्व का सर्वश्रेष्ठ, धर्मनिरपेक्ष, शान्तिप्रिय देश हुआ होता। पृथ्वी पर साक्षात स्वर्ग।

"अरेबिया में इस्लाम के जन्म के साथ ही उसका दक्षिण भारत में प्रवेश मुसलमान अरब व्यापारियों के रूप में हो गया था। उत्तरी भारत में ईराक, ईरान, मध्य एशिया और अफगानिस्तान से इस्लाम के भय से भाग कर आये हुए यहूदी, पारसी, बौद्ध और नव–मुस्लिम भी शरणार्थियों के रूप में भारत के काश्मीर इत्यादि भागों में बस गये थे।

गैर मुसलमानों का धर्मान्तरण करना सदैव मुसलमानों का प्रथम धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता रहा है। उनमें भी मूर्ति पूजक और बहुदेवतावादी विशेष रूप से घृणित समझे जाते हैं। सत्यमत इस्लाम में उनका प्रवेश कराना प्रत्येक मुसलमान के लिये सर्वोत्तम पुण्य

कार्य समझा जाता है। वास्तव में इस्लाम के जन्म का केन्द्र बिन्दु कारण ही विश्व को मूर्ति पूजा, बहुदेवता वाद और मानव कृत कानूनों से पीछा छुड़ाकर ईश्वर कृत शरीयत कानून के अन्तर्गत लाना है। इसलिये मूर्तिपूजक हिन्दुओं और बौद्धों का धर्म परिवर्तन करना भारत आने वाले मुसलमानों का मुख्य ध्येय रहा है। कुछ आधुनिक तथाकथित धर्मनिरपेक्ष विद्वानों द्वारा यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि भारत पर आक्रमण करने वाले अनेक सुल्तानों का ध्येय लूटपाट था। ऐसा करना उन मुसलमानों के प्रति और उनके राज्य में लिखी गयी आत्मकथाओं, और मुस्लिम इतिहासकारों के इतिहास ग्रन्थों के प्रति भीषण अन्याय है क्योंकि ऐसा प्रचार करना झूठ है। बेशक उन्होंने लूटपाट भी की। लोगों को गुलाम भी बनाया। स्त्रियों को बलपूर्वक अपने हरम में भी दाखिल किया– किन्तु यह सब तो काफ़िरों से धार्मिक युद्ध के मधुर पारितोषिक थे और अनिवार्य परिणाम भी। वास्तविक ध्येय तो भारत और उसके निवासियों का इस्लामीकरण ही था।

"जाफर मक्की द्वारा ११–१२–१४८९ ई. के एक पत्र के अनुसार हिन्दुओं के इस्लाम में धर्मान्तरण के मुख्य साधन थे : मृत्यु–भय, पूरे परिवार की गुलामी का भय, आर्थिक प्रोत्साहन, प्रलोभन (पुरस्कार, पेन्शन, युद्ध, लूट), हिन्दुओं में व्याप्त अंधविश्वासों की कट्टरता तथा मिशनरियों द्वारा उन्हें फुसलाया जाना," मौहम्मद–बिन–कासिम से लेकर अन्तिम मुस्लिम शासक तक भारत में बिना अपवाद सभी मुस्लिम सुल्तानों और बादशाहों ने उपरोक्त तरीकों का हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिये सुविधानुसार उपयोग किया।

अकबर जैसा उदार सम्राट भी स्वीकार करता है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में उसने धर्म परिवर्तन के लिये बल प्रयोग किया। किन्तु मार्च १५६२ में उसने परिवारों को गुलाम बनाने की प्रथा को अन्तिम रूप से समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् तीर्थ यात्रा टैक्स और जज़िया टैक्स भी समाप्त कर दिया जो हिन्दू मुसलमान हो गये थे उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में वापस जाने की अनुमति मिल गयी। इससे पहले ऐसा करने पर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। किन्तु धर्म से पतित लोगों को वापस लेने में हिन्दू समाज की अक्षमता के कारण इसका कोई महत्वपूर्ण फल नहीं निकला।

१६१२ ई. में जहाँगीर ने अनिच्छुक हिन्दुओं के इस्लामीकरण पर रोक लगा दी। किन्तु धीरे–धीरे उस पर मौलाना, मौलवियों का प्रभाव (जो अकबर के शासनकाल में अप्रभावी हो गये थे) बढ़ता गया। फलस्वरूप कांगड़ा विजय के उल्लास में उसने वहाँ के मुख्य मंदिर में गौवध करवाकर अपना विजय उत्सव मनाया।

शाहजहाँ ने लोभ और भय द्वारा हिन्दुओं के धर्मान्तरण को फिर से प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया था। युद्ध में पराजित लोगों का बलपूर्वक धर्मान्तरण तथा उनके परिवारों को गुलामी की जंजीरों में बाँध देना फिर प्रारम्भ हो गया। बुन्देला महाराज जुझार देव की पराजय के बाद शाहजहाँ ने उनके अवयस्क बच्चों का बलपूर्वक धर्मान्तरण किया तथा वयस्क सदस्यों को धर्म परिवर्तन से इन्कार करने पर बध करवा दिया। रानियों को हरम

में दासी अथवा व्यभिचार के लिये दाखिल कर दिया गया।

औरंगजेब ने तो अकबर द्वारा हिन्दुओं के पक्ष में उदार आदेशों को एकदम निरस्त कर दिया। तीर्थ यात्रा टैक्स और जज़िया कर फिर से लागू कर दिये गये। मन्दिरों और पाठशालाओं को ध्वस्त करने के लिये एक अलग विभाग ही बना दिया गया। प्रत्येक प्रान्त में इस कार्य में कितनी प्रगति हुई इस पर रिपोर्ट माँगी जाने लगी। होली और दीपावली जैसे त्यौहार प्रतिबन्धित कर दिये गये। हिन्दू व्यवसाइयों पर भारी टैक्स लाद दिया गया। सरकारी नौकरियों में हिन्दुओं का प्रवेश वर्जित कर दिया गया। इस्लाम ग्रहण करने वालों को विशेष सुविधायें दी गयीं। कैदियों को सज़ा माफ़ी का लोभ दिया गया।

यद्यपि इस लोभ, प्रोत्साहन और ज़बरदस्ती, मृत्यु भय, आर्थिक दबाव और गुलामी के भय से सहस्रों हिन्दू इस्लाम ग्रहण कर रहे थे परन्तु फिर भी भारत की विशाल जनसंख्या को और हिन्दुओं में धर्मान्तरण के विरोध को देखते हुए उसकी गति अति धीमी थी। इस कमी को पूरा करने तथा अफगानिस्तान, ईरान इत्यादि देशों की तरह भारत के सम्पूर्ण इस्लामीकरण के ध्येय की प्राप्ति के लिये सूफ़ियों ने बीड़ा उठाया।

वैसे तो धर्मान्तरण के कार्य में लगे सूफ़ियों की सूची बनाना असम्भव सा है क्योकि उनकी संख्या अनगिनत है। किन्तु सूफ़ियों में कुछ जाने माने नाम हैं जिनकी परम्परायें विख्यात हैं और जिनके शिष्यों की संख्या सहस्रों में है। इनमें से कुछ नाम हैं ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (अज़मेर), शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी, शेख जलालुद्दीन तब्रीज़ी मख़्दूम जहाँनियाँ, उसके भाई राजू कत्ताल, शेख अलाउद्दौला सिरानानी और मीर सैय्यद अली हमदानी, ऋषि नूरुद्दीन, ख्वाजा कुतुबद्दीन बख्तियार काकी, बाबा फरीद, शेख अब्दुल काजी जिलानी, शेख अबू अली कलन्दर, शेख निजामुद्दीन औलिया (दिल्ली), शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोही (सहारनपुर)। इनके शिष्यों की सहस्रों दरगाहें और मज़ारें सम्पूर्ण भारत में बिखरी पड़ी हैं।

इन सूफियों के अतिरिक्त गाँव-गाँव, कस्बों-कस्बों और शहरों के आस-पास लाखों मजारें तथाकथित बाबा या पीर लोगों की हैं जिनमें से अधिकांश के साथ गाज़ी अथवा शहीद शब्द जुड़ा है। यह लोग कोई सूफ़ी नहीं थे। न यह पढ़े-लिखे विद्वान थे। यह तो उस मुस्लिम सेना के साधारण सैनिक अथवा छोटे बड़े कमाण्डर थे जो भारत के इस्लामीकरण के लिये उन क्षेत्रों में आई थीं और उस स्थान पर युद्ध में हिन्दुओं द्वारा मार डाले गये थे। बाद में उनके धर्मानुयाइयों द्वारा उनकी कब्र को मज़ार का रूप दे दिया गया। चमत्कार, कष्ट निवारण करने के किस्से प्रचारित कर दिये गये। अंध विश्वासी, मूर्ति पूजक हिन्दू अपने पत्थर के देवी-देवताओं से निराश होकर उनकी पूजा में जुट गये।

यह सूफ़ी सन्त धर्मान्तरण के जुनून में इतने सराबोर थे कि समय-समय पर तलवारें उठाकर काफ़िरों के विरुद्ध युद्ध में भी उतर आते थे। सिलहट के शेख जलाल और उनके तुर्किस्तानी शिष्य मध्य एशिया से आये ख्वाजगान नक्शबन्दी इस परम्परा के कुछ उदाहरण हैं। इन लोगों को अपने पूर्वज सूफ़ियों द्वारा ईरान तथा मध्य एशिया के काफ़िरों

के सामूहिक धर्मान्तरण का अनुभव था, जिसका उपयोग वह भारत में हिन्दुओं के धर्मान्तरण पर सफलतापूर्वक करना चाहते थे। मध्य एशिया के एक दूसरे सूफ़ी शत्तरिया शेख अब्दुल्ला सैनिक वेशभूषा में अपने अनुयाइयों के साथ बंगाल में घुसे और बंगाल से लेकर मालवा तक और फिर गुजरात तक उन्होंने खानकाहें स्थापित कीं जो धर्मान्तरण का केन्द्र बन गयीं। हिन्दुओं का धर्मान्तरण ही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था।

हिन्दुओं पर प्रभाव डालने के लिये यह लोग न केवल हिन्दू सन्यासियों और योगियों जैसी वेषभूषा अपना लेते थे अपितु जंगलों में जाकर हिन्दू सन्तों की तरह योग साधना और तपस्या का भी ढोंग करते थे। प्राणायाम और हठयोग की क्रियाओं की भी साधना इसी उद्देश्य से की जाती थी। जब लोग इनकी तपस्या और साधना से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट होने लगते थे तो यह अपने जादुई चमत्कारों के ढोंग द्वारा उन पर रौब जमा लेते थे। उन्हें विश्वास दिला देते थे कि उनका परमात्मा से सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे-जैसे उनकी चमत्कारी शक्तियों की चर्चा जनता में फैलती जाती थीं वैसे-वैसे ही उनके भोले-भाले अंधविश्वासी हिन्दू भक्तों की संख्या बढ़ती जाती थी।

उदाहरण के तौर पर दिल्ली के विख्यात सूफी निज़ामुद्दीन औलिया के विषय में मशहूर चर्चा थी कि रात को उनके पास पंखदार ऊंट आता है जिस पर बैठ कर वह प्रतिदिन काबा जाकर नमाज़ पढ़ते हैं और प्रातःकाल से पूर्व ही वापस आ जाते हैं। निःसन्देह इस प्रकार के असम्भव चमत्कारों में हिन्दुओं के सहज विश्वास का कारण यह था कि इस्लाम के आगमन से पहले भारत के हिन्दू शासकों ने अपनी प्रजा को शिक्षित करने में घोर उपेक्षा की थी। शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था। उस एकाधिकार का उपयोग उन्होंने अनेक अंध विश्वास फैला कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए किया था। स्पष्ट है कि समाज को शिक्षित और सुसंस्कृत करना उनके हित में नहीं था। सुशिक्षा और विज्ञान अंधविश्वास के शत्रु हैं।

आरम्भ में सूफ़ी लोग अपने भक्तों को ओ३म् अथवा राम के स्थान पर अल्लाह का नाम जपने को और मौहम्मद की शरण माँगने की विनती करने को कहते थे। साथ ही साथ उन्हें यह सहेज भी देते थे कि यह सब गुप्त रूप से करें क्योंकि विद्रोह का भय सदैव बना रहता था। जब काफ़ी भक्त अल्लाह और मौहम्मद के अनुयायी हो जाते थे तो शेष हिन्दू स्वयं ही उनसे भयभीत होने लगते थे।

सूफ़ी अपना तालमेल मुसलमान ज़मींदारों और शासन के दूसरे अधिकारियों से बनाये रखते थे। इसलिये शासन से न्याय पाने के लोभ में अनेक लोग उनके कृपा पात्र बनने के लिये इस्लाम ग्रहण कर लेते थे। गाँव के हिन्दू ज़मीदारों को मुसलमान बनाना विशेष लक्ष्य रहता था क्योंकि उन लोगों के धर्म परिवर्तन से सारी जाति अथवा गाँव धर्म परिवर्तन कर लेता था।

सूफ़ियों की धर्म परिवर्तन की लगन का पूरा अन्दाजा लगाने के लिये उनका सम्पूर्ण इतिहास पढ़ना आवश्यक है। कुछ उदाहरण ऊपर द्रिये गये हैं। एक और उदाहरण रुदौली

के शेख अहमद अब्दुल हक के वंशज शेख अब्दुल रहमान चिश्ती का है। इन्होंने संस्कृत में अपूर्व विद्वता प्राप्त की थी। उसका उपयोग उन्होंने भगवद् गीता के अर्थों को इस्लामी दर्शन के रंग में रंग कर उसका प्रचार करने में किया। इन्होंने मिशतुल-मखलूकात नामक पुस्तक भी लिखी जिसमें योग वशिष्ठ की विश्वोत्पत्ति को मुस्लिम विश्वास का रंग दिया।

काश्मीर के इस्लामीकरण में जहाँ एक ओर सिकन्दर बुत शिकन जैसे खूंखार सुल्तानों की भूमिका है वहीं दूसरी ओर सूफ़ियों का जमघट है जिन्होंने विविध प्रकार से सन्तों, योगियों, महात्माओं के छद्म रूप में अपने शिष्यों और अनुयाइयों का धर्म परिवर्तन कर ब्राह्मण काश्मीर को मुस्लिम काश्मीर बना दिया।

सिकन्दर बुत शिकन (१३८९-१४३१) के विषय में राजतरंगिणी बताती है कि "सुल्तान अपने तमाम राजसी कर्त्तव्यों को भुलाकर दिन रात मूर्तियाँ तोड़ने का आनन्द उठाता रहता था। उसने मार्तण्ड, विष्णु, ईशन चक्रवर्ती और त्रिपुरेश्वर की मूर्तियाँ तोड़ डालीं। कोई भी वन, ग्राम, नगर अथवा महानगर ऐसा न था जहाँ तुरुष्क और उसके मंत्री सुहा ने देव मंदिर तोड़ने से छोड़ दिये हों।"

हिन्दुओं के लिये एक ही विकल्प था : इस्लाम अथवा मृत्यु। कुछ काश्मीरी ब्राह्मणों ने पहाड़ से कूद कर, आग में जलकर अथवा दूसरी प्रकार आत्महत्या कर ली। कुछ किसी प्रकार शासन द्वारा डाले गये घेरे को चकमा देकर देश से भागने में सफल हो गये। बहुतों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। बहुत से तकियों अर्थात् दरगाहों में रहने लगे जिसका अर्थ था कि वह केवल दिखाने के लिए मुसलमान हो गये। कहा जाता है कि सिकन्दर बुत शिकन के अत्याचारों के फलस्वरूप काश्मीर में कुल ११ ब्राह्मण परिवार शेष रह गये। उसके सम कालीन जम्मू के हिन्दू राजा को तैमूर ने धौंस और भय द्वारा मुसलमान बना लिया।

किन्तु हिन्दुओं के अस्तित्व को मिटाने के लिये यह सूफी सन्त सिकन्दर बुत शिकन से कहीं अधिक प्रभावशाली और खतरनाक थे। सिकन्दर बुत शिकन के अत्याचार दृष्टव्य थे। उसकी शिकार काश्मीर के ब्राह्मणों की पंचतत्व से निर्मित देह थी। सूफ़ी वह मीठे विष थे जिनको हिन्दू स्वयंमेव अमृत समझ कर पीता था किन्तु जिसका फल वही होता था जो सिकन्दर बुत शिकन को इष्ट था- इस्लाम में धर्मान्तरण। सिकन्दर बुत शिकन के डर से लोग भागते थे। पहाड़ से कूदकर आत्महत्या कर लेते थे कि कहीं वह उनका धर्म नष्ट न कर दें। सूफ़ियों की ओर वह उसी प्रकार खिंचे चले आते थे जैसे दीपक की ओर पंतगे स्वयं खिचें चले आते हैं और खुशी से इस्लाम में प्रविष्ट हो जाते थे।

ब्राह्मण बाहुल्य काश्मीर के इस्लामीकरण में जिन सूफियों का विशेष योगदान रहा उनमें से एक शीर्षस्थ सूफी सन्त थे शेख नूरुद्दीन जिनकी दरगाह चरार-ए-शरीफ मुस्लिम आतंकवादियों द्वारा जलाये जाने पर विश्व भर में चर्चा का विषय बन गयी है इनका जन्म ९ अप्रैल १३७० ई. को हुआ बताया जाता है।

शेख नुरुद्दीन की सूफी मत में दीक्षा सैय्यद अली हमदानी द्वारा की गई अथवा उनके

किसी ख़लीफ़ा द्वारा इस पर कुछ मतभेद हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह सैय्यद अली हमदानी की परम्परा में ही पले। इसलिये शेख़ नूरुद्दीन के व्यक्तित्व का वास्तविक परिचय पाने के लिये उनके पीर सैय्यद अली हमदानी के चरित्र को जानना आवश्यक है।

१०८९-११११ में महाराज हर्ष के राज्य काल से ही अनेक किराये के मुस्लिम सैनिक और मुस्लिम व्यापारी काश्मीर में आकर बस गये थे। इसी प्रकार के सैनिकों में एक शाह मीर था जो १३१३ ई. में वहाँ पहुँचा। १३२० ई. के लगभग मंगोल सरदार जुलकद्र खाँ ने काश्मीर पर आक्रमण कर वहाँ बड़ी तबाही मचायी। लुटे-पिटे काश्मीर पर लद्दाख के एक बौद्ध रिनछाना ने वहाँ के हिन्दू राजा को हटाकर अपनी सत्ता स्थापित कर ली किन्तु काश्मीर की ब्राह्मण प्रजा उसके विरुद्ध लगातार विद्रोहरत रहती थी। जैसा कि सदैव होता आया है वह बौद्धों के शासन में रहने से गैर बौद्धों के शासन में रहना उत्तम समझते थे। शाहमीर के समझाने पर इस स्थिति से निपटने के लिये रिनछाना ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। रिनछाना ने शाहमीर को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। मध्य एशिया और ईरान मुस्लिम हो चुका था। रिनछाना का धर्म परिवर्तन करने वाले सूफ़ी का नाम था सैय्यद शरफ़ुद्दीन सुहरावर्दी जो तुर्किस्तान के शेख शिहाबुद्दीन का शिष्य था। रिनछाना का मुस्लिम नाम था सदरुद्दीन। शेख़ को काश्मीर में बुलबुल शाह के नाम से जाना जाता है। रिनछाना ने धर्म परिवर्तन के बाद इन सूफियों को काफ़ी ज़मीनें दीं, जिन पर उन्होंने खानकाह स्थापित किये ओर हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन को नयी शक्ति मिली।

काफ़ी राजनीतिक उथल-पुथल के बाद शाहमीर १३३९ ई. में काश्मीर की गद्दी पर बैठा। गद्दी प्राप्त करने के लिये ब्राह्मणों का सहयोग आवश्यक था। उस सहयोग को प्राप्त करने के लिए उसने अपनी पुत्रियाँ ब्राह्मण सरदारों को व्याह दीं। इससे ब्राह्मणों का विरोध भी समाप्त हो गया और अन्ततः वह भी मुसलमान हो गये, क्योंकि मुसलमान लड़कियों से विवाह करने वाले पारम्परिक हिन्दू समाज में नहीं रह सकते थे।

१४२०-७० के ज़माने में भी काश्मीर के सैय्यद मख्दूम जहांनियाँ के शिष्यों द्वारा सुहरावर्दी सूफियों को बहुत बढ़ावा मिला। इसी समय में किरमान के सैय्यद अहमद काश्मीर में आकर बसे। मख्दूम जहांनियाँ की परम्परा के एक सूफी सैय्यद जमालुद्दीन ने काश्मीर में आकर धर्मान्तरण किये। वह केवल ६ महीने काश्मीर में रहे और फिर अपने योग्य शिष्य शेख हमज़ा पर कार्य भार छोड़कर दिल्ली चले गये।

किन्तु चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में काश्मीर में मीर सैय्यद अली हमदानी ने जो परम्परा काश्मीर में डाली उसने काश्मीर का नक्शा ही बदल दिया। भारत में आने से पहले इन्होंने अपने एक अनुयाई सैय्यद ताजुद्दीन को काश्मीर भेजा। सय्यद ताजुद्दीन को काश्मीर के उस समय के सुल्तान शिहाबुद्दीन (१३४५-७३) द्वारा खानकाह बनाने के लिये भूमि और धन इत्यादि अनेक सुविधायें दी गयीं। श्रीनगर के उत्तर पश्चिम दिशा में वहाँ से ९ मील के फासले पर शिहाबुद्दीन पुरा में इस खानकाह की नींव पड़ी।

अपने शिष्य से काश्मीर की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति की रिपोर्ट प्राप्त

होने पर सैय्यद अली हमदानी भी अपने ७०० शिष्यों के साथ १३८१ ई. में काश्मीर में आकर बस गये। उस समय सुल्तान कुतबुद्दीन का शासन था।

सैय्यद अली हमदानी, अलाउद्दौला सिमनानी के मिशनरी उत्साह से जो उसके पीर शेख शरफुद्दीन के पीर थे, भयानक रूप से प्रभावित था। उसके और उसके शिष्यों के इस असीम उत्साह की परिणति मंदिर ध्वस्त करने और काश्मीरी हिन्दुओं का बलात् धर्म परिवर्तन करने में हुई।

काश्मीर पहुँचने पर उन्होंने श्रीनगर के काली मन्दिर के ब्राह्मण पुजारी का पहला धर्मान्तरण किया। हमदानी की प्रेरणा से सुल्तान द्वारा काली मन्दिर को तोड़कर वहाँ हमदानी का खानकाह स्थापित किया गया। हमदानी ने काश्मीर का विस्तृत दौरा किया और लगभग बीस ईरानी सूफियों को जिन्हें वह अपने साथ लाया था विभिन्न स्थानों पर स्थापित किया। इन सभी ने इन स्थानों पर खानकाह और लंगर (मुफ्त भोजनालय) बनाये जिन्हें मुस्लिम शासन ने सब प्रकार की सहायता दी। हमदानी के अनेक काश्मीरी शिष्यों ने अपनी-अपनी खानकाहें बनायीं और पूरे काश्मीर को इन धर्मान्तरण केन्द्रों से पाट दिया। यह सूफी लोग जहाँ अपने चमत्कार (बाजीगरी) से अंधविश्वासी भोले-भाले हिन्दू और बौद्ध काश्मीरियों का धर्मान्तरण करते थे, वहीं शासन की छिपी अथवा खुली सहायता द्वारा मन्दिरों को ध्वस्त कर उन पर खानकाह और मस्जिदें निर्माण करना उनका मुख्य कार्य था और इस कार्य में वह अत्यन्त रुचि लेते थे।

हमदानी तीन वर्ष काश्मीर में रहा। उसके बाद हज के लिये जाते हुए मार्ग में उसकी मृत्यु हो गयी। मध्य एशिया में उसको दफन किया गया। इन्हीं सैय्यद अली हमदानी की परम्परा में शेख नुरुद्दीन (ऋषि नन्द) पले और बड़े हुए। जिस समय शेख नूरुद्दीन काश्मीर के इस्लामीकरण की सोच रहे थे उस समय काश्मीर में एक शिव उपासक योगिनी लाल देवी का बहुत नाम था। उसे लोग प्यार से लाल देद कहते थे। लाल देद की कवितायें घर-घर में गायी जाती थीं। काश्मीरी जनता में उनका अपूर्व सम्मान था।

हमदानी के तीन वर्षीय "मन्दिर ध्वस्त करो" अभियान से काश्मीरी ब्राह्मण बहुल समाज में सूफ़ियों के प्रति रोष व्याप्त हो गया था। शेख नूरुद्दीन ने काश्मीर के इस्लामीकरण का दूसरा मार्ग पकड़ा। उसने लाल देद की सार्वजनिक प्रतिष्ठा और जनता द्वारा अपूर्व प्रेम को देखकर उसकी परम्परा में इस्लाम के धर्मान्तरण प्रोग्राम पर हिन्दू दर्शन का रंग चढ़ाकर प्रचार प्रारम्भ किया। शीघ्र ही लाल देवी के भक्त उसको भी उसी आदर की दृष्टि से देखने लगे। फिर प्रारम्भ हुआ वही धर्मान्तरण का सिलसिला जो प्रत्येक सूफ़ी का वास्तविक प्रिय और एक मात्र ध्येय होता है। उन्होंने अनेक हिन्दुओं का धर्मान्तरण कर उन्हें शिष्य बनाकर अपने दूसरे सहधर्मियों के साथ धर्मान्तरण में लगा दिया। उसके मुख्य शिष्यों में बामुद्दीन, जैनुद्दीन, लतीफुद्दीन का नाम आता है। यह सभी जन्म से ब्राह्मण थे।

ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि जब किसी हिन्दू सन्त ने चाहे वह गुरु नानक हों या लाल देवी अपने किसी भी मुस्लिम भक्त का धर्मान्तरण नहीं किया, इन तथाकथित

धर्मनिरपेक्ष महान सूफी सन्तों ने अपने हिन्दू भक्तों का सदैव ही इस्लाम में धर्मान्तरण किया।

इन्द्रजीत गुप्ता जैसे भारतीय कम्युनिस्टों को तो सोवियत संघ जैसे शक्तिशाली राष्ट्र को छिन्न-भिन्न करने में सूफ़ियों की भूमिका का ज्ञान होना चाहिये। जब कम्युनिस्ट दमन के कारण रूस के मुसलमानों ने सत्ता के सम्मुख समर्पण कर दिया, काकेशस के आस-पास मुस्लिम बहुल राज्यों में विभिन्न परम्पराओं के सूफ़ियों ने संगठित होकर वहाँ प्रकटतः उसी प्रकार का, देखने में अराजनीतिक धार्मिक आन्दोलन, प्रारम्भ किया जैसा कि काश्मीर के सन्दर्भ में हम ऊपर बता आये हैं।

अलेक्जेन्डर बेनिंगसेन, जो सोवियत इस्लाम के विशेषज्ञ माने जाते हैं, कहते हैं कि "इस प्रकार के संगठन और आन्दोलन उस समय के लिये उपयुक्त होते हैं जब इस्लाम काफ़िरों के विरुद्ध एक नया युद्ध लड़ने के लिये अपनी शक्ति संगठित कर रहा होता है। सूफ़ियों ने इस्लाम के अतिरूढ़िवादी जिहादी रूप को बढ़ावा दिया। अन्ततः मुसलमानों में आध्यात्मिक जुनून उत्पन्न कर कम्युनिस्टों का सफ़ाया करने में वह सफल हो गये।

नूरुद्दीन के शिष्यों ने अपने को धर्म निरपेक्ष संत के रूप में पेश करने के लिये सूफ़ी के स्थान पर अपने को ऋषि कहना प्रारम्भ किया क्योंकि साधारण हिन्दू जनता ऋषि मुनियों को साधारण महात्माओं और योगियों से भी श्रेष्ठ समझती है। पुराने ऋषि मुनियों के विषय में कहा जाता है कि वह बाघ की धारीदार खाल (बाघाम्बर) ही ओढ़ते बिछाते थे। इन नकली ऋषियों ने भी काली सफ़ेद धारियों के ऊनी कपड़े पहनना प्रारम्भ कर दिया। अपने असली ध्येय को छिपाने के लिये इन्होंने घाटी में फलों के पेड़ लगाने जैसा लोकहित कार्य भी किया जैसा ईसाई मिशनरी अस्पताल चलाकर करते हैं। हिन्दू ब्रह्मचारियों की परम्परा में यह लोग मांस नहीं खाते थे तथा शादी नहीं करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं पर अपनी आध्यात्मिक धाक जमाये रखते थे। इनके हिन्दू अनुयायी इस्लाम ग्रहण करते तो तुरन्त उन्हें दूसरे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के कार्य में लगा दिया जाता था। वह अपने खानकाह स्थापित कर लेते थे और यह खानकाह धर्मान्तरण कार्य में उनके जीवनकाल से भी अधिक प्रभावी हो गये हैं। गाँव-गाँव में इनकी कब्रें और मज़ारें हिन्दुओं के श्रद्धास्थल हो गये हैं। इस कारण उनका अपने धर्म से हटकर इस्लाम के प्रति विरोध समाप्त हो जाता है और धर्मान्तरण सरल हो जाता है। इनकी उपयोगिता को देखते हुए मुस्लिम मिशनरी गिरी पड़ी खस्ता कब्रों को पक्का स्वरूप देकर उसे पीर, गाज़ी अथवा शहीद फलाँ-फलाँ की मज़ार मशहूर कर देते हैं। उनकी चमत्कारी शक्तियों का प्रचार होने लगता है। अज्ञानी और अन्धविश्वासी हिन्दुओं की भीड़ मन्नत मांगने के लिये उमड़ने लगती है। अन्ध विश्वास के कारण महिलाओं के यौन शोषण की कहानियाँ भी यदा कदा समाचार पत्रों में छपती रहती हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् इस प्रकार की सहस्रों नई मजारों पर मेले लगने लगे हैं। हिन्दू काश्मीर को मुस्लिम काश्मीर बनाने वाले प्रमुख सूफी सन्त, धर्म निरपेक्ष काश्मीरी ऋषि

नूरुद्दीन की कब्र चरार-ए-शरीफ के नाम से जानी जाती है। कैसी विडम्बना है कि ११ मई को ईद के पवित्र दिन पर मुसलमानों ने उसी व्यक्ति की दरगाह को जलाकर राख कर दिया जिसने काश्मीर के ब्राह्मणों का धर्मान्तरण करके उसको मुस्लिम बाहुल्य बनाने में विशेष भूमिका निभायी थी। काश्मीर में मुस्लिम बाहुल्य ही अन्ततः अलगाववाद और फिर उसको भारत के बाहर प्रभुता सम्पन्न स्वतंत्र मुस्लिम राज्य बनाने के लिये आतंकवादी आन्दोलन का कारण बना इससे कौन इन्कार कर सकता है? और अब हिन्दू प्रजा से वसूले गये राजस्व के १५ करोड़ रुपये लगाकर उन्हीं ऋषि नूरुद्दीन की मुसलमानों द्वारा खाक की गई दरगाह का पुनः निर्माण किया जायेगा। जब कि मुस्लिम काल में बलपूर्वक मन्दिर ध्वस्त कर उनके स्थान पर हजारों मस्जिदों में से दो चार महत्वपूर्ण मन्दिर न बन पायें इसके लिये शासन अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। सचमुच ही घड़ी की सुइयाँ पूरा वृत्त घूम गई हैं।

धर्मान्तरण, धर्मान्तरण, धर्मान्तरण

सैय्यद आदम बन्नौरी (१५४३ ई.) के खानकाह में १००० व्यक्ति हर समय ठहरे रहते थे। तज़करे आदमियाँ के अनुसार वह जहाँ भी जाते थे उनके साथ उलमा और दूसरे लोगों की भीड़ भी जाती थी। १६४२ ई. में जब वह लाहौर गये उनके साथ १०,००० लोग थे। उनकी लोकप्रियता को देखकर शाहजहाँ भयभीत हो गया। उसने बड़ी धनराशि देकर उन्हें भारत से बाहर हज्ज के लिये भेज दिया और इस प्रकार उस शेख से पीछा छुड़ाया।

तज़करे आदमियाँ और दूसरे सूफ़ी ग्रन्थों में सूफ़ियों के पास अनन्त धनराशि का स्पष्टीकरण करने के लिये उनकी चमत्कारिक शक्तियों का वर्णन किया गया है। उनका इतना प्रभाव भी था कि दिल्ली के सम्राट भी उनसे भय खाने लगते थे। अविश्वसनीय चमत्कारी ढकोसलों को दृष्टि से दूर कर हम यह सोचने को मजबूर होते हैं कि यह धन आता कहाँ से था? धन से सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं: शिष्य, लोकप्रियता, हथियार, सेना इत्यादि और राजनीतिक प्रभाव। इन सभी का मार्ग धन प्रशस्त कर देता है। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट है कि यह धन उन मुस्लिम देशों के अथवा भारत के ही उन मुस्लिम शासकों से आता था जो सम्पूर्ण भारत के शीघ्रातिशीघ्र इस्लामीकरण के अत्यन्त इच्छुक थे। यह भी स्पष्ट है कि इस कार्य के लिये धन लेने वाले चाहे सूफ़ी हों या दूसरे लोग सभी दिल्ली के सम्राट के संदेह के दायरे में आते थे क्योंकि सीमान्त देश मुगल साम्राज्य के सीमान्त प्रान्तों पर सदैव ही गिद्ध दृष्टि लगाये रहते थे।

शाहजहाँ स्वयं हिन्दुओं के धर्मान्तरण में बहुत रुचि लेता था। फिर शाहजहाँ का शेख की धर्मान्तरण की गतिविधि और ख्याति से डरने का उपरोक्त कारण ही हो सकता है। इस्लाम का प्रसार तो ठीक था परन्तु सीमान्त शत्रु देशों से धन का प्रवेश वांछनीय नहीं था।

ख़्वाज़ा मौहम्मद मासूम (१६६८ ई.) के ९००००० (नौ लाख) शिष्य थे जिनमें से ७००० उसके खलीफा बने अर्थात् जिन्होंने उनकी परम्परा में धर्म प्रचार और धर्म प्रसार के नाम पर असंख्य हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। सर सैय्यद अंसाल-उल-सनादीद में

लिखते हैं कि उनके यहाँ ५०० व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। इसी बात से इन सूफ़ी की आय का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

१९वीं शताब्दी के मशहूर इस्लामी प्रचारक और सिखों और अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र जिहाद करने वाले सैय्यद अहमद शहीद के कारनामें तो कल्पनातीत लगते हैं। लखनऊ के विश्व विख्यात मदरसे के सर्वे सर्वा अली मियाँ के नाम से जाने वाले सैय्यद अबुल हसन अली नदवी लिखते हैं कि : "जब सयद अहमद शहीद हज यात्रा के लिये कलकत्ता जा रहे थे तो मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों में शायद ही कोई व्यक्ति बचा हो जिसने उनसे दीक्षा न ली हो। इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, बनारस, गाज़ीपुर, पटना और कलकत्ता में तो विशेषतौर पर ऐसे लोगों की संख्या लाखों में होगी। बनारस में तो सदर अस्पताल के रोगियों ने उन्हें समाचार भिजवाया कि वह उनके पास आने में असमर्थ हैं इसलिये बड़ी कृपा होगी यदि सैय्यद साहब स्वयं अस्पताल आकर उन्हें दीक्षा दे दें।

"कलकत्ते में उनका निवास दो मास रहा और लगभग १००० व्यक्ति प्रतिदिन उनसे दीक्षा लेते रहे। दीक्षा के कार्यक्रम में जब समय की तंगी मालूम होने लगी तो यह उपाय किया गया कि एक बड़े मकान में लोगों को जमा किया जाता था। फिर सात लम्बी चौड़ी पगड़ी धरती पर बिछा दी जाती थीं। लोग उन पगड़ियों के सिरों को पकड़ लेते थे। फिर सैय्यद साहब उस पगड़ी के एक सिरे को पकड़कर उनसे कलमा पढ़वा लेते थे। इसके पश्चात् यही क्रम दूसरी पगड़ियों पर बारी–बारी से चलता रहता था।" कलकत्ता और भारत की उस समय की कम आबादी को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दू संख्या का कितना बड़ा भाग एक एक सूफ़ी द्वारा मुसलमान बनाया गया।

सैय्यद अथर अब्बास अली रिज़वी बहराइच के शहीद सलार मसूद गाज़ी की दरगाह के विषय में आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखते हैं कि उसकी मज़ार पर जाकर उसकी पूजा करने वाले लाखों हिन्दुओं के लिये यह बिल्कुल महत्वपूर्ण नहीं है कि उसने उनके कितने पूर्वजों का (इस्लाम स्वीकार न करने पर) वध किया था।

हिन्दू समाज तुम वास्तव में धन्य हो कि तुम उनकी पूजा करते हो जिनका ध्येय ही तुमको जड़मूल से मिटाना था और धन्य हैं हिन्दू समाज के वह लाखों साधु सन्यासी, जगद्गुरु, भगवान और सद्गुरु जो इन अनभिज्ञ लोगों को इस प्रकार की पूजा से विरत करने का कोई प्रयास नहीं करते। ऐसे समाज के नष्ट हो जाने में क्या सन्देह हो सकता है।?

अपूज्यायत्र पूज्यन्ते पूज्यानाम च निरादरः।
त्रीणी तत्र प्रविशन्ति, दुर्भिक्षं, मरणं भयम।।

जो उनकी पूजा करते हैं जो पूजा के योग्य नहीं हैं और उनकी पूजा नहीं करते जो पूजा के योग्य हैं, उनका तो अभाव और भयग्रस्त होना और मरना निश्चय ही है।

भारत के इस्लामीकरण का
दूसरा चरण
१००१ ई. से १७५७ ई.
तक सम्पन्न
मुस्लिम आबादी १०%-१२%
मुस्लिम आबादी २५%-४५%
काश्मीर
पश्चिमी
पंजाब
बलूचिस्तान
हि
न्दु
स्ता
न
नेपाल
भूटान
असम
पूर्वी बंगाल
बर्मा
लक्षदीप
लंका
मालद्वीव दीप समूह

१६
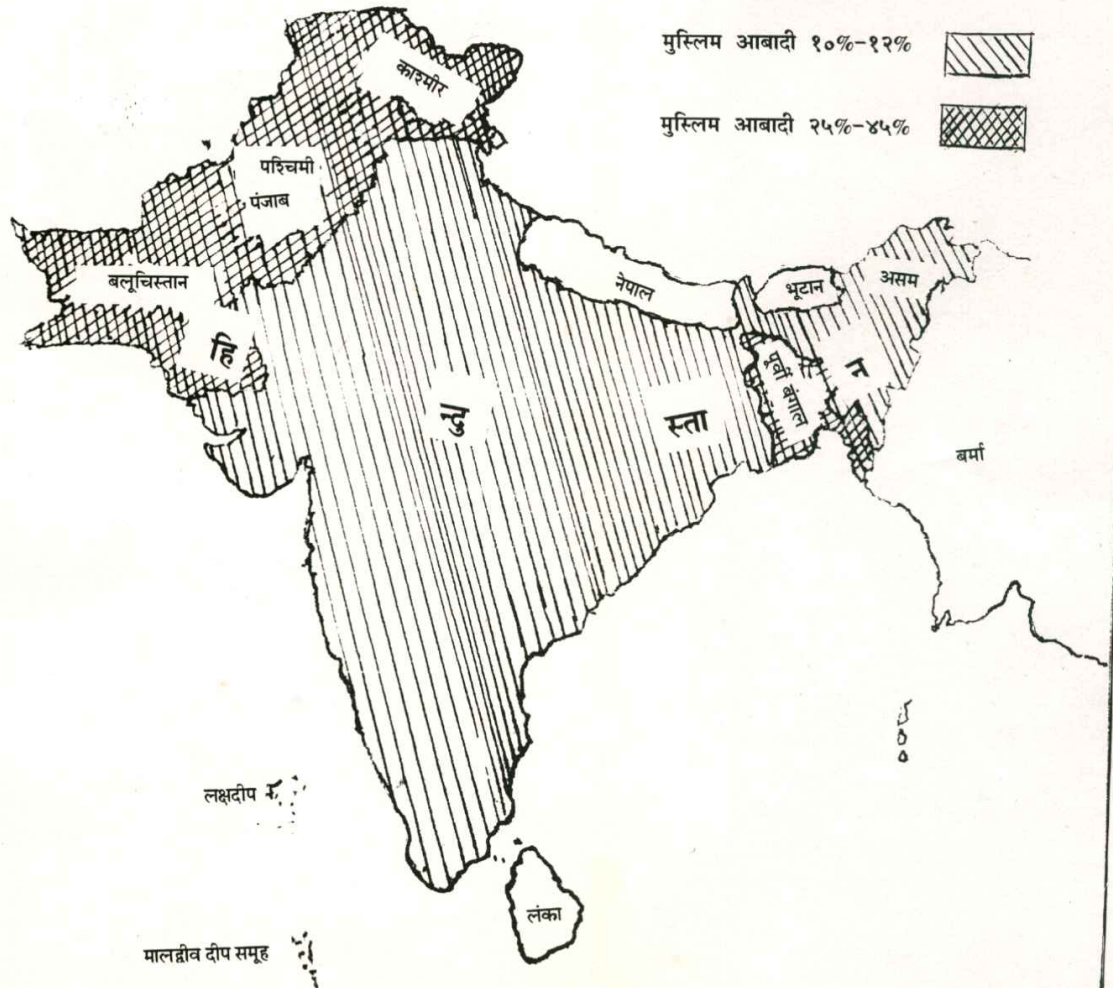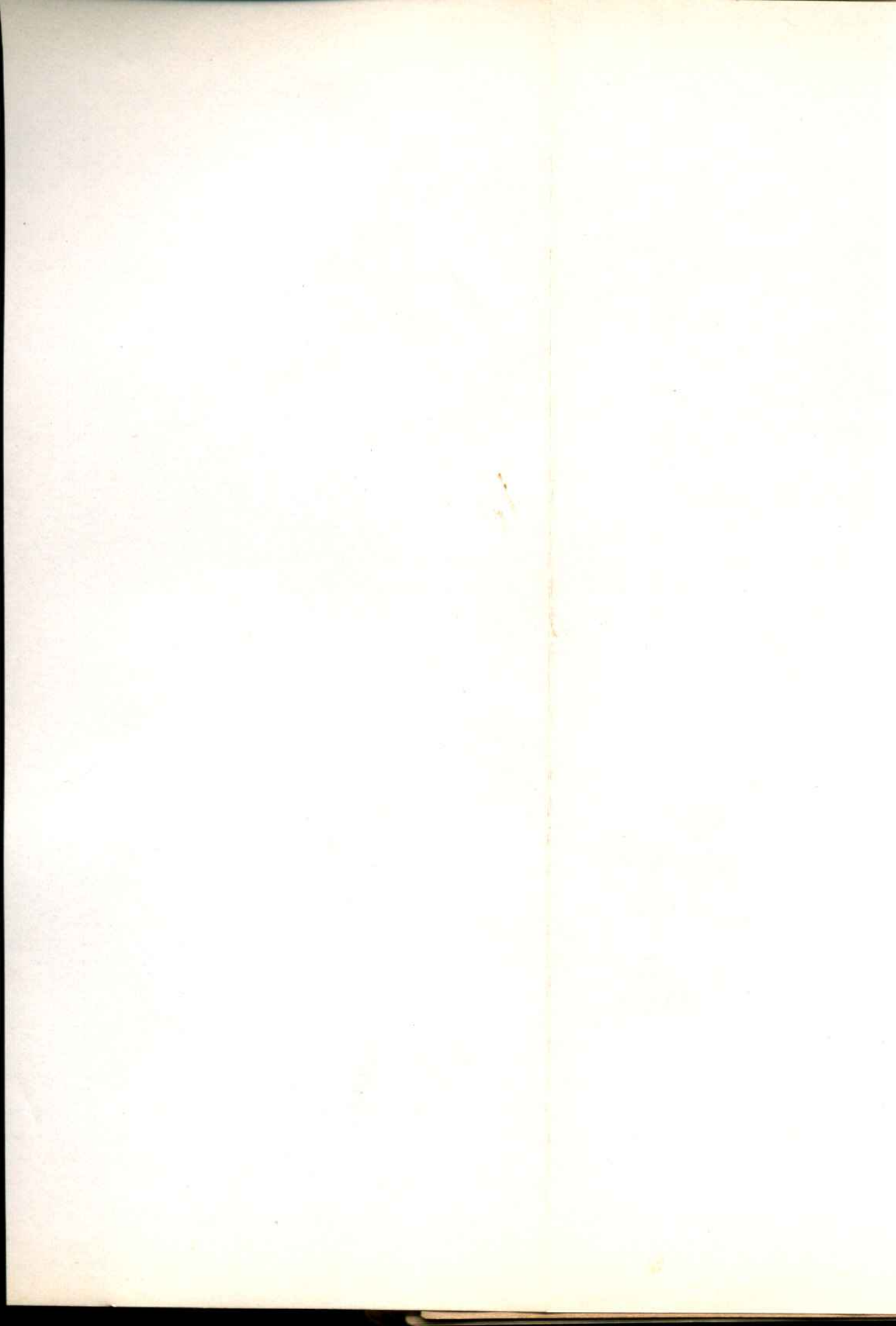
भारत के इस्लामीकरण का तीसरा चरण

(१७५७ से १९४७ ई०)

अव्यवहारिक आदर्शवाद और उदारता

१– युद्ध छल कपट (दाँव घात) है। (पैगम्बर मौहम्मद)[१]

२– मुसलमान एक ही सूराख से दो बार डंक (धोखा) नहीं खाता है। (पैगम्बर मौहम्मद)[२]

३– शक्ति का स्रोत है धनुर्विद्या में निपुणता। शक्ति का स्रोत है धनुर्विद्या में निपुणता। शक्ति का स्रोत है धनुर्विद्या में निपुणता। (पैगम्बर मौहम्मद)[३]

४– शक्ति का स्रोत है बन्दूक की नाल (माओत्से–तुंग)

५– जिन सुधारों को इस्लाम लाना चाहता है वह केवल उपदेशों से सम्भव नहीं हैं। राजनीतिक सत्ता पर अधिकार होना आवश्यक है। इसलिये इस्लाम की स्थापना के उद्देश्य से शासन तंत्र पर अधिकार प्राप्त करने के लिये संघर्ष की न केवल अनुमति है अपितु वह वांछनीय है और इस कारण अनिवार्य भी। (मौदूदी)[४]

६– दूसरों का अविश्वास करने की अपेक्षा मैं एक हज़ार बार धोखा खाना पसंद करूँगा। (महात्मा गाँधी)[५]

७– ... मैंने उनसे (हिन्दुओं से) कहा था कि वह अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिये अपना तन और धन मुसलमानों को सौंप दें-----(अब) हिन्दू महिलायें मुसलमान गुण्डों से त्रस्त है-----जिस प्रकार उनके नन्हें मुन्नों पर अत्याचार किया गया उसे मैं कैसे सहन करूँ। ------ लेकिन आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहूँगा भले ही मर जाओ मारो मत। (महात्मा गाँधी)[६]

८– उन (हिन्दू नेताओं) को राजनीति के प्रारम्भिक पाठ सीखने में सहस्रों वर्ष लगेंगे। (चर्चिल)

उपरोक्त उद्धरण हमने इस्लाम के तथा संसार के महानतम राजनीतिज्ञों के राजनीतिक दृष्टिकोण के तुलनात्मक अन्तर को उजागर करने के लिये दिये हैं। मुसलमानों, अंग्रेजों और चीनियों का यथार्थवाद और कूटनीतिक बुद्धिमत्ता और गाँधी जी की राजनीति में अतिवादी नैतिक अव्यवहारिकता स्पष्ट है। राजपूतों के विषय में टॉड की टिप्पणी को याद कीजिये:

"पराजित शत्रु को क्षमा कर देना हिन्दू योद्धा का नियम है। इस विषय में उसका अतिवादी स्वभाव उसे अव्यवहारिकता की सीमा तक ले जाता है। यदि हिन्दुओं की इस

शौर्य पूर्ण प्रकृति में थोड़ा राजनीतिक व्यवहारिकता का पुट भी मिला होता तो उन्हें वह दुर्दिन देखने न पड़ते जो उन्हें अपने स्वर्णिम काल के पश्चात् देखने पड़े।"(७)

मुस्लिम काल के भीषण अत्याचार हिन्दुओं को झेलने पड़े। उनसे पीछा छुड़ाने के लिये सामान्य विवेकशील व्यक्ति और समाज निश्चय ही ब्रिटिश शासन का आभारी होता और इस प्रकार के पग उठाता कि फिर कभी उसे यह त्रासदी उठानी न पड़े। किन्तु वाह रे हिन्दू !

१८०३ ई० में जेनरल लेक ने दिल्ली पर कब्जा कर मुगल बादशाह शाह आलम को अपने कब्जे में ले लिया। शाह आलम ने ऐलान किया "खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म कम्पनी बहादुर का।"(८)

अंग्रेज जानते थे कि जिन लोगों पर राज्य करना है अथवा जिनके साथ रहना है उनके धर्म, चरित्र, मानसिकता, इतिहास और संस्कृति की सूक्ष्म जानकारी करना आवश्यक है। इसलिये उन्होंने अपने विद्वानों को इस कार्य पर लगाया। ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद विल्सन द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ही करा दिया था। सभी वेदों का अनुवाद फिर ग्रिफ़िथ इत्यादि विद्वानों ने किया। लन्दन विश्वविद्यालय में पूर्वी संस्कृति के अध्ययन के लिये एक अलग विभाग ही बनाया गया। ढूँढ़ ढूँढ़ कर हिन्दुओं के लुप्त प्रायः ग्रन्थों का अनुवाद किया जाने लगा। मौहम्मद साहब की जीवनी पर प्रमाणिक ग्रन्थ लिखे गये। कुरान, हिदाया इत्यादि मूल ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद हुआ। मुस्लिम काल में भारत में रहने वाले विदेशियों, पादरियों, डाक्टरों इत्यादि द्वारा अपनी अपनी भाषाओं में लिखे इतिहास ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद छापे गये। मुस्लिम सुल्तानों और उनके समकालीन सरदारों, इतिहासकारों द्वारा लिखे गये जो भी ग्रन्थ उपलब्ध होते गये उनका अंग्रेजी में अनुवाद होता रहा।

इस भीमकाय बौद्धिक कार्य से यदि हम हिन्दुओं के इस्लाम ईसाई धर्म विषयक ज्ञान से सम्बन्धित साहित्य की भारतीय भाषाओं में प्रकाशन की अथवा अपने ही इतिहास लेखन की तुलना करें तो हमें हिन्दुओं की अनभिज्ञता, अवनति और दुर्भाग्य का कारण कुछ कुछ समझ में आ जायगा। हिन्दू ने इस्लाम और ईसाई मत, के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन तो किया ही नहीं उसने अपने इतिहास और मूल धार्मिक ग्रन्थों को भी भुला दिया अथवा नष्ट हो जाने दिया। वेद, उपनिषद, पाणिनी, पातंजलि, धनवन्तरी, चरक और वैदिक काल के गणित, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि ज्ञान से सम्बन्धित साहित्य जिसके बल पर भारत विश्व गुरु बना था लुप्त हो गया अथवा उसमें सहस्त्रों श्लोक स्वार्थी लोगों द्वारा जोड़ दिये गये। चाणक्य को भुला दिया गया। अधिकांश पौराणिक मिथक कहानियों का और पुराणों का जन्म इसी काल में स्वार्थी लोगों द्वारा किया गया। रह गयीं तो रामायण, महाभारत और पुराणों की मिथक कहानियाँ। कुछ ग्रन्थ जिन्हें ब्राह्मण परिवारों ने उनको पढ़ने की अक्षमता के कारण बस्तों में बाँध-बाँध कर रख दिया था अथवा जिनको वह गंगा में प्रवाहित करने जा रहे थे अंग्रेज शासकों द्वारा खरीद लिये गये और

भारत के ऊषा और मध्यान्ह काल का उन ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादों से हमें कुछ ज्ञान हुआ।

मुसलमान शासक पराजय स्वीकार कर चुके थे। किन्तु मुस्लिम बौद्धिक नेतृत्व ने पराजय स्वीकार नहीं की थी और जैसा ब्रिगेडियर मलिक ने अपनी पुस्तक "कुरानिक कन्सेप्ट आफ वार" में लिखा है कोई भी पराजय मुकम्मिल नहीं होती जब तक विपक्षी बौद्धिक पराजय स्वीकार करने पर मजबूर न हो जाय।(९) मुसलमानों के बौद्धिक नेतृत्व (उलेमा) ने अंग्रेज को भारत से निकाल कर फिर से यहाँ इस्लामी शासन के स्थापित करने के प्रयास जारी रखे। मुस्लिम शासन के अधः पतन के साथ साथ ही यह प्रयास प्रारम्भ हो गये थे।

शाहवली उल्लाह (१७०२-६२) ने ईरान से अहमदशाह अब्दाली और रुहेलखण्ड से नजीबुद्दौला को मराठों, जाटों और सिखों की ताकत को खत्म कर फिर से मुस्लिम शासन स्थापित करने के लिये बुलाकर पानीपत का तीसरा युद्ध करवाया था। इस युद्ध ने मराठों और जाटों की कमर तो अवश्य तोड़ दी मगर मुगल शासन स्थापित नहीं हो सका। उसका लाभ अंग्रेजों को मिला।

शाहवली उल्लाह के पुत्र और उत्तराधिकारी शाह अब्दुल अज़ीज़ ने हिन्दुस्तान को दारुल हर्ब (युद्ध स्थान) घोषित किया। इनके उत्तराधिकारी मौलाना मोहम्मद इसहाक ने और सैयद अहमद शहीद ने जिहाद करने का इरादा किया। अंग्रेजों की मिली भगत से इन्होंने अपने जिहाद का प्रारम्भ सिखों से किया।(१०) ये वही सयद अहमद शहीद हैं जिनके द्वारा सहस्रों हिन्दुओं के धर्मपरिवर्तन की चर्चा हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं। इस जिहाद में जो कहने को तो अंग्रेजों के विरुद्ध था किन्तु प्रारम्भ सिखों से किया गया उन्होंने सहायता के लिये हिन्दू राजाओं को पत्र लिखा कि "समन्दर पार के रहने वाले व्यापारी सल्तनत के मालिक बन गये हैं और उन्होंने बड़े-बड़े अमीरों और हुक्मरानों की इज्जत को ख़ाक में मिला दिया है। ऐसी हालत में "दीन की ख़िदमत" के लिये कुछ लोग उठ खड़े हुए हैं उनकी वालियान रियासत और बड़े-बड़े सरदारों से सिर्फ इस बात की ख़्वाहिश (इच्छा) है कि जानमाल से **इस्लाम की खिदमत करें और अपनी मसनद, हुकूमत पर कायम रहें।**"(११)

क्योंकि अंग्रेजों को हटाकर हिन्दुस्तान पर फिर से शासन करने के लिये मुसलमान ही कटिबद्ध थे हिन्दू नहीं, इसलिये अंग्रेज जानते थे कि उनके वास्तविक शत्रु मुसलमान हैं हिन्दू नहीं। यथार्थवादी अंग्रेज भारत के शासन की महत्वाकांक्षा रखने वाले, लड़ाकू मुसलमानों से सावधान थे। अव्यवहारिक, अक्षम, भावुक, १००० वर्ष तक घोर अत्याचारी शासन में रहते हुये भी उसका संगठित विरोध करने में अक्षम, रक्तपात से घृणा करने वाले शान्तिप्रिय हिन्दुओं से उन्हें कोई भय नहीं लगता था। उन्हें उन भीषण अत्याचारों का पता था जो मुसलमान शासक अपनी गैर मुस्लिम प्रजा पर करते हैं क्योंकि युरोप में ईसाई यह जुल्म झेल चुके थे। उनके मस्तिष्क में यह बात आ ही नहीं सकती थी कि इस प्रकार के भयानक अत्याचारों को एक हजार वर्ष तक भोगने वाले हिन्दू किसी भी परिस्थिति में,

किसी भी प्रकार के लोभ से मुसलमानों के साथ मिलकर दोबारा उसी शासन को फिर स्थापित करने के लिये अपने मुक्ति दाताओं के विरुद्ध मुसलमानों का साथ देंगे।

१८४८ में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड एलन बरो ने लिखा था : "मैं इस तथ्य से आँखें बन्द नहीं कर सकता कि यह कौम (मुसलमान) ही मूल रूप से हमारी विरोधी है। इसलिये हमारी मुख्य नीति हिन्दुओं से मित्रता की होनी चाहिये।"(१२) किन्तु लार्ड एलन बरो बहुत निराश हुये होंगे जब केवल ९ वर्ष बाद १८५७ में अपने ऊपर मुसलमानों द्वारा १००० वर्ष तक लादे गये बलात् धर्मान्तरण, वयस्क पुरुषों का कत्ले आम करने वाले, स्त्रियों और अवयस्क युवकों को गुलाम बनाने, छोटे-छोटे शिशुओं को हिजड़ा बनाने वाले सम्प्रदाय का साथ देकर हिन्दुओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध जिन्होंने उन्हें इन अत्याचारों से मुक्ति दिलायी थी युद्ध छेड़ दिया। **वह उत्साहपूर्वक भारत में फिर से मुस्लिम शासन लाने के लिये इस युद्ध में कूद पड़े। इस आशा में कि मुसलमान यदि विजयी हो गये तो कुछ देश और धर्म द्रोही हिन्दू राजा और जमींदार अपनी मसनद और हुकूमत पर कायम रह सकेंगे।** केवल सिखों ने उन अत्याचारों को नहीं भूला और अंग्रेजों के साथ विश्वासघात नहीं किया।

फलस्वरूप जैसे सिकन्दर का युद्ध आम्बी, मोहम्मद बिन कासिम का दाहिर के बौद्ध मंत्री, गजनवी सुल्तानों का हिन्दू तिलक, अकबर का मानसिंह, शाहजहाँ और औरंगजेब का महाराज जयसिंह और यशवंत सिंह ने लड़ा था उसी प्रकार भारत के दुबारा इस्लामीकरण के लिये १८५७ का युद्ध पुनः हिन्दू लड़ने को तैयार हो गये।

सावरकर समेत अनेक विद्वानों ने १८५७ के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध कहा है और कहते हैं। वास्तव में यह युद्ध तो भारत में पुनः मुगल शासन स्थापित करने के लिये लड़ा गया था। हिन्दू भले ही इस तथ्य को न समझते हों अंग्रेजों के मन में कोई भ्रम नहीं था। हेनरी मीड नामक अंग्रेज लिखता है : "**यह विद्रोह सैनिक विद्रोह नहीं कहा जा सकता। यह सैनिकों ने प्रारम्भ अवश्य किया किन्तु शीघ्र ही इसकी वास्तविकता प्रकट हो गयी। यह तो इस्लामी विद्रोह था।**"(१३)

बंगाल सिविल सर्विस के हेनरी हैरिंग्टन टामस ने लिखा है : "मैं कहता रहा हूँ कि १८५७ के विद्रोह के सूत्रधार हिन्दू नहीं थे और अब मैं सिद्ध कर सकता हूँ कि यह मुस्लिम षडयन्त्र के कारण हुआ----हिन्दू अकेले इस प्रकार की कार्यवाही करने में अपने स्वभाववश न सक्षम थे और न करने वाले थे। **वह (मुसलमान) प्रथम खलीफा के समय में जैसे थे वैसे ही निरंतर आज तक हैं ----घमंडी, असहनशील और क्रूर। उनका ध्येय सदैव सर्वोपरि रहना रहा है-------वह किसी भी शासन के भले प्रजा जन बन कर नहीं रह सकते। कुरान की शिक्षा उन्हें रहने नहीं देगी।**"(१४)

१८५७ का विद्रोह असफल हो गया। किन्तु मुसमलानों और अंग्रेजों के लिये वह कुछ बहुमूल्य पाठ छोड़ गया। नहीं सीखा तो केवल हिन्दू ने। मुसलमान समझ गये कि

वह अंग्रेजों से अकेले न छल से जीत सकते हैं न बल से इसलिये उनका हित अंग्रेजों को साथ रखने में है। भारत में खोये हुये मुस्लिम शासन के पुनः स्थापित करने का ध्येय अंग्रेजों से लड़कर नहीं कूटनीति से ही प्राप्त किया जा सकेगा। हिन्दू के विषय में वह समझ गये कि आवश्यकता पड़ने पर उसका सहयोग किसी न किसी प्रकार साम दाम लोभ अथवा भेद द्वारा सदैव खरीदा जा सकता है। अंग्रेज समझ गये कि राजनीतिक मूर्ख, धार्मिक भावुक, हिंसा और रक्तपात से घृणा करने वाले और एक दूसरे के प्रति वैमनस्यरत अनेक जातियों में बँटे हिन्दू, संख्या में अधिक होते हुए भी, उनके लिये कभी अकेले खतरा नहीं बन सकते है। इसलिये मुसलमानों को साथ रखना उनके हित में है। मुसलमान अपने मजहब के अनुसार भी हिन्दुओं की अपेक्षा ईसाईयों के अधिक नज़दीक हैं क्योंकि वह दोनों ही ईसा मसीह को पैगम्बर मानते हैं। हिन्दू तो उन दोनों के लिये समान रूप से घृणा योग्य है: एक के लिये काफ़िर और दूसरे के लिये हीदेन्स। दोनों ही धर्मों के लिये हिन्दू ही धर्मपरिवर्तन के कच्चे माल और शिकार हैं। कहीं ऐसा न हो कि चतुर राजनीतिज्ञ, लड़ाकू, महत्वाकांक्षी मुसलमान इन हिन्दुओं को अपना हथियार बनाकर उन (अंग्रेजों) के साम्राज्य के लिए खतरा बन जाँय। इस ख़तरे के विषय में जार्ज डब्लू फारेस्टर ने लिखा था : "भारतीय विद्रोह ने इतिहासकार के समक्ष जो पाठ प्रस्तुत किये है उनमें सबसे बड़ी चेतावनी यह है कि ऐसी क्रान्ति हो सकती है जिसमें ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान आपस में मिलकर हमारा विरोध करें।"[१५]

बाँटो और राज्य करो की अंग्रेजी नीति

यह ठीक है कि यहीं से अंग्रेजों की बाँटों और राज्य करो की नीति प्रारम्भ होती है। परन्तु हिन्दू नेतृत्व जो भयंकर भूल करता रहा है वह यह है कि वह इस हिन्दू मुस्लिम खाई का निर्माता अंग्रेज़ को समझता रहा है। यह खाई तो उस समय भी मौजूद थी जब भारत में एक भी अंग्रेज़ नहीं था। और अब भी मौजूद है जब अंग्रेज़ों को भारत छोड़े लगभग ५० वर्ष हो गये हैं। यह खाई तो इस्लाम की स्वाभाविक देन है। जितना ही मुसलमानों की इस्लाम पर धर्मनिष्ठा बढ़ेगी उतनी ही यह खाई चौड़ी और गहरी होगी। अंग्रेजों का स्वार्थ इस खाई को बनाये रखने में था इसलिये वह इसके लिये आवश्यक पग उठाते रहे कि मुसलमान अपने धर्म का अध्ययन और पालन करते रहें। यह सुनिश्चित कर लेने मात्र से उनका काफ़िर हिन्दुओं से मेल होना असम्भव था और अंग्रेजों ने यही किया भी।

१८७१ में लार्ड मेयो ने सिक्रेटरी आफ स्टेट की सहमति से एक आदेश निकाला जिसमें सरकारी स्कूलों और कालेजों में मुसलमान अध्यापकों की नियुक्ति और अरबी और फ़ारसी की शिक्षा पर बल देने के लिये कहा गया। मुसलमानों को अपने स्कूल खोलने के लिये और अरबी फ़ारसी में साहित्य निर्माण करने के लिये सरकारी सहायता देने के भी आदेश दिये गये। (पाठक नोट करें। भारत के इस्लामीकरण के चौथे और अंतिम चरण में

आप भारत की धर्मनिरेपक्ष सरकारों को यही कार्य अंग्रेजों से कहीं अधिक बड़े पैमाने और उत्साह से करते पायेंगे।) फलस्वरूप मुस्लिम लड़के उन स्कूलों की तरफ आकृष्ट होने लगे जहाँ शिक्षक मुसलमान थे और उर्दू,अरबी,फारसी पढ़ाई जाती थी और उनके धर्म की शिक्षा दी जाती थी। धीरे–धीरे हिन्दू और मुस्लिम बच्चों में वह मित्रता और सहनशीलता जो खेल के मैदानों और स्कूल के कमरों में उत्पन्न होती है समाप्त हो गयी।[१६] अंग्रेजी सरकार के इस आदेश के फलस्वरूप अनेक मुस्लिम स्कूल और मकतब खुलने लगे और सर सयद अहमद ने १८७५ में अलीगढ़ में एक स्कूल की स्थापना की जिसने आगे चलकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का रूप ले लिया। इस विश्वविद्यालय के अंग्रेजी पढ़े हुए परन्तु अरबी संस्कृति और शुद्ध इस्लाम में रंगे हुए नवयुवकों, सरकारी अधिकारियों और मुस्लिम मदरसों से पास मौलानाओं ने भारत के विभाजन में मुख्य भूमिका निभाई।

मौलाना मोहम्मद अली और शौकत अली इसी अलीगढ़ विश्वविद्यालय की उपज थे।

अफगानिस्तान में तालीबान (विद्यार्थियों) ने गृह युद्ध में कूद कर उन लोगों के विरुद्ध जंग छेड़ी है जो उनकी दृष्टि में इस्लाम की शिक्षाओं के अनुकूल आचरण नहीं करते। यह तालीबान मदरसों में शिक्षा प्राप्त कर रहे नवयुवक हैं। जिन क्षेत्रों में उनको विजय प्राप्त हो गई उनमें उन्होंने कुरान और हदीस पर आधारित कठोर शरियत नियम जैसा उनको उलमा द्वारा शिक्षा दी गई थी लागू किये। अंतिम विजय किसकी होगी यह तो समय बतायेगा परन्तु इस महत्वपूर्ण घटना से निम्नलिखित बातें सिद्ध होती है :

1. भू.पू. उड्डयन मंत्री गुलाम नबी आज़ाद का कथन कि काश्मीर में मदरसों की शिक्षा ने घाटी के युवकों का परिचय बन्दूक की संस्कृति से करा दिया है।

2. सयद अबुल आला मौदूदी का यह कथन कि यह लोग केवल इस्लाम के मिशनरी नहीं है अपितु खुदाई फौजदार है। (कुरान की आयत) युद्ध करो उनसे जब तक कि आज्ञाकारिता केवल खुदा के लिये हो जाये अर्थात लोग कुरान और हदीस के अनुसार आचरण करने गयें।

3. मदरसों से पास नवयुवक यदि उनके पास पर्याप्त रण शक्ति हो तो अधिक समय काफ़िरों का वर्चस्व बरदाश्त नहीं कर सकते।

१७

हिंसात्मक आन्दोलन

जिहादी मुसलमानों से अंग्रेजों के भय खाने के पर्याप्त कारण थे। सयद अहमद शहीद और उनके साथियों ने सीमांत के कबायली और पठान मुसलमानों को इस्लाम के नाम पर संगठित कर अंग्रेजों को जिस प्रकार घोर क्षति पहुँचायी थी और उनकी नींद हराम कर दी थी उसे वह भूले नहीं थे। बंगाल के चीफ जस्टिस और भारत के वाइसराय की हत्या कर उन्होंने अपने खूंखारपन का परिचय दे दिया था। वाइसराय के हत्यारे का वह पता नहीं लगा पाये थे। इसलिये जब सर सयद अहमद खां ने मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार का खैरख्वाह बनाने का अभियान छेड़ा तो ब्रिटिश शासन का एक मामूली अधिकारी (सर सयद इससे पहले शासन में मुंसिफ अथवा जिला जज थे) तुरन्त उनकी आँखों में चढ़ गया। शासन ने उन्हें विलायत भी भेजा। उन्होंने वहाँ से अंग्रेजों के वैभव के समाचार भारतीय मुसलमानों को भेजे और उन्हें अंग्रेजी शासन के प्रति स्वामीभक्ति का पाठ पढ़ाया। शासन ने बदले में उन्हें "सर" की पदवी दी।

इस प्रकार का खूंखारपन सौम्य हिन्दू युवकों के स्वभाव में नहीं था। किन्तु जब अंग्रेजों ने खुले और छिपे तौर पर मुसलमानों का तुष्टीकरण और हिन्दुओं का दमन प्रारम्भ किया तो कुछ हिन्दू युवकों में क्रान्ति की चिनगारियाँ भड़कने लगीं। इस प्रकार के आचरण को रोकने के लिये अंग्रेजों को ऐसे प्रभावी हिन्दू राजनीतिक और धार्मिक नेताओं की आवश्यकता थी जो अहिंसा और अध्यात्म पर तो बल दें परन्तु हिन्दू युवकों को हिंसा के मार्ग पर अग्रसर न होने दें।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उस काल में बौद्धिक क्रान्ति के दूत बनकर उभर रहे थे। वह हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों के पीछे पड़े थे। हिन्दुओं में मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास, छुआछूत, बाल विवाह से उत्पन्न बाल विधवाओं की समस्या जैसे कारणों से हिन्दुओं के धर्मान्तरण को बल मिलता है। दयानन्द ने अछूतों को भी वेद शिक्षा का अधिकार देकर छुआछूत पर करारी चोट की। बाल विवाह को मिटाकर बाल विधवाओं की समस्या को समाप्त करने पर बल दिया। मुस्लिम राज्य समाप्त हो जाने पर मुसलमानों के पास (मुस्लिम रियासतों को छोड़कर) हिन्दुओं के धर्मान्तरण के जो हथियार बचे थे वह थे हिन्दुओं में व्याप्त अनेक कुरीतियाँ जैसे मूर्ति पूजा, मजार-पीर पूजा, अन्ध विश्वास, छुआछूत, बाल विधवायें और वेदों की यथार्थवादी शिक्षा का अभाव। इन अनेक कुरीतियों का उपहास और दुरूपयोग कर मौलवी और पादरी भोले भाले हिन्दुओं पर अपने धर्म का सिक्का जमाते थे। दयानन्द ने इन कुरीतियों का स्वयं खण्डन करना और शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया जिसमें इस प्रकार के अन्ध विश्वासों का नितान्त

अभाव था। साथ ही साथ उन्होंने इस्लाम और ईसाई मत का भी अध्ययन कर इन मतों में व्याप्त और उनकी धर्म पुस्तकों में वर्णित अन्ध विश्वासों और कुरीतियों और विज्ञान विरुद्ध बातों का भंडा फोड़ करना प्रारम्भ किया। ऐसे बौद्धिक आक्रमण से इन सेमेटिक मतों को पहले वास्ता नहीं पड़ा था। ब्रिगेडियर मलिक द्वारा बौद्धिक पराजय को ही वास्तविक पराजय कहा गया है। दयानन्द ने सार्वजनिक मंचों से इन मतों की कुरीतियों, विज्ञान विरुद्ध बातों और अंध विश्वासों पर बौद्धिक विजय को ही ध्येय बनाया। अंग्रेजों को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी।

किन्तु दयानन्द की जब राजपूताने के राज्य परिवारों में प्रभावी घुसपैठ होने लगी और उनके परम भक्त श्याम जी कृष्ण वर्मा ने उनके प्रोत्साहन पर विदेशों में जाकर भारत के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क साधा तो अंग्रेज सशंकित हो उठे। उन्होंने षडयन्त्र रचकर दयानन्द की विष द्वारा हत्या करवा दी। किस प्रकार एक मुसलमान डाक्टर उनका मर्ज बढ़ाता रहा और किस प्रकार उनके भक्त हिन्दू डाक्टर को जिसके इलाज से सुधार हो चला था स्थानान्तरित कर और अवकाश न देकर अंग्रेजों ने उनकी मृत्यु को सुनिश्चित किया वह सभी को मालूम है। आर्य समाज पर राजद्रोह का मुकदमा भी कायम किया गया।

दयानन्द के बाद लोकमान्य तिलक अपने क्रान्तिकारियों के सम्पर्क के कारण अंग्रेजों की आँख की किरकिरी बने। उनको मांडले में कारावास के लिये भेजने में अंग्रेजों ने जैसी कठोरता बरती थी उससे क्षुब्ध होकर जिन्नाह ने उस जज की पार्टी में जाने से इन्कार ही नहीं किया अपितु उस पर आपत्ति भी की।

१८७१ के पश्चात यथार्थवादी मुसलमानों ने अंग्रेजों से सीधी लड़ाई लड़ने का विचार छोड़ दिया। उनका भारत के इस्लामीकरण का ध्येय तो ज्यों का त्यों रहा परन्तु अब उन्होंने इसकी प्राप्ति के लिये वही मार्ग पकड़ा जो बाद में सावरकर ने हिन्दुओं के लिये निर्धारित किया थाः "राजनीति का इस्लामीकरण और मुसलमानों का सैनीकरण।" इस कार्य को अन्जाम दिया सर सयद अहमद खां, डब्लू डब्लू हन्टर, थ्योडोर बेक और थ्योडोर मारिसन ने। पिछले दोनों लोग अलीगढ़ कालेज के प्रधानाचार्य थे और अंग्रेज नौकरशाही से घनिष्ट सम्बन्ध रखते थे। (इन लोगों के अथक प्रयास द्वारा लार्ड मेयों (१८७१) से लार्ड मिन्टो (१९०५–१०) तक अंग्रेज वाइसराय अनेक शासकीय सुविधायें देकर मुसलमानों को कांग्रेस से पूर्णतया विमुख करने में सफल हो गये। पारितोषिक स्वरूप मुसलमान, सेना, पुलिस और सरकारी प्रशासन में भर गये। इस प्रकार मुसलमानों का सैनीकरण और राजनीति का इस्लामीकरण करने में मुस्लिम नेतृत्व सफल हो गया। सावरकर जैसे पराक्रमी क्रान्तिकारी, विद्वान, तपस्वी और बलिदानी नेता भी राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनीकरण करने में सफल नहीं हो पाये। वैयक्तिक रूप से उनसे प्रेरणा लेकर भारत में अनेक क्रान्तिकारी संगठन उभरे किन्तु सभी संगठनों में पर्याप्त धन, उत्तम नियोजन और कूटनीतिज्ञ नेता का अभाव रहा। मुसलमानों के इस्लाम और पैगम्बर पर अटूट विश्वास तथा इस्लाम के राजनीतिक चिंतन जैसा हिन्दुओं में एकता और सैद्धान्तिक आकांक्षा

उत्पन्न करने वाला कोई सीमेंट नहीं था। अपूर्व वैयक्तिक शौर्य के स्वामी किन्तु भावुक और अव्यवहारिक राजपूत भी इसी कारण न केवल मुसलमानों से सदैव हारते रहे अपितु भारत में उनके साम्राज्य को स्थिर करने में मुख्य भूमिका निभाते रहे। वैसे भी इतने बलशाली ब्रिटिश साम्राज्य से इस प्रकार के आन्दोलनों के जीतने की कोई आशा नहीं की जा सकती थी। मुस्लिम राजनीति जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे बिना खून खराबे और बिना कोई कष्ट उठाये भारत के १/३ भाग का इस्लामीकरण करने में सफल हो गई।

हिन्दू उस समय क्या कर रहे थे? १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। इसका ध्येय था हिन्दुस्तानियों की शिकायतों और आकांक्षाओं की आवाज को गोरे महाप्रभुओं तक पहुँचाना। किन्तु तिलक, विपिन चन्द्रपाल और लाला लाजपतराय जैसे नेताओं के मार्ग दर्शन में कांग्रेस अंग्रेजी सरकार के खुले विरोध में आ खड़ी हुई। उसका ध्येय हो गया अंग्रेजों से शान्तिमय उपायों द्वारा भारत को मुक्त कराना। क्योंकि मुसलमान अंग्रेजों के साथ थे इसलिये अंग्रेजों ने हिन्दुओं का दमन प्रारम्भ किया। इस दमन के विरोध स्वरूप अनेक हिन्दू युवकों ने सशस्त्र विरोध की ठानी और अनेक क्रान्तिकारी इस कार्य के लिये उठ खड़े हुये।

हिन्दुओं द्वारा सशस्त्र क्रान्ति

इन क्रान्तिकारियों में पहला नाम है महाराष्ट्र के कालपा जिले के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे वासुदेव बलवन्त फड़के का। १८७२ से १८७९ तक इस युवक ने महाराष्ट्र के ७ ज़िलों में निम्न जाति के हिन्दुओं की एक सेना खड़ी कर ली और अंग्रेजी कर्मचारियों में आतंक फैला दिया।

नोट– इतिहास साक्षी है कि तलवार उठा कर हिन्दू समाज की रक्षा करने में सदैव अ–ब्राह्मण और निम्न जाति के लोग ही आगे आये हैं। सिंध में जाट और मेढ़, दक्षिण में मराठे, पूरब में पासी सभी निम्न जातियों में गिने जाते हैं।

इस प्रकार के कार्यों में धन की आवश्यकता पड़ती है। फड़के ने धनवान लोगों के घरों में डाके डालकर धन इकटठा किया तो जन साधारण का उसके प्रति आदर समाप्त हो गया क्योंकि लूट पाट में निर्दोष लोगों पर भी अत्याचार हो जाते हैं। जब वासुदेव मुसलमान पठानों और रोहिलों को मिलाकर एक बड़ी सेना बनाने का षडयन्त्र कर रहा था तभी एक विश्वस्त साथी द्वारा विश्वासघात के कारण पुलिस के हाथ पड़ गया। अन्त में भूखे प्यासे जर्जर देह वासुदेव गिरफ्तार कर लिये गये। नवाब हैदराबाद ने उनकी गिरफ्तारी पर ५०००० रुपये का इनाम दिया। अगस्त १८७९ में मुकदमा चला और वह अदन की जेल में आजन्म कारावास भोगने के लिये भेज दिये गये। १८८३ के प्रारम्भ में वह वहाँ से भाग निकले, फिर पकड़े गये और पीट पीट कर मार दिये गये।

१८९७ में पूना में भयंकर प्लेग फैला। उसकी रोकथाम के लिए रेंड नामक कठोर और कुख्यात अंग्रेज को प्लेग अधिकारी बनाकर भेजा गया। इस आदमी की कार्यशैली की

शिकायत करते हुए लोकमान्य तिलक ने अपने समाचार पत्र केसरी में लिखा : "बीमारी तो एक बहाना है वास्तव में सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है। रैन्ड अत्याचारी है और वह सरकार के कहने पर यह सब कर रहा है। पर यह दमन सदा नहीं चलेगा। रैंड शाही समाप्त होकर रहेगी।"

२२ जून १८९७ को महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक दिवस मनाकर जब सरकारी अधिकारी अपनी बग्घियों में लौट रहे थे दामोदर चाफ़ेकर नामक युवक ने बग्घी में पीछे से रैन्ड को गोली मार दी। उसके पीछे आने वाली बग्घी में एमहर्स्ट नामक अंग्रेज अपनी पत्नी समेत सवार थे। उन्होंने दामोदर को भागते देखा और शोर मचाया तो दामोदर के छोटे भाई बालकृष्ण चाफ़ेकर ने उसको गोली मार दी और अपने एक मित्र भिडे के साथ भाग गये। रैन्ड और एमहर्स्ट की मृत्यु हो गयी। इस घटना के १० मिनट बाद लोकमान्य तिलक को एक संदेश मिला "काम झाले" अर्थात काम हो गया।

चाफ़ेकर बन्धुओं की गिरफ्तारी पर २०००० रु. का इनाम रखा गया। गणेश शंकर द्राविड़ नामक एक व्यक्ति ने जो बालकृष्ण का मित्र था बालकृष्ण को २०००० रुपये के लोभ में गिरफ़्तार करवा दिया।

१८ अप्रैल १८९८ को दामोदर चाफ़ेकर को फाँसी लगी। बालकृष्ण पर एमहर्स्ट को गोली मारने का मुकदमा चल रहा था। सबसे छोटे १८ वर्षीय भाई वासुदेव चाफ़ेकर ने अपने दो मित्रों रानाडे तथा साठे के साथ मिलकर द्राविड़ बन्धुओं को विश्वासघात की सज़ा देने की ठानी। दोनों द्राविड़ बन्धुओं की हत्या कर वासुदेव चाफ़ेकर भी फाँसी चढ़ गये। इस तमाम योजना में लोकमान्य को सहयोग का दोषी मान कर सरकार ने उनको गिरफ्तार कर लिया।

लंदन में महर्षि दयानन्द के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा का बनवाया इण्डिया हाउस भारत के उग्र विचारों वाले देश भक्तों की मानो शरण स्थली बन गया था। लोकमान्य की संस्तुति पर श्याम जी कृष्ण वर्मा ने सावरकर को छात्रवृत्ति दी और लंदन में पढ़ने के लिये बुला लिया।

वहीं लंदन में सावरकर से मदनलाल धींगरा नामक एक भारतीय विद्यार्थी आकर मिला। मदनलाल अमृतसर के एक अंग्रेज भक्त खत्री परिवार के पुत्र थे और बी० ए० करने के पश्चात लंदन पढ़ने आये थे। मदन लाल के पिता के एक मित्र सर कर्ज़न वाइली २० वर्ष भारत में रहने के उपरान्त लन्दन लौट आये थे। वाइली का भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें मजबूत करने में बड़ा हाथ था। १ जुलाई १९०१ को जहाँगीर हाल लंदन में सावरकर के निर्देशन में धींगरा ने कर्ज़न वाइली को गोली मार कर आत्म समर्पण कर दिया। २७ अगस्त १९०१ को उसको फाँसी दी गई। फाँसी के दिन वह बन संवर कर वध स्थल पर गया जैसे शादी करने जा रहा हो। उसकी अंतिम इच्छा थी कि उसके शव को उसके पिता जो अंग्रेज़ों के भक्त थे हाथ न लगायें।

मादाम कामा द्वारा प्रारम्भ किये गये पत्र "बन्देमातरम्" में लाला हरदयाल ने उन्हीं

दिनों लिखा था, "आने वाले समय में जब अंग्रेज़ी साम्राज्य धूल में मिल जायेगा और भारत स्वतंत्र हो जायगा तो मदनलाल के स्मारक हमारे नगरों में चौकों पर स्थापित किये जायेंगे। वे स्मारक हमारी अगली पीढ़ी को इस वीर नरश्रेष्ठ का स्मरण करायेंगे जिसने अपने विश्वास व देश प्रेम की रक्षा के लिये इस सुदूर भूमि में आकर अपने प्राण उत्सर्ग किये।" किन्तु स्वतंत्र भारत के नगर चौकों पर आपको भारत माँ पर प्राण न्यौछावर करने वाले इन व्याघ्र पुरुषों का एक भी स्मारक देखने को नहीं मिलेगा। हाँ, गाँधी, नेहरु, इन्दिरा अथवा हनुमान जैसे वेदज्ञ, शूरवीर पुरुष को बन्दर दिखाने वाली अथवा शिव की काल्पनिक मूर्तियाँ अनेक नगरों में देखने को मिलेगी। कैसा क्रूर उपहास है यह?

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में एक अनुशीलन समिति की स्थापना हुई। सेनापति बापट, होती लाल वर्मा तथा हेमचन्द्र दास विदेश से आकर अरविन्द घोष की इस समिति में शामिल हो गये। यह बम बनाने की विद्या विदेश से लाये थे।

बंगाल में किंग्स फोर्ड नाम का एक मजिस्ट्रेट देश भक्तों को कठोर दंड देने के लिये बदनाम था। समिति ने उसके वध की योजना बनाई। पार्सल में एक बम उसे भेजा गया परन्तु उसने पार्सल खोला ही नहीं और बच गया। समिति ने खुदी राम बोस और प्रफुल्ल चन्द्र बाकी को किंग्स फोर्ड के वध के लिये नियुक्त किया। किंग्स फोर्ड तबादला करवाकर बिहार में मुज़फ्फरपुर आ गया था। इन युवकों ने भ्रमवश उसकी बग्घी के रंग की दूसरी बग्घी में बैठे वकील केनेडी की बम फेंककर हत्या कर दी और भाग निकले। पकड़े गये। ११ अगस्त १९०८ को १७ वर्षीय खुदीराम हाथ में गीता लेकर फाँसी पर झूल गया।

१९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खुदी राम बोस का स्मारक बना। बिहार के सभी नेता उसमें सम्मिलित हुए। जवाहर लाल नेहरु ने उसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया। कदाचित उनकी दृष्टि में खुदीराम बोस का नाम देशभक्तों की सूची में रखने योग्य नहीं था।

मुज़फ्फरपुर में ४० क्रान्तिकारी पकड़कर अलीपुर जेल में डाल दिये गये। इसलिये इसको अलीपुर षडयन्त्र कहा जाता है। इनमें से एक बन्दी नरेन्द्र गोस्वामी मुखबिर बन गया। निश्चय हुआ कि गोस्वामी का गवाही देने से पहले ही वध कर दिया जाय। कन्हाई और सत्येन्द्र वसु दो युवक इस कार्य के लिये तैयार हुए। दो पिस्तौलें कटहल और मछली में छिपाकर जेल में उनके पास पहुँचाई गई। नरेन्द्र गोस्वामी को अलग कोठरी में सुरक्षा दी गई थी। कन्हाई और सत्येन्द्र एक के बाद एक भीषण पेट दर्द का बहाना कर अस्पताल पहुँचे। वहाँ उन्होंने नाटक कर अधिकारियों से जेल के नारकीय जीवन से छुटकारा पाने के बदले में मुखबिर होना स्वीकार कर लिया। उन पर कठोर पाबन्दी कम हो गई। नरेन्द्र भी उनसे मिलने आने लगा। ३१ अगस्त को जब नरेन्द्र सत्येन्द्र के पास आकर बैठा था, सत्येन्द्र ने तकिये के नीचे से पिस्तौल निकाल कर फायर कर दिया। गोली चूक कर पैर में लगी। एक दूसरी गोली खाली गई। अंग्रेज संरक्षक ने उसका हाथ पकड़ना चाहा तो तीसरी गोली उसके हाथ में लगी। नरेन्द्र भाग निकला। कन्हाई और सत्येन्द्र ने उसका पीछा किया। और अंततः उसे मार डाला। दोनों को इस जुर्म में मृत्यु दंड मिला।

२३ दिसम्बर १९१२ को चाँदनी चौक से गुज़रती वाइसराय लार्ड हार्डिंज की गाड़ी पर बम फेंका गया। बम फेंकने वाले रासबिहारी बोस तो जापान चले गये। दूसरे लोग पकड़े गये, १३ अभियुक्तों पर मुकदमा चला। मास्टर अमीचन्द्र, अवध बिहारी, भाई मुकुन्द लाल व बसन्त कुमार विश्वास को फाँसी और लाला हनुमन्त सहाय व बलराज भल्ला को ७ वर्ष के कारावास का दण्ड मिला।

बसन्त कुमार विश्वास की आयु केवल २१ वर्ष थी। फाँसी के लिये जाते समय जब क्रान्तिकारियों की अन्तिम इच्छा पूछी गई तो अवध बिहारी ने कहा "अन्तिम इच्छा यही है कि अंग्रेजी राष्ट्र नष्ट हो जाय।" अंग्रेज़ अफसर ने कहा : "अब यह कहने से क्या होगा? इस अन्तिम समय तो शान्ति से प्राण त्यागो। अवध बिहारी ने कड़ककर कहा : "शान्ति कैसी? मैं तो चाहता हूँ एक प्रलयकारी आग भड़के। उसमें मैं जलूँ, तुम जलो और भारत की गुलामी जल कर मेरा भारत कुन्दन की भाँति निखर कर उठे।" किन्तु अनेक देशभक्तों के बलिदान के बाद स्वतंत्रता प्राप्त भारत को गाँधी नेहरू के अनुयाइयों ने कैसा कुन्दन बनाया यह बताने की अब आवश्यकता नहीं रह गई है। दैनिक समाचार पत्रों में प्रति दिन किसी न किसी आर्थिक घोटाले, देशद्रोहियों द्वारा शत्रु संगठनों से सांठ गांठ, डकैती, बलात्कार, मानव बलि के समाचार पढ़ते-पढ़ते समाज ऊब गया है।

इटावा जनपद के औरैया नामक नगर के डी.ए.वी. स्कूल के एक आर्य समाजी अध्यापक पंडित गेंदालाल दीक्षित लोकमान्य के बड़े भक्त थे। उन्होंने लोकमान्य से प्रेरणा लेकर एक शिवाजी समिति बनाई। सम्पन्न और पढ़े लिखे लोगों से निराश होकर इन्होंने सोचा कि पराक्रमी डाकुओं की दिशा को मोड़कर उन्हें देश भक्ति के कार्यों में लगाया जाय। दीक्षित जी ने एक दूसरी संस्था "मातृवेदी" के नाम से बनाई और उसमें भले लोगों, विद्यार्थियों आदि को शामिल किया और उन्हें देश-धर्म की भक्ति का पाठ पढ़ाने लगे। काकोरी षडयंत्र के प्रेरणास्रोत राम प्रसाद विस्मिल, मुकुन्दी लाल इत्यादि नवयुवकों ने सशस्त्र क्रान्ति के प्रथम पाठ यहीं सीखे थे।

एक दिन ८० आदमियों का यह सशस्त्र गिरोह हिन्दू सिंह नामक व्यक्ति की मुखबिरी पर जंगल में ५०० पुलिस जवानों द्वारा घेर लिया गया। ३५ वहीं मारे गये, ४५ गिरफ्तार हो गये। गेंदा लाल इत्यादि कुछ सदस्यों ने जो उस गिरोह में उस दिन शामिल नहीं थे इन लोगों को किले से छुड़ाने की योजना बनाई। किन्तु फिर मुखबिरी हुई और कुछ लोग पकड़े गये। राम प्रसाद विस्मिल फिर काकोरी काण्ड के बाद ही शासन के हाथ लगे। दीक्षित जी को कुछ साथियों के साथ मैनपुरी जेल में स्थानान्तरण कर दिया गया। उन्हें तपेदिक हो गया था। वह जेल से भाग निकले। २१-१२-१९२० को छद्म रूप में दिल्ली के एक अस्पताल में उन्होंने दम तोड़ दिया।

२० अक्टूबर १९२८ को लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व करते हुए प्रसिद्ध आर्य समाजी लाला लाजपतराय पर पुलिस ने डंडे बरसाये। लाला जी का वृद्ध शरीर उन लाठियों के प्रहार को सहन न कर सका। १७ नवम्बर १९२८

को उनका देहान्त हो गया। लाला जी की मृत्यु पर होने वाली शोक सभा में स्व. चितरंजनदास की धर्मपत्नी माता वासन्ती देवी ने पंजाब के युवकों को चुनौती भरे शब्दों में ललकारा : "मैं जब यह सोचती हूँ कि कमीने और हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को जो इतना वृद्ध इतना आदरणीय और भारत के तीस कोटि नरनारियों को इतना प्यारा था, तब मैं आत्मापमान के भावों से उत्तेजित होकर काँपने लगती हूँ। क्या देश का यौवन और मनुष्यत्व आज जीवित है। क्या यह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सा को, उसकी लज्जा और ग्लानि को अनुभव करता है? मैं इस भारत भूमि की एक स्त्री, मैं इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ। पूर्व इसके कि हमारे प्यारे लाजपत की चिता भस्म ठण्डी हो, भारत का मनुष्यत्व और युवक समाज आगे आए और जवाब दे।"

लाहौर के मजंग मुहल्ले के एक मकान पर क्रान्तिकारियों की केन्द्रीय समिति की बैठक में भगत सिंह के प्रस्ताव पर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस स्काट को जिसने लाठी चार्ज का आदेश दिया था और सांडर्स को जिसने स्वयं लाठी बरसाई थीं वध करने का निर्णय लिया गया। स्काट लाहौर के बाहर था। इसलिये सांडर्स को ही वध करने की योजना बनाई गई।

१७ दिसम्बर १९२८ को दिन के चार बजे आजाद डी.ए.वी. कालिज के सामने की झाड़ियों में आड़ लेकर खड़े हो गये। भगतसिंह और राजगुरु फाटक से कुछ हट कर पीछे खड़े थे। सांडर्स की गतिविधियों पर कुछ दिन से नज़र रखने पर यह बात पता थी कि वह वहाँ से गुज़रने वाला था। सामने जयगोपाल साइकिल लिये ऐसे बैठा था जैसे कि साइकिल ठीक कर रहा हो।

सांडर्स पास के अपने दफ्तर से निकला, मोटर साइकिल स्टार्ट की और कुछ आगे बढ़ा ही था कि जयगोपाल ने जो उसे पहचानता था इशारा किया। राजगुरु ने तुरन्त आगे बढ़कर सांडर्स की कनपटी के पास रख कर पिस्तौल दाग दी। सांडर्स नीचे गिरा तो भगतसिंह ने मृत्यु निश्चित करने के लिये पूरी पिस्तौल उस पर खाली कर दी। किसी की हिम्मत इन लोगों को रोकने की न पड़ी। यह लोग मजंग पहुँच गये।

दूसरे दिन ही लाहौर की दीवारों पर हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना की तरफ से पोस्टर चिपके मिले जिनमें सेना ने सांडर्स हत्याकांड की जिम्मेदारी ली थी और हत्या के कारण पर प्रकाश डाला था। अंत में अत्याचारी शासन को सावधान किया था।

लाहौर में पुलिस का जाल फैल गया था। जासूस हर स्थान पर कड़ी चौकसी कर रहे थे। क्रान्तिकारियों का लाहौर से निकल जाना आवश्यक था। चन्द्रशेखर आजाद मथुरा के पण्डे के रूप में सिर मुंडाये, चंदन लगाये साधुओं के रूप में दो चार क्रान्तिकारियों को साधु के रूप में साथ लिये सफलतापूर्वक निकल गये।

सरदार भगतसिंह ने दाढ़ी मूँछ मुंडा दी। सूट बूट और हैट पहना, क्रान्तिकारी भगवती भाई की धर्म पत्नी वीरांगना दुर्गा भाभी ने मेकअप किया, ऊँची एड़ी की सैन्डिल पहनी, अपने छोटे से पुत्र को गोद में लिया और भगतसिंह के साथ हावड़ा मेल के फर्स्ट क्लास के डिब्बे में जा बैठीं। साथ में भारी बक्सों पर किसी अफसर का बड़ा नाम लिखा

था। सब लोग सकुशल कलकत्ता पहुँच गये। वहाँ बंगाल के क्रांतिकारियों से भेंट हुई। निश्चय हुआ कि दिल्ली जाकर बमों की फैक्ट्री चालू की जाय जिससे पंजाब और उत्तर प्रदेश में उनकी सप्लाई की जा सके। यतीन्द्रनाथ दास इस कार्य का विशेषज्ञ था।

किन्तु दिल्ली में यह निश्चय किया गया कि असेम्बली में बम फेंककर संसार का ध्यान भारत में होने वाले अंग्रेज़ी अत्याचारों की ओर दिलाया जाय। गिरफ्तारी देकर वक्तव्यों द्वारा अपनी बात कही जाय। अंततः भगतसिंह की ज़िद पर यह कार्य उन्हें और बटुकेश्वर दत्त को सौंपा गया। ८ अप्रैल १९२९ को इन दोनों ने असेम्बली में बम दागे और पर्चे फेंके। यह लोग चाहते तो साफ बच कर निकल सकते थे। मगर इन्होंने तो गिरफ्तार होने का निश्चय ही किया हुआ था। वही राजपूती शान ! दोनों को आजीवन कारावास की सज़ा मिली।

सुखदेव लाहौर वापिस चले गये थे। वहाँ बम बनाने की फैक्ट्री लगाकर बम बनाने के लिये लोहे के खोलों का आर्डर दिया जिसका भेद खुल गया। फैक्ट्री पकड़ी गयी। यह बम वैसे ही थे जैसे असेम्बली में फेंके गये थे। फिर तो धीरे-धीरे सभी गिरफ्तार हो गये। कुल ३२ लोग अपराधी घोषित हुये। उनमें से ७ सरकारी गवाह बन गये। नौ भागे हुए थे। शेष १६ पर अभियोग चला। जयगोपाल और हंसराज बोहरा पुलिस की यातनाओं से आतंकित होकर मुखबिर बन गये। सांडर्स हत्या का पूरा भेद खुल गया।

जेल में दुर्व्यवहार के विरुद्ध बंदियों ने अनशन कर दिया और मुकदमें की कार्यवाही का बहिष्कार कर दिया। यतीन्द्र नाथ दास ६२ दिन की भूख हड़ताल के बाद १३ दिसम्बर को शहीद हो गये।

७ अक्टूबर १९३० को भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा सुना दी गयी। सात को आजीवन कारावास। दो को सात वर्ष का कारावास हुआ और तीन छोड़ दिये गये।

सशस्त्र क्रान्ति और गाँधी जी

अंग्रेज समझते थे कि हिंसा का भय मुसलमानों से ही है। उनको उन्होंने सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता और दूसरे प्रलोभन देकर निष्क्रिय कर दिया था। वैसे भी मुसलमानों को हिन्दू बहुल भारत को आजाद कराने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनका ध्येय तो सम्पूर्ण भारत की प्रजा को मुसलमान बनाना था। स्वतंत्र हिन्दू बहुल भारत में इस कार्य को अंजाम देना अंग्रेज शासित भारत की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन हो जायगा। ऐसा उनका विचार था। मुस्लिम राज्य में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुये थे उनका अपराध बोध हिन्दुओं से अधिक मुसलमानों पर हावी था। इसलिये उन्हें भय था कि हिन्दू भारत में उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जायगा। अनुशासित और संगठित मुस्लिम समाज ने अपने नेताओं की बात मानकर स्थिति से समझौता कर लिया था। उनका अंग्रेज शासित भारत के इस्लामीकरण के लिये तबलीग (धर्मान्तरण) का कार्य बेरोक टोक चल रहा था।

हिन्दू बहुल स्वतंत्र भारत की अपेक्षा अंग्रेजों का शासन उन्हें इस्लाम के लिये हितकारी प्रतीत होता था।

मुस्लिम मौलवियों और मुल्लों का धर्मान्तरण अभियान जिस धड़ल्ले के साथ चल रहा था उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा डा० अब्दुल्ला सुहरावर्दी के एक प्रतिवेदन में की गयी है। सुहरावर्दी किसी समय सी.आर. दास की स्वराज पार्टी के प्रमुख नेता और इण्डियन सेंट्रल कमेटी के सदस्य रह चुके थे : "धर्म-प्रसार का क्रम, जिसने भारत में मुस्लिम शासन की समाप्ति के बाद नवशक्ति, स्फूर्ति और प्रेरणा अर्जित की, बे-रोक-टोक निरन्तर चल रहा है। हर वर्ष इस्लाम में धर्मान्तरित लोग आते हैं। वे तथा उनसे पूर्व-धर्मान्तरितों के वंशज सर्वाधिक उत्साही अनुयायी और समर्थक है- वे हज़ारों की संख्या में मक्का पहुँचते हैं, जो इस्लाम का गढ़ और जन्म भूमि है, और वार्षिक हज के अनुशासन की तप्त भट्टी में तप कर वे शुद्ध और पवित्र होकर भारत लौटते हैं। अरब के रीति रिवाजों को ओढ़ने के बाद वे हिन्दुओं से उतने ही अलग-थलग दीख पड़ते हैं, जितने कि हिन्दू चीनियों और यहूदियों से[(१७)] जन्मदर में वह हिन्दुओं से कहीं आगे थे। हिन्दू बहुल आसाम में बंगाल के मुस्लिम बहुल इलाकों से घुसपैठिया ला लाकर वहाँ बसाये जा रहे थे। सब मिलाकर परिस्थितियाँ भारत के इस्लामीकरण के अनुकूल थीं। इस कारण इन क्रान्तिकारियों में कट्टर आर्य समाजी राम प्रसाद बिस्मिल के शिष्य अशफाकुल्लाह को छोड़ कर दूसरा मुस्लिम नाम नहीं मिलता। अशफाकुल्लाह को मुसलमानों ने बहुत समझाया। जब वह नहीं माना तो उन्होंने एक प्रकार से उसे भुला ही दिया। मुस्लिम लेखकों की रचनाओं में भारत की आजादी के लिये लड़ने वाले अनेक मौलानाओं के नाम तो मिलेंगे किन्तु अशफाकुल्लाह का नाम नहीं मिलेगा। क्योंकि मौलानाओं की तरह अशफाकुल्लाह का योगदान भारत के इस्लामीकरण में नहीं था।

हिन्दू युवकों में हिंसात्मक क्रान्ति के उभरते जोश, भारत के अनेक प्रान्तों में उनकी बढ़ती संख्या और गतिविधियाँ, और सर्वसाधारण में उनके प्रति बढ़ती श्रद्धा और प्रशंसा से अंग्रेज सशंकित हो उठे। इसकी काट का एक मात्र उपाय था अहिंसावादी गाँधी जी को सक्रिय कर इस ज्वाला पर ठंडा पानी डालना। गाँधी जी के हिन्दू धर्म की अहिंसा, भावुकतापूर्ण अव्यवहारिकता, निवृत्तिवाद, और शत्रु के प्रति उदारता रूपी ठण्डे जल की वह धारा थी जिससे हिन्दू उग्रवाद की ज्वाला को बुझाया जा सकता था। दस फरवरी १९३० को गाँधी जी जेल से छोड़ दिये गये और लार्ड इरविन के साथ बड़े शान्त वातावरण में उनकी बातचीत शुरू हो गयी।

"सीता का छिनारा" नामक पुस्तक की प्रतिक्रिया के रूप में रंगीला रसूल पुस्तक के लेखक/प्रकाशक महाशय राजपाल की हत्या इल्मुददीन नामक एक मुस्लिम ने उस समय की थी जब वह न्यायालय से दोष-मुक्त घोषित हो बाहर आ रहे थे। महात्मा गांधी ने असेम्बली बम कांड पर विचार प्रकट करते हुये कहा : जिस मनोवृत्ति ने राजपाल के हत्यारे को हत्या करने के लिये प्रेरित किया था वही मनोवृत्ति बम फेंकने के पीछे भी काम कर रही है। इस

प्रकार गाँधी जी ने एक साम्प्रदायिक हत्यारे इल्मुद्दीन और विदेशी सरकार के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के दूत भगतसिंह आदि को एक ही धरातल पर खड़ा कर दिया।(१७क)

डा० सीतारमैया ने अपने काँग्रेस के इतिहास में इस बात को स्वीकार किया है कि उस समय भारत में भगतसिंह तथा उसके साथी महात्मा गाँधी से कम प्रसिद्ध न थे। जनता को यह विश्वास था कि इस सहानुभूति के वातावरण का लाभ उठाकर गाँधी जी अपनी बातचीत की सबसे पहली शर्त भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी को हटाने के रूप में करेंगे और यह लगता था कि उस अवस्था में इन तीनों क्रान्तिकारियों के प्राण बच जायेंगे। परन्तु भारत के करोड़ों लोगों की आशाओं पर वज्रपात हुआ जब गाँधी जी ने कहा, "मैं इन हिंसावादियों की सज़ा कम करने की माँग को नीचा समझता हूँ।"(१८)

किन्तु गाँधी जी के इस व्यवहार में आश्चर्यजनक कुछ भी नहीं है। हिन्दू मुस्लिम एकता की मृगमरीचिका के लिये वह सभी कुछ न्योछावर करने को तैयार थे जैसा कि हम आगे बतायेंगे। मालावार में अल्पसंख्यक ५००० हिन्दुओं का वध और १५००० का बलात धर्मान्तरण करने वाले अनेक पाशविक अत्याचारों के दोषी मोपला मुसलमानों को धर्म भीरु, वीर और उनके अत्याचारों को धर्म युक्त धर्म युद्ध कहने वाले(१९) श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद के प्राणों की भिक्षा की अंग्रेजी सरकार से माँग करने वाले और मौलाना अब्दुल बारी को जो श्रद्धानन्द के विरुद्ध विष वमन करते रहे थे ईश्वर का निर्दोष पुत्र बताने वाले(२१) अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण के लिये आमंत्रित करने वाले(२२) गाँधी जी से और आशा ही क्या की जा सकती थी?

नेहरु की मृत्यु पर कुरान के पाठ पर घोर आपत्ति की गई। 10.6.94 के "दावत" में शक्स नर्वाद उस्मानी ने उन मौलवियों की घोर निन्दा की जिन्होंने अंतिम संस्कार से पहले और उसके समय कुरान के पाठ किये। उन्होंने डा. जाकिर हुसैन, शेख अब्दुल्ला और हाफिज मौहम्मद की भी निन्दा इसलिये की कि वह उस समय कुरान का अपमान खड़े हुये देखते रहे। यदि उन्हें नेहरू की आत्मा की शान्ति की इतनी ही चिन्ता थी तो उन्हें उनके जीवन काल में उनको कलमा पढ़ कर मुसलमान हो जाने के लिये राजी कर लेना चाहिये था। इस प्रकार वह उनकी आत्मा के लिये स्वर्ग में स्थान सुनिश्चित कर सकते थे। क्योंकि ऐसा नहीं किया गया था 20.6.64 के "दावत" में देवबन्द के मौलाना तैयब ने एक फतवा जारी किया जिसमें कहा गया कि जिन मौलवियों ने उस समय कुरान पाठ किया था उन्हें इस्लाम का ज्ञान नहीं था और वह कुरान का अपमान करने के दोषी थे।

१८

भावी पूर्वी पाकिस्तान की झाँकी

बंगाल में जो क्रान्तिकारी कार्यवाही हो रही थी उसको देखते हुये अंग्रेजी शासन ने यह निश्चय किया कि मुस्लिम बहुल बंगाली क्षेत्रों को पास के दूसरे क्षेत्रों से मिलाकर अलग प्रान्त बना दिया जाय। इस नीति के अधीन लार्ड कर्जन ने २० जुलाई १९०५ को बंगाल विभाजन की घोषणा की। एक प्रकार से भारत के विभाजन से ४२ वर्ष पहले यह उसका छोटे पैमाने पर परीक्षण था।

बंगाल में हिन्दू मुस्लिम संस्कृति में अभी कोई भेद उत्पन्न नहीं हुआ था। भाषा और लिपि एक थी। पहनावा एक था। भोजन एक था। इसलिये भावुक हिन्दू बंगाली मुस्लिम से अभी भी बंधुत्व और स्नेह की एक तरफ़ा भावना से जुड़ा था। (पढ़ें तस्लीमा की पुस्तक लज्जा) किन्तु बंगाली मुसलमानों का धर्म बदल गया था। भले ही वह धर्म परिवर्तन बलात्कार पूर्वक हुआ हो या सूफ़ियों द्वारा, बंगाली मुसलमानों का मस्तिष्क इस्लामी हो चुका था। ऐसी दशा में काफ़िर बंगालियों से वह उतना ही दूर हो चुके थे जितना अरब निवासी मुसलमान, हिन्दू बंगालियों से दूर थे। फलस्वरूप क्रान्तिकारियों में हम एक भी मुस्लिम नाम नहीं पाते। इसी प्रकार बंग भंग विरोधी आन्दोलनों में कोई महत्वपूर्ण मुस्लिम नाम देखने को नहीं मिलता।

आश्चर्य की बात यह है कि जैसे १८५७ के विद्रोह को जिसका एक मात्र उद्देश्य भारत को फिर दारुल इस्लाम (इस्लाम का स्थान) बनाना था हिन्दू–मुस्लिम सहयोग से लड़ा गया प्रथम स्वातंत्र युद्ध कहा जाता है उसी प्रकार बंग भंग आन्दोलन को भी हिन्दू मुसलमानों का संगठित अंग्रेजी विरोध चित्रित किया जाता है। मुसलमानों का सहयोग पाने के लिये कांग्रेस सदैव ही भारत की स्वतंत्रता के लिये किए गये आन्दोलनों में मुसलमानों के अपूर्व त्याग और बलिदान की बात करती रही है जिससे वह दोनों जातियों के प्रतिनिधित्व का दावा सिद्ध कर सके। वास्तविकता बिल्कुल दूसरी है। मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिल कर अंग्रेजों का विरोध केवल उसी समय और उसी सीमा तक करते थे जब उनको इसके परिणामस्वरूप भारत को दारुल इस्लाम बनाने में सहायता मिलती हो। यह बात आगे और भी स्पष्ट हो जायगी। राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों के लिये अनिवार्य था कि वह मुसलमानों में स्वाभाविक काफिर विरोधी घृणा को भड़कायें और भूतकाल में उनके द्वारा हिन्दुओं पर शासन करने के स्वर्णयुग की याद दिलायें।

ढाका में एक विशेष बैठक बुलाकर कर्जन ने घोषणा की कि पूर्वी बंगाल एक मुस्लिम प्रान्त होगा। उसने कहा :

"विभाजन की प्रस्तावित योजना से ढाका एक नये और आत्मनिर्भर प्रान्त का केन्द्र

और सम्भवतः राजधानी बन जायगा, जिसका निश्चय ही यह प्रभाव होगा कि इस प्रकार गठित प्रान्त में संख्या और उच्चतर संस्कृति के कारण वहाँ के (मुसलमान) निवासियों की वाणी को प्रमुखता मिलेगी। इससे पूर्वी बंगाल में मुसलमान ऐसी एकता प्राप्त कर सकेंगे जो उन्होंने पुराने मुसलमान वाइसरायों और बादशाहों के समय से लेकर अब तक प्राप्त नहीं की। इससे उन परम्पराओं के उत्थान को भी भारी बल मिलेगा जो इतिहास के विद्यार्थियों के अनुसार पूर्वी बंगाल राज्य से जुड़ी हुई थीं।"(२३)

पाठक ध्यान दें। एक काँग्रेस प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा उत्तर पूर्वी भारत को ईसाई देश बनाने की घोषणा इस घोषणा के कितनी समानान्तर है?

बंगाल के गवर्नर सर बैमफील्ड फुलर ने जब कहा कि "उसकी दो पत्नियाँ है एक हिन्दू और दूसरी मुसलमान किन्तु उसकी प्रिय पत्नी तो मुसलमान ही है"(२४) तो मुसलमानों को वह संकेत मिल गया जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। उनका स्वाभाविक काफ़िर विरोधी जुनून जाग पड़ा। फिर तो वही हुआ जो काफ़िरों के साथ सदैव होता आया है।

एक लाल पर्चा सहस्रों की संख्या में बंगाल में बाँटा गया। इसमें मुसलमानों को हिन्दू स्कूलों, दुकानों और नौकरियों के बहिष्कार की प्रेरणा दी गयी थी। अति उत्तेजनात्मक शब्दों में उनसे कहा गया था कि उनकी दरिद्रता के कारण हिन्दू हैं और उन्हें दोज़ख़ (नरक) भेज देना चाहिए।(२५)

पूर्वी बंगाल में मुल्लाओं ने घूम-घूम कर मुस्लिम जनता में यह प्रचार किया कि इस्लाम का नवोदय हो रहा है। अंग्रेजी सरकार मुसलमानों के साथ है और तीन महीनों के लिये न्यायालय निलम्बित कर दिये गये हैं। हिन्दू अफ़सरों के हुक्म मानने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू दुकानें लूटी जा सकती हैं और औरतें उठाई जा सकती हैं।(२६)

इस दुष्प्रचार के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर हिन्दू विरोधी दंगे हुए। मूर्तियाँ तोड़ी गईं, मंदिरों को अपवित्र किया गया, दुकानें लूटी गयीं और हिन्दू स्त्रियों का अपहरण किया गय।।

यह सब इतने खुले और व्यापक तौर पर हुआ कि एक मुस्लिम मजिस्ट्रेट को भी यह कहना पड़ा कि इन बर्बरताओं का स्वदेशी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है और यह सब हिन्दुओं के विरुद्ध बिना किसी उत्तेजनात्मक कार्यवाही के ही किया गया है।(२७) बाद में अदालत में गवाही देते समय बताया गया "भीड़ को एक पर्चा बाँटा गया था और बताया गया था कि ब्रिटिश सरकार तथा ढाका के नवाब बहादुर ने ऐसे आदेश प्रसारित कर दिये हैं कि हिन्दुओं को लूटने और सताने पर कोई व्यक्ति दण्डित नहीं किया जायगा।"(२८)

मैलनधत में हुए दंगों की रिपोर्ट देते समय जमालपुर के एस.डी.ओ. (परगनाधीश) मिस्टर वार-ने-विले ने लिखा था "कुछ मुसलमानों ने ढोल पीट पीट कर घोषणा की थी कि शासन ने हिन्दुओं को लूटने की अनुमति दे दी है।"(२९)

दीवानगंज के दंगों के अभियोगों की सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट मिस्टर बेल ने

भी यही विचार व्यक्त किये कि स्वदेशी आन्दोलन दंगों का कारण नहीं था। दीवानगंज के दूसरे मुस्लिम मजिस्ट्रेट ने अपने निर्णय में लिखा : "दंगा करने के लिये कोई उत्तेजक कारण नहीं था। प्रत्यक्ष रूप से उनका एक मात्र उद्देश्य संगठित रूप से हिन्दुओं पर अत्याचार करना था।"(३०)

परगना मजिस्ट्रेट वार–ने–विले ने सिल्चर अपहरण काण्ड के निर्णय में कहा: "(हिन्दुओं पर) इन अत्याचारों का कारण वह सार्वजनिक घोषणा थी जिसमें यह कहा गया था कि सरकार ने हिन्दू विधवाओं से मुसलमानों को निकाह (विवाह) करने की छूट दे दी है।"(३१)

मांचेस्टर गार्जियन के संवाददाता ने ४–३–१९०७ को कोमिल्ला में दंगों का आँखों देखा वर्णन देते हुए लिखा : "------कत्ल हुए, मन्दिर अपवित्र किये गये, दुकानें लूटी गईं, बहुत सी हिन्दू विधवायें अपहरण की गयीं, स्त्रियाँ सारी–सारी रात तालाबों में छुपी रहीं और सामूहिक बलात्कार बढ़ गये।"(३२)

उस समय शासन का व्यवहार हिन्दुओं के साथ कितना अन्यायपूर्ण था उसके विषय में भविष्य में होने वाले ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने अपनी पुस्तक में लिखा है : "मुसलमान जब घर की छतों पर से प्रहार करने का नारा लगाते हैं तो उन्हें चेतावनी भी नहीं दी जाती, हिन्दू जब अपनी शिकायतों की फुसफुसाहट भी करते हैं तो उन्हें अपराधी मान लिया जाता है।"(३३)

कर्ज़न के पश्चात मिन्टो भारत के वाइसराय होकर आये। उन्होंने अलीगढ़ कालेज के प्रिन्सिपल आर्चीबाल्ड की मार्फ़त शिमला में एक मुस्लिम प्रतिनिधि मण्डल से मिलने का ड्रामा रचा। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व खोजा मुस्लिम आगा खाँ कर रहे थे। वह भारत के निवासी भी नहीं थे और अंग्रेजी सरकार के जाने माने पिटठू थे। अक्टूबर १९०६ में मिन्टो द्वारा इस प्रतिनिधि मण्डल की सभी माँगों, प्रथक निर्वाचन मण्डल और आबादी के अनुपात से अधिक मुस्लिम वर्चस्व के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया।

इस विश्वासघात के लिये आगा खाँ को एक देशीय रियासत के शासक का सम्मान, तोपों की सलामी जैसे उपहार दिये गये।(३४) नवाब सलीमुल्ला खाँ को एक लाख पौण्ड का ऋण बहुत ही कम ब्याज की दर पर दिया गया जिससे वह अपने दिवालिये पन से छुटकारा पा सके।(३५)

चतुर अंग्रेजों ने बाद में बंग भंग के लिये कर्ज़न की खूब आलोचना की मानों वह ब्रिटिश शासन का निर्णय न होकर कर्जन का व्यक्तिगत निर्णय हो। यह तो ऐसी ही बात थी कि चोर से कहे चोरी कर और साहू से कहे जाग। वास्तव में अंग्रेजों का ध्येय प्राप्त हो गया था। लगभग ४० वर्ष पश्चात बनने वाले पूर्वी पाकिस्तान की पक्की आधारशिला रखी जा चुकी थी। अब हिन्दुओं की आँखें पोंछकर उनको तसल्ली देना शेष था। छह वर्ष बाद १९११ ई. में जार्ज पंचम के दिल्ली दरबार के समय बंग भंग रद्द करने की घोषणा कर दी गई। मुसलमानों के मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि हिन्दू बंगालियों ने

अपनी संख्या का लाभ उठाकर आन्दोलन द्वारा शासन को बंग भंग रद्द करने के लिये मजबूर कर दिया जिससे उनके अधिकारों का हनन हुआ है। इस प्रकार बंग भंग और उसके रद्द करने की घोषणा दोनों ही हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य उत्पन्न करने में सहायक हुए।

१९०६ में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। अध्यक्ष थे नवाब सलीमुल्ला और प्रस्ताव के प्रमुख अनुमोदन करने वाले संस्थापक मेम्बर थे हकीम अजमल खाँ जो गाँधी जी के विश्वसनीय राष्ट्रीय मुस्लिम तथा १९२१ में कांग्रेस के अध्यक्ष बने। लीग का घोषित ध्येय था मुसलमानों को अंग्रेजी सरकार के प्रति निष्ठावान रखना और मुस्लिम हितों की रक्षा करना।[३६]

१९१६ से १९४८ तक गाँधी जी भारतीय राजनीति पर छाये रहे। उनके आने के समय भारत की राजनीति पर लोकमान्य तिलक और लाजपतराय जैसे उग्र हिन्दू राष्ट्रवादी लोग छाये हुये थे। १९४७ में भारत का एक तिहाई भाग क्यों और कैसे मुसलमान हो गया, इसके कारणों का विश्लेषण करने में हम गाँधी जी की उपेक्षा नहीं कर सकते। सम्भव है गाँधी जी की यह समालोचना उनके कुछ भक्तों को अप्रिय लगे किन्तु इतिहास क्रूर होता है। वह किसी को क्षमा नहीं करता।

इस्लाम में मजहब को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। इसलिये देव बन्दी हो या नदवा या रामपुरी सभी धार्मिक स्कूलों (मदरसों) में मुस्लिम बच्चों को इस्लाम के राजनीतिक पक्ष में पारंगत कराया जाता है : अल्लाह की हुकूमत, इस्लामी राज्य के सिद्धान्त और खूबियाँ, औरंगजेब इत्यादि कट्टरवादी शासकों और विजेताओं को गौरवान्वित और अकबर जैसे उदार शासकों की निन्दा करना, सरहिन्दी, वलीउल्लाह और मौदूदी जैसे इस्लाम के भारतीय पुनरुद्धार कारों को महिमा मंडित करना। दीनी शिक्षा संस्थानों (मदरसों, मकतबों, इस्लामी स्कूलों जहाँ धार्मिक शिक्षा दी जाती हो) में निर्धारित पुस्तकों को देख कर ही किसी असंदेही व्यक्ति को इन देवबन्दी, नदवा, राम पुरी, जमाते-इस्लामी स्कूलों में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा का अर्थ और महत्व समझ में आ सकता है। (डा. एम.ए.करन्दीकर इस्लाम-336-337)

११

गाँधी जी का प्रवेश (मुस्लिम तुष्टिकरण प्रारम्भ)

गाँधी जी के १९१६ में भारतीय राजनीति में प्रवेश के समय हिन्दू समाज सुधार आन्दोलन और हिन्दू के सजग प्रहरी के रूप में आर्य समाज का उस समय का इतिहास उसका स्वर्ण युग कहा जाता है। श्रद्धानन्द एक तेजस्वी कर्मयोगी के मानो साक्षात स्वरूप थे। गाँधी जी अफ्रीका में उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल की चर्चा सुन चुके थे। उनकी कर्मठता और संगठन शक्ति पर वह मुग्ध थे। भारत आकर वह तुरन्त गुरुकुल देखने गये और श्रद्धानन्द को कांग्रेस में ले आये।

आर्य समाज को मुसलमान शत्रु के रूप में देखता था। उसके दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि आर्य समाज सभी मत मतान्तरों के अन्ध विश्वासों और अवैज्ञानिक बातों को लेकर उनके धर्माचार्यों को सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिये ललकार रहा था। इन शास्त्रार्थों में इस प्रकार की बातों का मंडन करना असम्भव होता था। आर्य समाज के अरबी फारसी के विद्वानों ने कुरान इत्यादि का गहन अध्ययन किया हुआ था। ऐसे बौद्धिक चैलेंज का सामना इस्लाम को पहले कभी नहीं झेलना पड़ा था। दूसरी बात यह थी कि जिन सुधारों का हिन्दू समाज में आर्य समाज प्रचार कर रहा था उन सुधारों के चलते हिन्दुओं का धर्मान्तरण कठिन होता जा रहा था। पीरों मज़ारों पर से लोगों की श्रद्धा घट रही थी। मौलवियों से गंडे ताबीज लेने वाले कम हो रहे थे। बाल विवाह के विरोध और विधवा विवाह की अनुमति द्वारा विधवाओं की संख्या कम हो रही थी। धर्मान्तरण न केवल घट रहे थे अपितु विपरीत दशा में होने प्रारम्भ हो गये थे।

गाँधी जी ने अपनी आत्म कथा में स्वीकार किया है कि महाराज हरिश्चन्द्र के नाटक को अपने बचपन में देख कर वह इतने प्रभावित हुये थे कि वर्षों तक मन ही मन उसको दोहराते रहते थे। हरिश्चन्द्र उनके आदर्श पुरुष थे। हरिश्चन्द्र की हिन्दू साहित्य में बड़ी प्रशंसा की गई है। उन्होंने एक ब्राह्मण को दिये हुये वचन को पूरा करने के लिये न केवल अपना राज्य उसको दे दिया था अपितु अपने किशोर पुत्र, पत्नी और स्वयं को भी दासता में बेच दिया था। यह कथा अनेक दूसरी हिन्दू गाथाओं की भाँति एक भावुकतापूर्ण अव्यवहारिक राजनीति को महिमामण्डित करती है, जिसका वास्तविक अंत दासता में होता है। किसी भी यथार्थवादी शासक के लिये ऐसा आचरण अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता।

गाँधी जी के दूसरे आदर्श पुरुष ईसा मसीह थे। उनका "सरमन आन द माउन्ट" सुनते सुनते उनका अश्रुपात होने लगता था। ईसा मसीह के अनुयाइयों ने ईसा को अपनी राजनीति में स्वीकार न कर उनकी अहिंसा के विपरीत व्यवहार किया है। गैर ईसाइयों के धर्मपरिवर्तन

के विषय में उनका व्यवहार सदैव क्रूरता, लोभ और कपट पूर्ण रहा है। इस प्रकार गाँधी जी के दोनों आदर्श पुरुष राजनीतिक क्षेत्र में नितांत अव्यवहारिक माने जायेंगे। गाँधी जी की हिन्दू मुस्लिम एकता की सम्पूर्ण राजनीति उन्हीं अव्यवहारिक महापुरुषो पर टिकी है।

मौहम्मद साहब संसार के सर्वाधिक सफल, व्यवहारिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक महापुरुष नेता माने जाते हैं। उनकी मृत्यु के १२६४ वर्ष बाद आज भी संसार के लगभग १०० करोड़ व्यक्ति उनकी शिक्षाओं का अपने दैनिक जीवन में अक्षरशः पालन करने का कठिन प्रयास करते हैं। ईसा मसीह और गौतम बुद्ध की गिनती ससार के अत्यंत महान किन्तु असफल महापुरुषों में की जाती है। उनके अनुयाइयों ने उनकी शिक्षाओं को अव्यवहारिक समझकर कभी का त्याग दिया है। वह केवल उनके नाम के साथ आध्यात्मिक रिश्ता कायम किये हुए हैं। गाँधी जी की अहिंसा और नैतिकता को तो उनके अनुयाई उनकी मृत्यु से पहले ही कब्र में दफना चुके थे। केवल राष्ट्रीय एकता के बहाने मुस्लिम तुष्टिकरण की गाँधी नीति को ही वह स्वार्थवश पकड़े हुये हैं।

बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के मन के कोने में उच्च आकांक्षा और वासना के बीज सदैव रहते आये हैं। गाँधी जी भी अपवाद नहीं थे। यदि उनके मन के किसी कोने में हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी, ईसा जैसे अहिंसावादी बनने की कामना रही हो जो केवल हिन्दू तथा ईसाईयों के पूज्य न होकर हिन्दू मुस्लिम ईसाई इत्यादि विश्व के सभी धर्मों के अनुयाइयों का पूज्य हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। उनकी इस कामना की पूर्ति में विघ्न डालने वालों को गाँधी जी ने कभी क्षमा नहीं किया भले ही वह क्रान्तिकारी हों, तिलक, श्रद्धानन्द, सुभाष हों अथवा आर्य समाज और हिन्दू महासभा हों। उनकी इस कामना में विघ्न डालने वाला सत्य सत्य नहीं था। कामना को पूर्ण करने के लिये वह हिंसा और झूँठ को देखा अनदेखा भी करने में संकोच नहीं करते थे। मोपला विद्रोह, निजाम हैदराबाद द्वारा आर्य समाज के निष्कपट अहिंसात्मक आदर्श सत्याग्रह के प्रति उनका विरोध, सुभाष के कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये चुनाव में विजय पर उनका आक्रोश, श्रद्धानन्द, दयानन्द और सत्यार्थ प्रकाश पर उनका अन्यायपूर्ण प्रहार इसके ज्वलंत प्रमाण है। आर्य समाज के विषय में हम आगे चल कर विचार करेंगे।

लाला लाजपतराय तो दयानन्द को अपना गुरु और आर्य समाज को अपनी माता ही कहा करते थे। वह भी श्रद्धानन्द और लोकमान्य की भाँति गाँधी जी के भयंकर आकर्षण से कांग्रेस में बने रहे। किन्तु यह तीनों हिन्दू भारत के इस्लामीकरण की किसी प्रकार भी उपेक्षा करने वाले नहीं थे।

तिलक काँग्रेस पर इस कदर छाये हुये थे कि १९०५ के बनारस अधिवेशन में जब लोकमान्य बोलने को खड़े हुए तो जिस प्रकार जनता उनके अभिनन्दन में पागल हो उठी वह उनकी लोकप्रियता का अद्‌भुत प्रदर्शन था। फिरोजशाह मेहता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और गोपालकृष्ण गोखले जैसे नरम दल के नेता दर किनार कर दिये गये थे। लोकमान्य की सहानुभूति और सहायता क्रान्तिकारियों को सदैव उपलब्ध रहती थी। शिवाजी उनके

आदर्श पुरुष थे। गणेशोत्सव और शिवाजी से सम्बन्धित कार्यक्रमों द्वारा वह हिन्दुत्व की शक्ति को संगठित कर रहे थे। वह मुसलमानों के शत्रु तो न थे किन्तु हिन्दुत्व की बलि देकर किसी को प्रसन्न करना या सहायता खरीदना उनके स्वभाव में कतई नहीं था। फिर भी साधारण मुस्लिम उनसे रुष्ट नहीं थे। बम्बई के एक साप्ताहिक "रस्त गफ्तार" के अनुसार : "शोलापुर में इस वर्ष (१८९६) गणपति विसर्जन समारोह में मुसलमान सहर्ष शामिल हुए। नासिक में हिन्दू और मुसलमान मिलकर गणपति को विसर्जन के लिये ले गये और शोभा यात्रा का नेतृत्व एक मुसलमान ने किया। शिवाजी जन्म दिवस समारोह में भी अनेक मुसलमानों ने भाग लिया।" १९०५, १९०६ के लगभग लोकमान्य की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई थी कि नरम दल नेताओं ने कांग्रेस का अगला अधिवेशन नागपुर से बदलकर सूरत में इस विचार से रखा कि वहाँ गरम दल वाले लोगों का जिनमें तिलक, लाजपतराय, और विपिन चन्द्रपाल मुख्य थे प्रभाव कम होगा।

गाँधी जी अपने अहिंसा और सविनय असहयोग से अफ्रीका में अंग्रेजों को परास्त कर चुके थे। उन्होंने इस कार्यशैली को एक अमोघ हथियार समझ लिया था। वह विश्व में इस नये हथियार को आविष्कार करने और नैतिक बल को राजनीति में मान्यता दिलाने वाले एक युग पुरुष के रूप में प्रसिद्धि पाने लगे थे। भारत में उन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपने इसी हथियार का उपयोग कर भारत को अंग्रेजों के चक्रवर्ती साम्राज्य से आज़ादी दिलाने का मन बना लिया। इस रक्तहीन युद्ध में उनकी विजय उन्हें निश्चय ही इतिहास में ईसा मसीह और बुद्ध के समकक्ष लाकर खड़ा कर देती यह असंदिग्ध था। किन्तु भारत अफ्रीका नहीं था। भारत १००० वर्ष तक मुस्लिम शासन में दारुल इस्लाम रह चुका था। यहाँ इस्लाम कुफ्र के विरुद्ध युद्धरत था तथा हर सम्भव उपाय से उसको दुबारा दारुल इस्लाम बनाने के लिये कटिबद्ध था। वह अब शासन में तो नहीं था किन्तु हिन्दुओं के विरुद्ध शक्तिशाली अंग्रेजी राज्य का उस पर वरदहस्त था। अपने मज़हबी सिद्धान्तों के अनुसार घृणित काफिर हिन्दू को सत्यमार्ग इस्लाम में लाना उसका प्रथम कर्तव्य था। इस पुण्य कार्य के लिये मुस्लिम शासन न सही तत्कालीन शासन की सहायता का प्राप्त होना भी कम लाभ की बात नहीं थी।

गाँधी जी प्रारम्भ से ही यह मान कर चले कि बिना हिन्दू मुस्लिम एकता के भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराना असम्भव है। हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित हो जाने पर स्वतंत्रता प्राप्त करने में उन्हें देर नहीं लगेगी। इसलिये वह हिंसात्मक उपायों द्वारा थोड़ी सी भी सफलता को और सर्वसाधारण द्वारा उसकी प्रशंसा को अपने और अपने सिद्धान्त की व्यक्तिगत हार से कम नहीं समझते थे, भले ही उस का उद्देश्य भी वही क्यों न हो जो उनका था। इसी कारण से कोई भी बात जो हिन्दू मुस्लिम एकता के मार्ग में बाधा बनती हो भले ही वह मुसलमानों की हठधर्मी अथवा धार्मिक कट्टरवाद की प्रतिक्रिया ही क्यों न हो उन्हें सहन नहीं होती थी। यथार्थवादी राजनीति में पारंगत मुसलमानों पर तो उनका जादू चलता नहीं था। हिन्दू उनके भावुक भक्त थे। उनसे वह जो चाहे करवा सकते थे और यदि किसी

विषय में कठिनाई का अनुभव हो तो "उपवास द्वारा मैं मर जाऊँगा" यह धमकी तो उनके पास ब्रह्मास्त्र के रूप में सदैव रहती ही थी।

इसलिये अपने उग्रवादी यथार्थवादी स्वभाव के कारण लोकमान्य तिलक गाँधी जी के पहले शिकार बने। तिलक के संस्मरणों के खण्ड-३ में भूमिका लिखते हुए श्री खपरडे लिखते हैं: "गाँधी जी का गुप्त संकल्प यह था कि तिलक द्वारा अथक परिश्रम और उत्साह से खड़े किये हुए ढाँचे को ध्वस्त कर दें। ऐसा लगता है कि गाँधी जी तिलक के राजनीतिक गढ़ की जड़ें खोदने की शपथ ले चुके थे।"

एक दूसरे लेखक ने गाँधी जी के अपने (गुप्त) मंतव्यों को गौरवपूर्ण नैतिक सिद्धान्तों की भाषा के आवरण में पेश करने का विशेषज्ञ कहा है।

गाँधी जी के विश्वस्त साथी इन्दूलाल यागनिक अपनी पुस्तक "गाँधी जी एज़ आई नो हिम" में लिखते हैं: "अपने रुढ़िवादी हिन्दुत्व के कारण दुर्भाग्यवश मिस्टर तिलक भारत के मुसलमानों का विश्वास और प्रेम नहीं जीत सके किन्तु गाँधी जी ने अपने संशोधित हिन्दुत्व के कारण दक्षिण अफ्रीका के सभी अग्रणी मुसलमानों की मित्रता प्राप्त कर ली थी। इसलिये प्रारम्भ से ही उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह भारत में हिन्दू मुसलमानों के बीच वास्तविक एकता स्थापित करेंगे। भविष्य ने सिद्ध कर दिया कि भारत की दो महत्वपूर्ण जातियों को वह (अपनी कार्यशैली से) एक राष्ट्रीय संगठन (कांग्रेस) के मंच पर लाने और उस पर अपना सम्पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो गये। और इस प्रकार रुढ़िवादी तिलक को दरकिनार करने में भी।" गाँधी जी का यह संशोधित हिन्दुत्व क्या था यह इन्दूलाल यागनिक ने कहीं स्पष्ट नहीं किया। कर भी नहीं सकते थे क्योंकि यह संशोधित हिन्दुत्व था मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये हिन्दुओं के हितों की बलि देते जाना। उनका संशोधित हिन्दू धर्म हिन्दू-मुस्लिम एकता तो क्या उत्पन्न करता वह किस प्रकार भारत के एक तिहाई भू-भाग को इस्लामी करने में सहयोगी बना यह अब इतिहास बन चुका है।

यंग इण्डिया नामक अपने समाचार पत्र में उन्होंने तिलक के 'शठं शाठ्यम समाचरेत' सिद्धान्त की अनैतिकता की अपनी जानी मानी शैली में कठोर आलोचना की। आगे की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में पाठक स्वयं ही यह निष्कर्ष निकालने में सफल हो जायेंगे कि गाँधी जी वास्तविक हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने में सफल क्या होते उनकी नीतियों ने मुस्लिम अलगाववाद और कट्टरवाद को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। साधारण हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो थोड़ा बहुत भाई चारा शेष था वह भी लुप्त हो गया। अधिकांश विद्वान अब इस बात पर सहमत हैं कि इस स्थिति के उत्पन्न होने का कारण था गाँधी जी द्वारा लगभग भूले बिसरे मुल्ला मौलवियों को कांग्रेस और खिलाफत मंच पर प्रमुखता प्रदान करना।

किन्तु मुल्ला मौलवियों को काँग्रेस मंच पर प्रमुखता देने के लिये अकेले गाँधी जी को ही दोष नहीं दिया जा सकता। उनका यह दोष तो अवश्य है कि हिन्दू मुस्लिम एकता

का अभियान चलाते समय उन्होंने मुसलमानों के मुख्य ग्रन्थों, कुरान और हदीस और उन पर मुस्लिम विद्वानों की व्याख्याओं का स्वयं अध्ययन नहीं किया। वह हकीम अजमल खाँ, डा. अन्सारी और मौहम्मद अली इत्यादि अपने मुस्लिम मित्रों से सुनी सुनायी बातों को ही इस्लाम समझते रहे। उन्होंने श्रद्धानन्द जैसे लोगों को जिन्होंने उनको सावधान करना चाहा कांग्रेस से निकाल फेंका। परन्तु जब एक बार उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के लिये मुस्लिम सहयोग को अनिवार्य मान लिया तो फिर उनके पास मौलवियों और मुल्लाओं (उलेमा) को प्रमुखता देने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था।

जैसा पहले भी बताया जा चुका है मुस्लिम समाज एक जागरुक और सैनिक अनुशासनबद्ध समाज है जिसके नेता उलमा उसके धार्मिक और राजनीतिक गुरु, मार्गदर्शक, रक्षक और कमाण्डर भी है। किसी सेना का सहयोग प्राप्त करने के लिये सैनिकों से सीधा सम्पर्क कोई अर्थ नहीं रखता। उनके कमाण्डर को ही विश्वास में लेना पड़ता है।

इसलिये चाहे सर सयद का मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा देने का प्रोग्राम हो अथवा मौहम्मद अली जिन्नाह का पाकिस्तान बनाने का, उलमा के सहयोग बिना किसी भी सामाजिक, राजनीतिक कार्य में मुस्लिम समाज का सहयोग मिलना असम्भव है। इसीलिये वर्तमान में विश्वनाथ प्रताप सिंह हों या मुलायम सिंह या नरसिंहराव या देवगौड़ा मुसलमानों के वोट प्राप्त करने की दौड़ में उन सब को इमाम बुखारी, अलीमियां जैसे मुस्लिम धार्मिक नेताओं के पास दौड़ना आवश्यक हो जाता है। उनके सहयोग के मूल्य स्वरूप उनकी अनेक बातें माननी पड़ती हैं। किन्तु इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान डैनियल पाइप्स का जो अमरीका में राज्य विभाग के विशेष परामर्शदाता रहे हैं और नेवल वार कालेज न्यू पोर्ट में रणनीति के प्रोफेसर हैं यह विश्लेषण सदैव याद रखना चाहिये : "इस्लाम और राजनीतिक शक्ति के पीछे तर्क यह है : अल्लाह का सामीप्य पाने के लिये मुसलमान को शरियत के अनुसार जीवन यापन करना आवश्यक है। क्योंकि शरियत के बहुत से प्राविधान शासन द्वारा ही लागू किये जा सकते हैं इसलिये शासन मुसलमानों के ही हाथ में होना चाहिये--राज्य मुसलमानों का नहीं होगा तो काफिरों का होगा। काफिर शरियत को दैवी कानून नहीं मानते। इसलिये कामचलाऊ तरीके से स्वार्थ सिद्धि के लिये मुसलमानों का विरोध कम करने की मंशा से वह कुछ थोड़े बहुत इस्लामी प्राविधान लागू कर सकते हैं किन्तु वह सम्पूर्ण शरियत कभी लागू नहीं करेंगे। इन कारणों से यदि आवश्यकता हो तो बलपूर्वक भी गैर मुसलमानों को राज्य सत्ता से हटाकर उनके स्थान पर मुसलमानों की सत्ता स्थापित करने का इस्लाम आदेश देता है।" इस प्रकार तुष्टीकरण से थोड़े से समय के लिये कुछ लाभ होता प्रतीत भले ही हो अन्ततः प्रत्येक तुष्टीकरण और अधिक उग्र माँगों को जन्म देता है।

मुस्लिम समाज के विपरीत हिन्दू का वोट प्राप्त करने के लिये व्यक्ति व्यक्ति से अपील करनी पड़ती है। उनका ऐसा कोई धार्मिक/राजनीतिक नेता नहीं है जिसकी बात निर्विवाद रूप से अधिकांश हिन्दुओं को मान्य हो। हाँ अपनी मातृ भूमि से उसे माँ जैसा

प्रेम है। इसलिये मुसलमान का वोट "इस्लाम खतरे में" चिल्लाकर प्राप्त किया जा सकता है और हिन्दू का "देश खतरे में है" चिल्लाकर। इसी एक तथ्य से यह सिद्ध हो जाता है कि साम्प्रदायिक राजनीति करने वाले कौन हैं।

गाँधी जी की नई नीति के अनुसार १९१६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में हिन्दू मुसलमानों के बीच एक समझौता हुआ जिसे इतिहास लखनऊ पैक्ट के नाम से जानता है। मुसलमानों का प्रतिनिधित्व दूसरों के अतिरिक्त राजा महमूदाबाद, मजरुहुल हक, मो० अली जिन्नाह और रसूल साहब कर रहे थे। तिलक, रासबिहारी बोस, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, खपरडे, एनी बेसेन्ट और गाँधी जी इत्यादि भी मौजूद थे। प्रस्ताव का विरोध केवल लोकमान्य तिलक ने ही किया। गाँधी जी के व्यक्तित्व के सामने लोकमान्य परास्त हो गये। केवल १० वर्ष पहले १९०५-१९०६ में बंगाल में मुसलमानों द्वारा निरपराध हिन्दू पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों पर की गयी पाशविक बर्बरता को भुलाकर हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ एक सम्मिलित घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

यह घोषणा पत्र लाखों की संख्या में भरा गया कि ईश्वर को साक्षी मानकर हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के सुख दुख में साथ देने की प्रतिज्ञा करते हैं **और वह सहोदर भाइयों की तरह रहेंगे।**[३७]

कांग्रेस के हिन्दू नेताओं को लगा कि उनकी सारी मनोकामनायें पूर्ण होने वाली हैं। तिलक ने लखनऊ शब्द में "लक" का हिन्दी रूप (भाग्य) देते हुए कहा कि लखनऊ में भाग्योदय हुआ है। (लक-नाऊ इन लखनऊ)

इस पैक्ट के अधीन मुसलमानों को वह सब कुछ दे दिया गया जिसकी उन्होंने माँग की थी- स्वतंत्र विधान मण्डल और आबादी में उनकी संख्या से अधिक वर्चस्व। डा. ईश्वरी प्रसाद का कहना है कि "इतिहास में लखनऊ पैक्ट को सदैव कांग्रेस की भयंकर भूल की शक्ल में स्मरण किया जायेगा। यह मुस्लिमों के तुष्टीकरण के लिये हिन्दुओं के साथ विश्वासघात से कम नहीं था।"[३८]

हिन्दू हितों की यह बलि किसलिये दी गयी, यह तिलक के शब्दो में "यदि इस पैक्ट से मुसलमान संतुष्ट हो जाँय, वह कांग्रेस में आ जाँय, यदि इसके द्वारा उनमें विदेश भक्ति के स्थान पर भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हो जाय तो इस पैक्ट के लिये जो मूल्य हमने चुकाया है वह ठीक है।"[३९]

शोक ! तिलक की आशायें निर्मूल सिद्ध हुईं। इससे मुस्लिम संतुष्ट नहीं हुए। उनकी नित नई माँगे बढ़ती गईं। उन्होंने काँग्रेस में प्रवेश नहीं किया। अपितु वह दावा करते रहे कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करती और उनकी प्रतिनिधि लीग है। वह उनकी विदेश भक्ति की भावना को भारतीय राष्ट्रीयता में परिवर्तित नहीं कर सके। हिन्दू हितों की बलि बेकार गयी। सन् १९२५ में गाँधी को कहना पड़ा :

"इतना आरोप तो सत्य है कि मुसलमान अभी भारत को अपना घर नहीं समझते-- बहुत से अपने को विजेताओं का वंशज समझते हैं जो मेरी समझ में नितांत असत्य है।"[४०]

अभी गाँधी जी को और कटु अनुभव होने थे किन्तु उनका भयावह मूल्य हिन्दुओं को चुकाना था।

ख़िलाफ़त आन्दोलन

मौहम्मद साहब के धार्मिक और राजनीतिक उत्तराधिकारियों को ख़लीफ़ा कहा जाता है। ख़लीफ़ा विश्व के सभी मुसलमानों का सर्वोच्च धर्मगुरु, राजनीतिक डिक्टेटर (अमीरुल मोमनीन) और सर्वोच्च सेनापति (कमाण्डर ऑफ द फेथफुल) होता था। मौहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात विश्व के महानतम् मुस्लिम साम्राज्य को स्थापित करने वाले और करोड़ों लोगों को मुसलमान बनाने का श्रेय खलीफाओं की परम्परा को ही है। तत्कालीन खलीफ़ा के आदेश से ही भारत पर मौहम्मद बिन कासिम द्वारा मुस्लिम आक्रमण किया गया था। उसी को भेंट करने के लिये ३०००० गुलाम हिन्दू पुरुष, स्त्रियों और बच्चों की पहली खेप जिसमें महाराज दाहिर की दो पुत्रियाँ और एक भान्जी भी थी भेजी गयी थी। दाहिर की इन पुत्रियों ने मौहम्मद बिन कासिम पर खलीफा को भेंट करने से पहले अपने साथ बलात्कार का आरोप लगाकर यन्त्रणादायक मृत्यु दण्ड दिलवा दिया था। बाद में वीरता से इस दोष को झूठा स्वीकार कर और खलीफा को उसकी मूर्खता के लिये धिक्कारने के दण्ड स्वरूप भारत की इन हिन्दू राजकुमारियों को दमिश्क के बाजार में घोड़ों की पूँछ से बाँधकर घसीटा गया था।

१९१४ में प्रारम्भ प्रथम विश्व युद्ध के समय टर्की के ऑटोमन साम्राज्य के सम्राट खलीफा थे। उन्होंने उस युद्ध में जर्मनी का साथ दिया था। यह युद्ध जब १९१८ में समाप्त हुआ तो जर्मनी की घोर पराजय हो गयी थी। फलस्वरूप तुर्की को भी अंग्रेजों की कोप दृष्टि का शिकार होना पड़ा। तुर्की–आटोमन साम्राज्य छिन्न–भिन्न कर दिया गया। उसके अधीन अरेबिया, मिस्र इत्यादि अनेक देश स्वतंत्र राज्य बना दिये गये। ख़लीफ़ा तुर्की छोड़कर भाग गये। तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा का उदय हुआ जिसने तुर्की को रुढ़िवादी इस्लाम से मुक्त कर वहाँ मुस्लिम धर्म शिक्षा, अरबी, पर्दे की प्रथा इत्यादि को समाप्त कर दिया।

भारतीय मुसलमानों पर इन सब घटनाओं से वज्रपात हुआ। उनको इस्लाम का भविष्य अन्धकारमय दिखायी देने लगा। अंग्रेजों से अकेले पार पाना अपने पुराने अनुभव से वह असम्भव समझते थे। ख़लीफ़ा की परम्परा को पुनः स्थापित करने के लिये जो आन्दोलन (खिलाफत आन्दोलन) भारतीय मौलवियों ने प्रारम्भ किया था उसमें कोई शक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती थी। ऐसी दशा में मुसलमानों को हिन्दुओं की याद आयी। वह जानते थे कि इस्लाम की वास्तविकता से अनभिज्ञ भावुक हिन्दू नेतृत्व अंग्रेजों से स्वतंत्रता पाने के लोभ में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिये कोई भी कुर्बानी देने को तैयार हो जायगा और मीठी मीठी भाषा द्वारा उन्हें भरमाया जा सकता है। मौलाना अब्दुल बारी ने कहा कि मुसलमानों का अस्तित्व संकट में पड़ जायगा यदि उन्होंने ऐसे कठिन समय में हिन्दू

भाइयों से सहायता न ली। इसके लिये उन्होंने कहा कि मौलवी होने के नाते मैं यह कहता हूँ कि हमें स्वयं ही गौ हत्या बन्द कर देनी चाहिए। हमारे धर्म के पालन के लिये यह अनिवार्य नहीं है।(४१)

गाँधी जी तो प्रत्येक अवसर की तलाश में रहते थे जिससे किसी प्रकार भी मुसलमानों का मन जीता जा सके। ख़िलाफ़त पर आया वह संकट उनको अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये एक ईश्वरीय वरदान सा लगा। उन्होंने कहा "ख़िलाफ़त के प्रश्न ने दोनों समुदायों को आजीवन एक हो जाने का अवसर प्रदान किया है। यदि हिन्दू चाहते हैं कि मुसलमानों के साथ शाश्वत मैत्री स्थापित हो जाय तो उन्हें इस्लाम के सम्मान की रक्षा के यज्ञ में अपने आपको उनके साथ साथ होम कर देना चाहिये।"(४२)

लेखक यह कहने के लिये क्षमा चाहता है कि मुसलमानों और मूर्ति पूजक हिन्दू काफ़िरों के बीच शाश्वत मैत्री स्थापित करने की बात वही व्यक्ति कर सकता है जो या तो इस्लाम से घोर अनभिज्ञ है अथवा जानबूझ कर सत्य पर पर्दा डाल रहा है। ख़िलाफ़त आन्दोलन में सहयोग देना हिन्दुओं के लिये तो घातक सिद्ध होना ही था वह अनैतिक भी था।

मुसलमान तो यह चाहते ही थे। उन्होंने ख़िलाफ़त आन्दोलन की बागडोर गाँधी जी के हाथों में सौंप दी।

गाँधी जी सदैव साध्य की अपेक्षा साधनों की निष्कपटता पर बहुत बल देते थे। किन्तु ख़िलाफ़त के प्रश्न पर भारतीय मुसलमानों की मित्रता प्राप्त करने हेतु उन्होंने एक ऐसे आन्दोलन का समर्थन किया जिसके दो ध्येय थे। और दोनों गाँधी जी की अपनी कसौटी के अनुसार ही अनैतिक थे। पहला था तुर्की पर ख़लीफ़ा का शासन लादना जबकि वहाँ के लोग तुर्की को गणतंत्र बनाना चाहते थे। दूसरा था ग़ैर तुर्की लोगों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध तुर्की शासन लादना। भारतीयों पर अंग्रेजों के शासन को अनैतिक और अन्तहीन विपदा मानने वाले गाँधी जी तुर्की का गैर तुर्कों पर शासन नैतिक और आवश्यक बताने लगे। केवल इसलिये कि भारतीय मुस्लिम प्रसन्न हो जाँय।

केवल १५ वर्ष पहले बंगाल में मुसलमानों द्वारा की गयी क्रूर बर्बरताओं को भावुक और अपरिपक्व राजनीतिक हिन्दू ने भुला दिया। वह गाँधी जी के इस अनैतिक आन्दोलन में कूद पड़े। शंकराचार्य और श्रद्धानन्द जैसे हिन्दू सन्यासियों ने पुलिस की लाठियाँ खायीं। हिन्दुओं ने अपना हर हर महादेव का उद्घोष छोड़कर मुसलमानों का जिहादी उद्घोष अल्लाहो अकबर अपना लिया। सहस्त्रों हिन्दू और शंकराचार्य आदि धर्मगुरु बुरी तरह पीटे गये और जेलों में बन्द कर दिये गये। यथार्थवादी जिन्नाह इस्तीफा दे गये।

कट्टर, कूटनीति में पारंगत अवसरवादी मुस्लिम नेता मोहम्मद अली और शौकत अली महात्मा गाँधी के भक्त बनकर उनको सरकार सरकार कहने लगे। वास्तव में ही उनके चरण चूमने लगे।

१२ जनवरी १९२४ को यर्वदा जेल में गाँधी जी की दशा इतनी चिन्ताजनक हो गयी

कि उनको तुरन्त सासून अस्पताल में आप्रेशन के लिये भर्ती किया गया। आप्रेशन के समय बिजली फ़ेल होने के कारण मिट्टी के तेल के लैम्प की रोशनी में आप्रेशन करना पड़ा। गाँधी जी का स्वास्थ्य बहुत ही धीरे-धीरे लौट रहा था। २७ जनवरी १९२४ को महादेव देसाई के अनुसार शौकत अली गाँधी जी से मिलने आये। उन्होंने उनके पैरों पर से चादर हटाई और पैरों को चूमा। कुछ दिन पश्चात हकीम अजमल खाँ, मोहम्मद अली और शौकत अली साथ-साथ मिलने आये। महादेव देसाई के अनुसार मोहम्मद अली ने भी गाँधी जी के पैर चूमे किन्तु बिना चादर हटाये। हकीम जी ने केवल हाथ मिलाये।[४२क]

उपरोक्त दृष्टव्य व्यवहार को क्या कहा जाय ? जबकि इसके साथ ही साथ भारत के मुख्य-मुख्य १२० मौलवियों, द्वारा एक गुप्त फतवा जारी किया जा रहा था जो बाद में मुत्तफिक (सर्वसम्मत) फतवे के नाम से विख्यात हुआ। इस फतवे द्वारा मुसलमानों को अंग्रेजी सरकार से असहयोग और सरकारी नौकरियों और अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार की प्रेरणा दी गयी थीं। साथ ही साथ उन्हें यह भी सावधान किया गया था कि काफिर (आशय गाँधी जी) के नेतृत्व को उसी समय तक स्वीकार करना चाहिये जब तक कि उससे इस्लाम को लाभ होता हो। काफिरों की आकांक्षाओं (जैसे राम राज्य अथवा जनतंत्र) का समर्थन कभी नहीं करना चाहिये। स्मरण कराया गया था कि किसी भी काफिर को मुसलमानों का नेता स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये। कुरान की आयतः निश्चय ही अल्लाह ने काफिर को मुसलमान के ऊपर स्थान नहीं दिया है।[४३]

गाँधी जी की कृपा से काँग्रेस मंच पर मौलाना और मौलवी छा गये। उन्होंने उस मंच का उपयोग कुरान और हदीस की उन व्यवस्थाओं के प्रचार में किया जो काफिरों के विरुद्ध उत्तेजना और हिंसा की प्रेरणा देती हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ने गाँधी जी का ध्यान इन भाषणों की ओर दिलाया और कहा कि कुरान की यह काफ़िर विरोधी हिंसात्मक आयतें उनके अहिंसा के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। गाँधी जी ने मुस्कराकर कहा कि उनका इशारा अंग्रेजों और सरकारी अफसरों की ओर है। श्रद्धानन्द ने उत्तर दिया कि यही आयतें जो अंग्रेजों के विरुद्ध हिंसा प्रेरित करने के लिए पढ़ी जा रही हैं क़ल हिन्दुओं के विरुद्ध प्रयोग की जा सकती हैं। किन्तु गाँधी जी पर, जो हिन्दू मुस्लिम एकता के पीछे दीवाने थे और अपने को हिंसा का घोर विरोधी भी कहते थे, इस चेतावनी का कोई असर नहीं पड़ा।

उन दिनों भारत को मुस्लिम देश बनाने की बात अनेक मुस्लिम नेताओं मंचों और समाचार पत्रों में खुले प्रकार से कही जा रही थी।

हकीम अजमल खाँ ने जो सन् १९२१ में काँग्रेस और खिलाफत कान्फ्रेंस दोनों के अध्यक्ष थे अहमदाबाद में खिलाफत कान्फ्रेंस के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था "एक ओर भारत और दूसरी ओर एशिया माइनर भावी इस्लामी संघ रूपी जंज़ीर की दो छोर कड़ियाँ हैं, जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चय ही बीच के सभी देशों को एक विशाल संघ में जोड़ने जा रही है।"[४४] गाँधी जी ने एक बार स्वीकार किया था कि वह इस्लाम के विषय में अपना मार्गदर्शन हकीम अजमल खाँ से ही प्राप्त करते रहे थे।

काँग्रेस के दूसरे अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद तो अपने राजनीतिक जीवन के शिशु काल में ही अपने विद्यार्थियों से अनुरोध करते रहते थे कि भारत जैसे देश को जो एक बार मुसलमानों के शासन में रह चुका है कभी भी त्यागा नहीं जा सकता। और प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि उस पर खोयी हुई मुस्लिम सत्ता को फिर प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करे।[४५]

लाहौर से निकलने वाले मुस्लिम आउटलुक ने अपने सितम्बर १९२५ के अंक में लिखा था: "-------जब अंग्रेज भारतीयों को आत्म समर्पण करेंगे तो स्वाभाविक है कि मुसलमान उनके स्थान पर सत्ता हस्तगत कर लें। यदि आवश्यक हुआ तो अफगानों की सहायता से-----अगली बार भारत पर जब मुस्लिम शासन करेंगे, जिसकी हमें आशा है तो हम आश्वस्त हैं कि वह सुल्तान महमूद गजनवी और औरंगज़ेब द्वारा अधूरे छूटे हुए कार्य को पूरा कर देंगे। अर्थात यहाँ से हिन्दुओं का सफ़ाया कर देंगे।[४६]

गाँधी जी के दूसरे सहयोगी राष्ट्रीय मुस्लिम डा. किचलू ने सन् १९२५ में लाहौर की एक जनसभा में हिन्दुओं को चेतावनी देते हुए कहा था: "सुनो मेरे प्यारे हिन्दू भाइयों सुनो। ध्यान देकर सुनो। यदि तुम हमारी तंज़ीम में रोड़ा अटकाओगे और हमें हमारे अधिकार नहीं दोगे तो हम अफगानों अथवा किसी दूसरे मुस्लिम देश की सहायता से इस देश में अपना राज्य स्थापित कर लेंगे।"[४७] एक दूसरे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुस्लिम हुसेन अहमद मदनी ने हिन्दू और मुसलमानों की मदीने के तर्ज पर सम्मिलित राष्ट्रीयता की वकालत की थी किन्तु यह भी कहा था कि इस प्रकार की सम्मिलित राष्ट्रीयता की आवश्यकता उसी समय तक रहती है जब तक सभी निवासी मुसलमान न हो जाँय। और ऐसा हो जाने पर जो कि इस्लाम का प्राथमिक और वास्तविक ध्येय है इस प्रकार की सम्मिलित राष्ट्रीयता की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।[४८]

किसी सैनिक संगठन की आचारसंहिता को साधारण नागरिक संहिता की तराजू पर नहीं तोला जा सकता। सैनिक आचार संहिता में मुख्य स्थान अनुशासन बद्ध होकर कमांडर के आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करना होता है। सैनिक की वैयक्तिक निष्ठायें, अधिकार, इच्छा, अनिच्छा, निरर्थक अथवा विलम्बित हो जाती हैं। किसी भी देश के आर्मी एक्ट को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जायेगा।

इस्लाम में अल्लाह ही सर्वोच्च शासक और कमांडर है और उसके आदेशों को मानव जाति तक पहुंचाने वाले पैग़म्बर मौहम्मद हैं। वह आदेश ही कुरान हैं और उन आदेशों के जीवित आचरण के उदाहरण पैगम्बर की हदीसे हैं। इस्लाम कुफ्र के विरुद्ध निरंतर युद्ध रत है।

इस्लाम के एसे सैनिक स्वरूप को समझ लेने पर कुरान और हदीस में गैर-मुसलमानों को विसंगत लगने वाली अनेक बातें समझ में आने लगती है कि उनमें असाधारण कुछ भी नहीं है।

२०

जिहाद की झाँकी

ख़िलाफ़त आन्दोलन असफल हो गया क्योंकि अरब, मिस्र अथवा किसी भी दूसरे मुस्लिम देश को ख़लीफ़ा की परम्परा स्वीकार नहीं थी। जैसा कि स्वामी श्रद्धानन्द ने गाँधी जी को चेतावनी दी थी मुसलमानों का भड़का हुआ धार्मिक उन्माद अब मुस्लिम बहुल स्थानों पर निहत्थे, शान्तिप्रिय, और असावधान हिन्दुओं पर भड़क उठा। भारत के मुस्लिम बहुल अनेक क्षेत्रों में भयंकर मुस्लिम आक्रमण हिन्दू प्रजा पर किये गये और बार-बार किये गये। इनमें सबसे भयंकर दंगा मालाबार में हुआ जो "मोपला विद्रोह" के नाम से विख्यात है।

मालाबार के हिन्दुओं पर क्या गुज़री इसका ठीक ठीक अंदाज़ा वहाँ दंगों की शिकार स्त्रियों द्वारा भारत के वाइसराय लार्ड रीडिंग की पत्नी को भेजे गये प्रार्थना पत्र के कुछ अंशों से लगाया जा सकता है, उसमें कहा गया था :

"हमारे जिन प्रियजनों ने अपने पूर्वजों के धर्म को त्यागने से इन्कार कर दिया, उनके क्षत-विक्षत परन्तु बहुधा अधकटे शरीरों से कुएँ और तालाब पट गये। गर्भवती स्त्रियाँ टुकड़े-टुकड़े कर दी गईं। गर्भ के अजन्मे शिशुओं के लोथड़े माताओं के क्षत-विक्षत शवों से बाहर लटक रहे थे। हमारे सुकुमार असहाय बच्चों को हमारी आंखों के सामने ही काट डाला गया। कोड़े बरसाये गये। जीवित जला दिये गये। हमारी बहन बेटियों को बलात अपने प्रियजनों के बीच से उठा लिया गया। उनके साथ जंगलों में जी भरकर मनमानी की गई। हमारे देवी देवताओं के गले में फूल मालाओं के स्थान पर गौ मांस के लोथड़े लटका दिये गये।"[४९]

भारत सेवक मण्डल की रिपोर्ट के अनुसार ५००० हिन्दू मार दिये गये, २०,००० बलात मुसलमान बना लिये गये और ३ करोड़ की सम्पत्ति लूट ली गई।[५०]

गुप्तचर विभाग के चीफ जे. कैम्बेल तथा मुस्लिम अलगाववाद के समर्थक थ्योडोर मौरिसन ने भी ख़िलाफ़त नेताओं को साम्प्रदायिक घृणा फैलाने के लिये पूर्णतया ज़िम्मेदार ठहराया जिसके कारण मोपला नरसंहार हुआ।[५१]

काँग्रेस ने जिसने सत्य एवं अहिंसा की सौगंध खाई थी क्या किया? और गाँधी जी का दृष्टिकोण क्या रहा, जिन्होंने यह घोषणा की थी कि यदि कभी भी हिंसा की गयी अथवा बर्दाश्त की गयी तो वह उन लोगों से जो उसका समर्थन करते होंगे नाता तोड़ देंगे?

२६-८-१९२६ के लिबरेटर में स्वामी श्रद्धानन्द ने उस दृश्य का वर्णन किया है जब काँग्रेस की विषय समिति की बैठक में मोपलाओं द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों से सम्बन्धित प्रस्ताव का प्रारूप पेश हुआ। गाँधी जी उस समय वहाँ उपस्थित

थे। स्वामी श्रद्धानन्द कहते हैं–

"खतरे की (हिन्दू–मुस्लिम विवाद) पहली घंटी तब बजी जब विषय (सब्जेक्ट्स) कमेटी में मोपला विद्रोह में मुस्लिम मोपालाओं द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार की भर्त्सना करने का प्रस्ताव पेश हुआ। मुख्य प्रस्ताव में मोपलाओं द्वारा हिन्दुओं का थोक रूप में कत्ल करने, उनके घर जलाने तथा बलात धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बनाने की निन्दा की गयी थी।

"स्वयं हिन्दू सदस्यों द्वारा ही संशोधन पर संशोधन कर प्रस्ताव कटते कटते केवल कुछ व्यक्तियों की निन्दा तक सीमित रह गया। मुस्लिम सदस्यों को यह भी सहन न था। मौलाना फाखिर और दूसरे मौलानाओं ने तो खैर प्रस्ताव का विरोध किया ही और इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा जब मौलाना हसरत मोहानी जैसे एक राष्ट्रीय कहे जाने वाले मुस्लिम नेता ने भी प्रस्ताव का विरोध किया।

"उनका तर्क था कि मोपला देश दारुल अमन न रहकर दारुल हरब हो गया था। मोपालाओं को यह सन्देह था कि हिन्दू उनके शत्रु अंग्रेजों से मिले हुए हैं। ऐसी दशा में मोपलाओं द्वारा हिन्दुओं को कुरान या तलवार में से एक को चुनने के लिए कहना नितांत उचित था और यदि हिन्दुओं ने मृत्यु से बचने के लिए इस्लाम स्वीकार कर लिया तो यह तो स्वेच्छा से ही धर्म परिवर्तन कहा जायगा।"[५२]

काँग्रेस ने अपनी परिपाटी के अनुसार मुसलमानों के नाराज हो जाने के भय से मोपलाओं द्वारा किये गये अत्याचारों को कम से कम दर्शाने की चेष्टा की। उसका कारण यह बताया गया कि मोपालाओं को उत्तेजित करने के पर्याप्त कारण थे। उन्होंने बलपूर्वक धर्म परिवर्तन की संखया केवल तीन मानी।

भारत सरकार के ख़ुफ़िया विभाग के डिप्टी डायरेक्टर पी.सी.बैम्फोर्ड लिखते हैं : "शायद इस श्रम साध्य एवम् नितांत झूठे बचाव का सारगर्भित उत्तर यह है कि कुछ ताल्लुकों में जहाँ कि विद्राहियों को स्थाई रूप में कुछ सफलता प्राप्त हो गयी थी उन्होंने यह घोषणा कर दी थी कि उन्होंने ख़िलाफ़त राज्य (इस्लामी राज्य) स्थापित कर लिया है, जबकि क़त्ल, हिंसा और लूट का अभियान वहाँ की हिन्दू आबादी के विरुद्ध जोर शोर से चलता रहा।"[५३]

गाँधी जी ने तो सत्य ही कहा। जिन मोपला विद्रोहियों ने हिन्दुओं पर पाशविक अत्याचार किये थे उनके सन्दर्भ में बोलते हुए गाँधी जी ने कहा– "वह धर्म–भीरू वीर लोग हैं, जो उसके लिये युद्ध कर रहे हैं जो उनके विचार में धर्म है और उस रीति से युद्ध कर रहे हैं जो उनके विचार में धर्म सम्मत है।"[५४]

परन्तु जो बात समझ से परे है वह यह है कि गाँधी जी इस प्रकार के धर्म भीरू लोगों से किस प्रकार हिन्दू मुस्लिम शाश्वत मित्रता की आशा करते रहे जो कुफ्र (हिन्दू धर्म पढ़े) को जड़ मूल से मिटाने को अपना सर्वोपरि धार्मिक कर्तव्य मानते हैं और उसके लिये उस प्रकार से युद्ध करना धर्म सम्मत मानते हैं जैसा भारत के इतिहास में मौहम्मद बिन

कासिम से मोपला विद्रोह तक और उसके बाद भी १९४६–४८ के दंगों में अनेक मुस्लिम बहुल इलाकों में हिन्दुओं के साथ उनके जीवन काल में सदैव होता रहा था।

इस प्रकार हिन्दू मुस्लिम एकता गाँधी जी के तमाम प्रयत्नों के बावजूद हवा में उड़ गयी। वास्तव में हिन्दू–मुस्लिम एकता के इन प्रयत्नों का परिणाम भारत में अगले दस वर्ष तक भयानक हिन्दू–मुस्लिम दंगों के रूप में प्राप्त हुआ जिनके शिकार सर्वदा हिन्दू ही रहे।

इसके पश्चात तो मानो साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ ही आ गई। मुल्तान, अमृतसर, पानीपत, मुरादाबाद, मेरठ, इलाहाबाद, सहारनपुर, आगरा, रायबरेली, गोण्डा, जबलपुर, अजमेर इत्यादि अनेक स्थानों पर भीषण दंगे हुए और बार–बार हुए। कोहाट का दंगा तो इतना भीषण हुआ कि वहाँ से सभी हिन्दुओं को निकालना पड़ा। वहाँ के हिन्दुओं पर हुए अत्याचारों को देखकर छानबीन के लिये गये लोगों को भी रुलाई फूट पड़ी।

गाँधी जी और आर्य समाज

इन दंगों में हिन्दुओं की दुर्दशा और काँग्रेस की उपेक्षा को देखते हुए श्रद्धानन्द ने काँग्रेस से इस्तीफा देकर हिन्दुओं की सुरक्षा के लिए हिन्दू संगठन और धर्मान्तरित हिन्दुओं को स्वधर्म में वापिस लाने के लिए शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रद्धानन्द तो संगठन शक्ति और कर्मठता के भण्डार थे। शीघ्र ही सहस्रों की संख्या में मलकाने राजपूत शुद्ध होकर हिन्दू बनने लगे। यद्यपि मुसलमान हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन अपना धार्मिक कर्तव्य और अधिकार मानते थे, मुसलमानों की हिन्दू धर्म में वापसी उन्हें सहन नहीं थी। मुसलमानों ने श्रद्धानन्द पर अनेक प्रकार के आरोप लगाने प्रारम्भ कर दिये और उन पर हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य फैलाने के लिये सरकार से रिश्वत खाने का आरोप लगाया।

जिस बात से मुसलमान नाराज़ होते हों वह बात गाँधी जी को कैसे सहन हो सकती थी? इसलिये लोकमान्य के पश्चात अब गाँधी जी हिन्दुत्व के एक मात्र बचे रक्षक आर्य समाज और उसके मुख्य नायक श्रद्धानन्द और संस्थापक स्वामी दयानन्द को निपटाने में लग गये।

मौलाना अब्दुल बारी शुद्धी आन्दोलन के विरुद्ध विष वमन कर रहे थे। उनका कहना था कि हम साँप बिच्छुओं के साथ रह सकते हैं किन्तु मुसलमानों का धर्म परिवर्तन करने वालों और इस्लाम छोड़ने वालों के साथ नहीं।[५५] गाँधी जी से भी मौलाना अब्दुल बारी के उत्तेजनात्मक वक्तव्यों की शिकायत की गई तो उन्होंने कहा "मौलाना अब्दुल बारी साहब को मेरे सामने एक मज़हबी दीवाने के रूप में रखा गया है और हिन्दुओं का सबसे बड़ा शत्रु बताया गया है। आपके कई लेख भी मेरी दृष्टि के सामने है, परन्तु मैं उनका अभिप्राय समझने में अशक्त हूँ। मैंने उनके सम्बन्ध में मौलाना से आग्रह भी नहीं किया। क्योंकि मैं उन्हें ईश्वर का निरपराध बालक समझता हूँ।"[५६]

किन्तु श्रद्धानन्द की बात दूसरी थी। गाँधी जी ने श्रद्धानन्द पर तो कटाक्ष किए ही

उन्होंने उनकी संस्था आर्य समाज और उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने लिखा : "स्वामी श्रद्धानन्द जी पर भी अविश्वास किया जाता है। मैं यह जानता हूँ कि उनकी वक्तृतायें भड़काने वाली होती हैं। परन्तु वे हिन्दू मुस्लिम एकता में भी विश्वास करते हैं। --------- परन्तु वे जल्दबाज़ हैं और शीघ्रता से क्रोध के आवेग में आ जाते हैं। उन्हें आर्य सामाजिक स्वभाव विरासत में मिले हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के लिये मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने हिन्दू धर्म की बड़ी सेवा की है। ----- परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म को तंग बना दिया है। मैंने आर्य समाज की बाइबिल सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा है ---- मैंने इस प्रकर के महान सुधारक के हाथ से लिखी इससे अधिक निराशाजनक और कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। उन्होंने संसार भर के एक अत्यन्त विशाल और उदार धर्म को संकुचित बना दिया है। ----- (आर्य समाजियों के) संकुचित और दुराग्रही होने के कारण से वे और मतों के लोगों से लड़ाई ठान लेते हैं ----- शुद्धि करने का वर्तमान ढंग हिन्दू मुस्लिम ऐक्य को बिगाड़ने का एक प्रधान कारण है। मेरी सम्मति में हिन्दू धर्म में कहीं भी ऐसी शुद्धि का विधान नहीं है। (अर्थात मुसलमान तो अपने धर्मानुसार हिन्दुओं को मुसलमान बनाते रहे परन्तु हिन्दू उन धर्मान्तरित बंधुओं को भी हिन्दू धर्म में वापिस न लें जो उसके इच्छुक हैं)। मेरी हिन्दू प्रकृति मुझसे कहती है कि सब धर्म थोड़े बहुत सच्चे हैं--मुझे पता लगा है कि मुसलमान और आर्य समाजी दोनों ही स्त्रियों को भगाकर अपने धर्मों में लाने का उद्योग करते हैं।"(५७)

दयानन्द द्वारा अन्य मत मतान्तरों की समीक्षा के विषय में उन्होंने लिखा उन्होंने (दयानन्द ने) अनजाने में जैन धर्म, इस्लाम और ईसाइयत और स्वयं हिन्दू धर्म को अशुद्ध रूप में प्रकट किया है। जिन लोगों को इन मतों का सरसरी ज्ञान भी है वह सुगमता से इन अशुद्धियों को मालूम कर सकते है आदि आदि।(५८)

साथ ही साथ गाँधी जी ने इस्लाम की प्रशंसा में लिखा : "जब पश्चिम अन्धकार के गर्त में पड़ा था, पूर्वी क्षितिज पर एक तारा चमका और समस्त संसार को उसने प्रकाश और सुख पहुँचाया। इस्लाम कोई झूठा मज़हब नहीं है। अगर हिन्दू इसे सच्चे दिल से शान्तिपूर्वक पढ़ें तो वे इसका उतना ही आदर करेंगे जितना मैं करता हूँ। ------- इस्लाम पर आक्रमण होते है और मैं मुसलमान भाइयों से मैत्री रखना चाहता हूँ। इसीलिये मैंने उनके धर्म का पक्ष लिया। सबको अपना धर्म औरों से श्रेष्ठ मालूम होता है। इसी कारण हिन्दू धर्म मुझे झूठा नहीं लगता अपितु सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होता है।"(५९)

ऐतिहासिक तथ्य है कि केवल यह बात कहने पर कि इस्लाम भी सच्चा है और मेरा धर्म भी सच्चा है मुस्लिम काल में हिन्दुओं को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। ख्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद द्वारा लिखित तबकाते अकबरी खंड-१ पृ. ३२२-३२३ के अनुसार सिकन्दर लोदी के काल में बोधन ब्राह्मण के यह कहने पर कि इस्लाम सच्चा धर्म है और मेरा धर्म भी सच्चा है उसे इस्लाम स्वीकार करने को कहा गया और न मानने पर उसका वध कर दिया गया। स्पष्ट है कि गाँधी जी को यह इतिहास मालूम नहीं था अथवा वह जानबूझकर

इसकी उपेक्षा करते थे। क्योंकि जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कि वह उनसे मैत्री रखना चाहते थे और इसलिये उनके धर्म का पक्ष लेते थे।

गाँधी जी के उपरोक्त वक्तव्य में एक बड़ा भारी दोष और भी है। हिन्दू मुस्लिम दंगे शुद्धि के कारण प्रारम्भ नहीं हुए क्योंकि शुद्धि आन्दोलन तो इन दंगों के पश्चात और उनके फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ। आर्य समाजियों पर मुसलमान स्त्रियों को भगाने का दोष तो नितान्त बेबुनियाद था। गाँधी जी के अतिरिक्त यह आरोप आर्य समाज पर कभी नहीं लगाया गया। लगता है गाँधी जी ने अपने मुस्लिम मित्रों के कहने भर से ऐसा वक्तव्य दे दिया।

जो भी हो शीघ्र ही गाँधी जी को भी इस्लाम के शुद्ध रूप का ज्ञान हो गया। उनके पैर चूमने वाले और सरकार सरकार कहने वाले मोहम्मद अली ने "अपने मजहबी विश्वास के अनुसार एक चोर और व्यभिभारी मुसलमान को भी गाँधी जी से उत्तम बताया।"

क्या दयानन्द संकुचित थे?

प्रसंगवश यहाँ यह जाँच करना आवश्यक है कि क्या सचमुच दयानन्द ने उदार हिन्दू धर्म को संकुचित करने का पाप किया है? क्या सत्यार्थ प्रकाश ने दूसरे मत मतान्तरों पर जाने अनजाने झूठे आक्षेप लगाये हैं? दयानन्द "सत्यार्थ प्रकाश" के लिखने के अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उसकी मुख्य भूमिका में लिखते हैं :

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य का अर्थ प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

"क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये है। सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई या भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो भी भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सबको विदित होवे। न किसी पर कोई झूँठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने। किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की

रीति है। अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें।

---- इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात जो उचित होगा तो माना जायेगा क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।

"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन के सिद्धि हेतु हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है, किन्तु ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी कि हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

"इस ग्रन्थ में जो कहीं कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उसके जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायेगा और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जायगा। हाँ जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।

इसके पश्चात प्रचलित पौराणिक हिन्दू मत की समालोचना प्रारम्भ करने से पहले अपनी अनुभूमिका में वह लिखते हैं : "सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सब को परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो जो इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है वह सब को जनाना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है उस को सब के आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है-- पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात सब को अपनी अपनी समझ के अनुसार सत्यमत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा।

"मेरा तात्पर्य किसी की हानि व विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद विवाद विरोध करने कराने के लिये।

"जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत मतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वतजन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।"

बारहवें अध्याय में बौद्ध और जैन मत की समीक्षा प्रारम्भ करते हुए उन्होंने फिर इस बात पर बल दिया कि "वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से सत्यासत्य का वाद विवाद द्वारा निर्णय किया जाय। जो जो जैनियों के मत विषयक लिखा गया है सो सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है। इस में जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो जो हमने इनके मत के विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा। जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद व लेख न किया जाय तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता।

"जब विद्वान लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वान को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुख उठाना पड़ता है, इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के साथ अर्थ मित्रता के वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य कार्य है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।"

तेरहवें अध्याय में ईसाई और यहूदी मतों की समीक्षा करने से पहले फिर मत मतान्तरों के विद्वानों को मिल बैठ कर वाद प्रतिवाद द्वारा सत्यासत्य के निर्णय करने सत्य को स्वीकार और असत्य का परित्याग करने पर बल देते हैं। "जो विषय यहाँ लिखा है सो केवल बाइबल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूल कारण समझते हैं। देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझको बाइबल में बहुत सी शंका हुई हैं। उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३वें समुल्लास में सब के विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है न कि किसी को दुख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के ------ इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म विषयक ज्ञान बढ़ कर यथायोग्य सत्यासत्य और कर्तव्या कर्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा।

सब मनुष्यों को उचित है कि सब मत विषयक पुस्तकों को देख समझकर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें। क्योंकि जैसे पढ़ने से पण्डित होता है वैसे सुनने में बहुश्रुत होता है। यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा पाता तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है ---- यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय।"

१४ वें अध्याय में इस्लाम की समीक्षा करने से पहले वह फिर इन मत मतान्तरों के तुलनात्मक अध्ययन पर बल देते हुए आग्रह करते हैं कि परस्पर विचार द्वारा एक दूसरे के दोषों का खण्डन और गुणों का मंडन करें।

स्वामी दयानन्द किसी मत की निन्दा नहीं करते। हाँ वह सभी प्रचलित मतों में व्याप्त अन्ध विश्वासों कुसंस्कारों तथा मानवता विरोधी प्रथाओं को इंगित कर त्यागने की

शान्तिमय मार्मिक अपील अवश्य करते हैं। इस विषय में वह प्रचलित हिन्दू धर्म को भी, जो उनके पूर्वजों का भी धर्म है नहीं बख्शते। उनके इस चिन्तन में कोई भी दुराग्रह अथवा पक्षपात नहीं है। उनके अनेक मुसलमान और ईसाई प्रशंसकों ने भी यह बात स्वीकार की है।

डाक्टर ग्रिसवाल्ड एक विद्वान ईसाई मिशनरी थे। स्वामी दयानन्द ने ईसाई पादरियों से अनेक शास्त्रार्थ किये और ईसाई मत में प्रचलित अन्ध विश्वासों का सार्वजनिक मंच से खण्डन किया जिसके कारण उनके धर्मान्तरण अभियान को बहुत हानि पहुँची। इसलिये डाक्टर ग्रिसवाल्ड द्वारा स्वामी दयानन्द की प्रशंसा बनावटी नहीं मानी जा सकती। वह कहते हैं : "पण्डित दयानन्द विराट दृष्टिकोण के स्वामी थे। वह श्रेष्ठ स्वप्नों के स्वप्नदृष्टा थे। उनकी आँखों के सामने ऐसे भारत का चित्र था, जिसके तमाम अन्ध विश्वास और कुरीतियाँ निकाल फेंक दी गयी हो। जो विज्ञान और एकेश्वरवाद के गुणों से भरपूर होकर स्वराज्य प्राप्त करे और संसार के दूसरे विकसित राष्ट्रों की विरादरी में अपना उचित स्थान ग्रहण कर अपनी पुरानी प्रतिष्ठा को प्राप्त करे।[६०]

सर सयद अहमद ने तो दयानन्द को पैगम्बरों की श्रेणी में ला खड़ा किया था, यद्यपि उनका ऐसा कहना इस्लाम के सिद्धान्त के विरुद्ध था। एक दूसरे विख्यात पादरी स्काट तो उनको सम्मानपूर्वक अपने गिरजाघर में ले गये थे और उनसे प्रवचन की प्रार्थना की थी।

ऐसे कट्टर राष्ट्रवादी, तर्कबुद्धिपरक, सकल मानव समाज के कल्याण की कामना करने वाले महापुरुष स्वामी दयानन्द, उनकी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश, उनके संगठन आर्य समाज और उनके अनुयाई गाँधी जी की घोर कोप दृष्टि के पात्र बन गये क्योंकि वह भारत के इस्लामीकरण में बाधा बन रहे थे जिसके कारण मुसलमान उनसे सखत नाराज़ थे।

अपने को बार-बार सत्य का पुजारी घोषित करने वाले गाँधी जी को दयानन्द की सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने की अपील और वह भी प्रेमपूर्वक मिल बैठकर वाद विवाद के पश्चात इतनी बुरी क्यों लगती है?

दयानन्द और गाँधी जी के सत्य वादन और अहिंसा में जमीन आसमान का अंतर है? गाँधी जी को दयानन्द का सत्य इसलिये अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह मत मतान्तरों में दूध का दूध और पानी का पानी करने का साहस करते हैं और सत्य को ग्रहण और असत्य को त्यागने का आग्रह करते हैं। गाँधी जी मत मतान्तरों में और विशेष रूप से इस्लाम में सत्यान्वेषण को भी बुरा समझते हैं। हिन्दुओं के विरुद्ध हिंसा करने वाले हत्यारों को क्षमा करने और करवाने में अपनी अहिंसा के अनुसार वह कोई दोष नहीं समझते परन्तु हिन्दू क्रांतिकारियों के लिये उनके पास सहानुभूति के दो शब्द भी नहीं है। वह उनका तिरस्कार करने में नहीं चूकते।

मुसलमानों द्वारा हिन्दू आदर्श पुरुषों के अपमान करने पर भी वह चुप्पी साध जाते हैं (सीता का छिनारा)। हिन्दुओं के बलात और लोभ द्वारा धर्मान्तरण को रोकने का वह कोई सार्थक उपाय नहीं करते न निन्दा किन्तु शान्तिमय ढंग से उसका विरोध और उपाय करने

वाले श्रद्धानन्द पर वह गरजने और बरसने लगते हैं। इस्लाम और दूसरे मत मतान्तरों को सत्य की कसौटी पर परखने की अपील करने वाले दयानन्द को भी वह मीठे जहर से घातक अपनी शैली में बदनाम करने और इस्लाम की प्रशंसा में नितांत झूठ को सत्य के आवरण में अपने भोले हिन्दू भक्तों को पेश करने में संकोच नहीं करते।

अम्बेडकर ने गाँधी जी की इस मानसिकता पर खेद व्यक्त करते हुए लिखा है:

"यह एक बदनाम तथ्य है कि बहुत से विख्यात उन हिन्दुओं की मुसलमानों द्वारा हत्या कर दी गयी जिन्होंने शुद्धि आन्दोलन में भाग लेकर अथवा दूसरे प्रकार मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को आहत किया था। इनमें एक स्वामी श्रद्धानन्द थे जिनकी बीमारी की हालत में पलंग पर पड़े पड़े अब्दुल रशीद ने २३ दिसम्बर १९२६ को गोली मारकर हत्या कर दी। इसके पश्चात लाला नानक चन्द का वध किया गया जो दिल्ली के विख्यात आर्य समाजी थे। रंगीला रसूल के लेखक (प्रकाशक) की हत्या ६ अप्रैल १९२९ को इल्मुद्दीन द्वारा की गयी। (जब वह न्यायालय से निर्दोष सिद्ध होकर बाहर आ रहे थे)। अब्दुल कयूम ने सितम्बर १९३४ को नथुरामल शर्मा की हत्या की जबकि वह जूडिशियल कमिश्नर सिन्ध के न्यायालय में बैठा अपनी अपील की सुनवाई का इन्तजार कर रहा था जिसमें उसको "इस्लाम का इतिहास" नामक पत्रक छापने पर दण्ड मिला था। १९३८ में हिन्दू सभा के सचिव खन्ना के ऊपर कातिलाना हमला हुआ जिसमें वह बाल बाल बच गये।

"यह फहरिस्त बहुत ही छोटी है और इसमें आसानी से अनेक नाम जोड़े जा सकते हैं। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा विख्यात हिन्दुओं के इन वधों की फेहरिस्त लम्बी है या छोटी, महत्वपूर्ण यह है कि इस प्रकार के हत्यारों को कानून द्वारा दण्ड तो मिला किन्तु मुसलमानों ने इन हत्यारों की कभी भी निन्दा नहीं की। इसके विपरीत कानून द्वारा उनको मृत्यु दंड मिलने पर धार्मिक शहीद होने के नाम पर उनकी प्रशंसा की गयी और उन पर दया दिखाने के लिये आन्दोलन किये गये। इस दृष्टिकोण का एक उदाहरण लाहौर के मिस्टर बरकत अली बैरिस्टर द्वारा अब्दुल कयूम की अपील में दिया गया। वह तर्क यह है कि नथुरामल की हत्या कुरानिक कानून के अनुसार उचित थी। मुसलमानों का यह दृष्टिकोण तो समझ में आता है किन्तु महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण तो समझ से बिल्कुल परे है।

"हिंसा की प्रत्येक घटना में मिस्टर गाँधी ने सदैव अनावश्यक अति शिष्टाचार बरता है। किन्तु इन हत्याओं के विरुद्ध गाँधी जी ने एक भी निन्दात्मक शब्द नहीं कहा। वह इन पर सदैव चुप्पी साधे रहे। इस बर्ताव का केवल यही कारण हो सकता है कि वह हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये कुछ हिन्दुओं की हत्या भी सहन करने को तैयार थे। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये गाँधी जी द्वारा किये गये प्रयासों की सूची काफी लम्बी है परन्तु उन्होंने कभी भी मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार के लिये मुसलमानों से जवाब तलब नहीं किया।"[६१]

स्वामी श्रद्धानन्द बलि चढ़े

स्वामी श्रद्धानन्द ने अनुभव किया कि यदि हिन्दुओं के धर्मान्तरण की बाढ़ को रोकने के लिये तत्काल ही कठोर पग नहीं उठाये गये तो हिन्दुओं और देश का इस्लामी करण अनिवार्य है। उन्होंने धर्मान्तरित लोगों को पुनः हिन्दुत्व की गोद में लाने के लिये शुद्धि आन्दोलन चलाया। उनके अदम्य साहस, सन्त स्वभाव और ओजस्वी भाषणों के कारण हजारों धर्मान्तरित लोग, जो धमकी, दबाव या प्रलोभन के शिकार हो गये थे, अब उनके अनुरोध पर पुनः हिन्दू बनने लगे। १९२३ की पहली छमाही में ही संयुक्त प्रान्त के कुछ भागों में १८ हजार से भी अधिक मुसलमान पुनः हिन्दू बन गये। मुस्लिम मुल्लों को लगा कि उनके पाँव तले की धरती जैसे खिसकने लगी है और वे इस्लाम विरोधी अभियान के लिये स्वामी जी को कोसने लगे। उनका सीधा सा तर्क था : तबलीग अर्थात् इस्लाम में धर्मान्तरण एक धार्मिक कर्तव्य भार है जो कुरान ने उन पर डाला है। इस एक मात्र उन्हीं के दैवी अधिकार पर पुनः धर्मान्तरण हेतु काफिर अपना अधिकार नहीं जता सकते। विचित्र बात तो यह थी कि हिन्दू काँग्रेसी नेता भी मुसलमानों के साथ मिलकर स्वामी जी की इस निन्दा के रस का आस्वादन करने लगे।

इस सम्बन्ध में अपने संस्मरणों में स्वामी श्रद्धानन्द ने कुछ तीखे व्यंग्य किये हैं : "१३ फरवरी, १९२३ को मुझसे कहा गया कि अनेक राजपूत भाई मलकाना राजपूतों का पुनरुद्धार करना चाहते हैं और उस आन्दोलन का मैं नेतृत्व करूँ। बाद में अस्पृश्यता निवारण कार्य के लिये भी मुझे बुलाया गया। मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि जहाँ खुलेआम "तब्लीग" करने वाले मुस्लिम नेताओं को काँग्रेस की नीति का मार्गदर्शन करने दिया जाता है और उन्हें उसके अधिकृत प्रतिनिधियों के रूप में काम करने दिया जाता है, वहाँ हिन्दू समाज को विघटन से बचाने के काम में रत लोगों पर लांछन लगाया जाता है और उन्हें काँग्रेस कार्यकारिणी में नहीं आने दिया जाता।[६२]

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी लिबरेटर पत्रिका में एक और घटना का वर्णन किया है: "जहाँ तक अस्पृश्यता-निवारण का सम्बन्ध है, अनेक बार साधिकार यह व्यवस्था दी गयी है कि अपने पिछले पापों का प्रायश्चित करना हिन्दुओं का कर्तव्य है और गैर हिन्दुओं को उससे कुछ लेना देना नहीं है। लेकिन मुसलमान और ईसाई काँग्रेस जनों ने इस व्यवस्था का खुलेआम विरोध किया है। श्री याकूब हसन जैसे निष्पक्ष नेता ने भी मद्रास में मेरे अभिनन्दन के लिए बुलायी गयी एक सभा की अध्यक्षता करते समय खुलेआम मुसलमानों का यह कर्तव्य बताया कि वे भारत के सभी अछूतों को इस्लाम में दीक्षित कर लें।[५९ख]

स्वामी श्रद्धानन्द के आलोचकों द्वारा अपनाये गये दोहरे मापदण्डों का डा. राजेन्द्र प्रसाद ने निरावरण करते हुए कहा है "राष्ट्रवादियों और मुसलमानों- दोनों ने ही स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन की भारी आलोचना की है। उस समय विशेष में उस कार्य के लिये अवसर की उपयुक्तता के बारे में कुछ भी कहें पर यह समझ में नहीं आता कि ईसाई

और मुसलमान उस पर किस आधार पर उंगली उठा सकते हैं। वे बराबर स्वमत के प्रसार में जुटे हुए हैं और हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करके उन्हें अपने अपने सम्प्रदायों में समेटते जा रहे हैं। तब यदि हिन्दू भी गैर हिन्दुओं को अपने धर्म में अन्तरित करना प्रारम्भ कर दें तो गैर-हिन्दुओं को आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है, विशेषतः जब वे स्वयं धर्मान्तरण के कार्य में जुटे हुए हैं। हिन्दुओं को भी दूसरों की भाँति अपने धर्म के प्रचार करने का वैसा ही अधिकार मिलना चाहिये।"(६३)

वे ही मुसलमान, जो ख़िलाफ़त के दिनों में मस्जिद के अन्दर स्वामी जी का भारी स्वागत और उनकी प्रशंसा करते थे अब उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु समझने लगे। कारण यह था कि शुद्धि आन्दोलन मुस्लिम नेताओं के लिए सबसे बड़ा हौवा बन गया था। यदि वह आन्दोलन बल पकड़ लेता तो न केवल हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान बनने का एक हजार वर्ष से एक ही दिशा में चल रहा प्रवाह सदा के लिए ठप्प हो जाता, बल्कि हो सकता था कि यह क्रम ही पलट जाता। धर्मान्तरण की गति मन्द होने पर दारुल इस्लाम का उनका स्वप्न स्वतः ही भंग हो जाता। जब तक हिन्दुओं ने स्वयं ही धर्मान्तरितों के लिए अपने द्वार बंद कर रखे थे, मुसलमान सुरक्षित स्थिति में थे, किन्तु अब इस खतरनाक स्वामी ने द्वार खोल दिये थे। यदि इस क्रम को चलने दिया जाता तो मुसलमानों की भारत के इस्लामीकरण की योजना पर तो पानी फिर ही जाता उनके पूरे विश्व के इस्लामीकरण के स्वप्न भी धरे रह जाते। मुस्लिम देशों में इस्लाम की आलोचना नहीं की जा सकती। उसके अतिरिक्त दूसरा साहित्य वितरण नहीं किया जा सकता। ऐसा कोई प्रसारण मुसलमान देख नहीं सकते जो इस्लाम की धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं के भी विरुद्ध हो। दूसरे देशों में उन्हें अपने मत प्रचार और दूसरे धर्मों पर टीका टिप्पणी करने तथा धर्मान्तरण करने का जनतांत्रिक अधिकार है। गैर मुस्लिम विश्व का इस्लामीकरण उसी समय तक निश्चित है जब तक इस्लाम में प्रवेश के अनेक द्वार तो खुले रहें परन्तु उसके बाहर जाने का कोई द्वार न हो। आर्य समाज और आर्य समाजी श्रद्धानन्द ने न केवल वह द्वार खोल दिया था अपितु उसमें से बाहर जाने का मार्ग भी दिखा दिया था। अतः उन्होंने कुछ करने का निर्णय किया।

२३, दिसम्बर, १९२६ को स्वामी श्रद्धानन्द रुग्ण थे। अब्दुल रशीद नाम का एक मुस्लिम युवक उनसे मिलने आया। उसने एक गिलास पानी माँगा और जब सेवक अन्दर चला गया तो उसने अपना रिवाल्वर निकाला और स्वामी जी पर चार बार गोली चलायी। स्वामी श्रद्धानन्द रुधिर से लथपथ बिस्तर में ही स्वर्ग सिधार गये। जब रशीद पकड़ा गया और उस पर अभियोग चलाया गया तो मुसलमानों ने उसके बचाव के लिये काफी पैसा इकटठा किया। काँग्रेस के एक प्रमुख सदस्य आसफअली ने उसकी पैरवी की। अन्ततः रशीद का दोष सिद्ध हो गया और उसे फाँसी दे दी गयी। विचित्र बात है कि उसकी शवयात्रा में पचास हजार से भी अधिक मुसलमान शामिल हुए। वह एक हत्यारा था जिसने हिन्दुओं के एक महान सन्त और धार्मिक नेता का लहू बहाया था। मस्जिदों में उसके लिए विशेष नमाज़ भी अदा की गयी। जमीयत-उल-उलेमा (तथाकथित राष्ट्रीय विद्वान मुसलमानों

का संगठन) के अधिकृत मुख–पत्र ने एक पत्रक में तरह तरह के तर्क देकर रशीद को शहीद के सिंहासन पर बैठाने का प्रयास किया। ३० नवम्बर १९२७ के टाइम्स आफ इण्डिया का समाचार था : "समाचार है कि स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद की आत्मा को जन्नत में स्थान दिलाने के लिए देवबन्द के प्रसिद्ध इस्लामी कालेज के छात्रों और प्रोफेसरों ने कुरान की पूरी आयतों का पाँच बार पाठ किया और निश्चय किया कि कुरान की आयतों के प्रतिदिन सवा लाख पाठ किये जायें। उन्होंने दुआ माँगी, अल्लाह मरहूम (रशीद) को अलाये इल्ली–ईन सातवें बहिश्त की चोटी में स्थान दे।[६४]

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के बारे में गाँधी जी की प्रतिक्रिया भी विचित्र थी सन् १९२६ में गोहाटी काँग्रेस अधिवेशन में स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि प्रस्ताव उन्होंने प्रस्तुत किया था और उसका अनुमोदन मौहम्मद अली ने किया था। पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है "गाँधी जी ने बताया कि सच्चा धर्म क्या होता है और हत्या के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा : अब शायद आप समझ गये होंगे कि किस कारण मैंने अब्दुल रशीद को भाई कहा है और मैं पुनः उसे भाई कहता हूँ। मैं तो उसे स्वामी जी की हत्या का दोषी भी नहीं मानता। वास्तव में दोषी तो वे हैं जिन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध घृणा फैलायी।"[६१]

गाँधी जी का एक रूपः हिंसा में प्रवृत्त होने के कारण भगतसिंह आदि देश भक्तों की जीवन रक्षा चाहने वाली याचिका पर हस्ताक्षर करने से गाँधी जी ने इन्कार कर दिया था और हिंसा के कारण उन्होंने शिवाजी, राणा प्रताप तथा गुरु गोविन्द सिंह को पथभ्रष्ट देशभक्त कहा था। गाँधी जी का दूसरा रूपः उन्होंने रशीद की करनी को उसी अहिंसा दृष्टि से नहीं देखा।

दिल्ली के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता लाला नानकचंद, रंगीला रसूल के कथित लेखक राजपाल, जिन्होंने सीता पर एक अभद्र पत्रक के मुँहतोड़ उत्तर के रूप में हजरत मौहम्मद पर उक्त पत्र निकाला था, और नथुरामल शर्मा जैसे कुछ अन्य आर्यसमाजी अनेक स्थानों पर मुस्लिम घृणा अभियान के शिकार हुए।

गाँधी जी द्वारा श्रद्धानन्द और आर्य समाज के विरुद्ध इस दुष्प्रचार के कारण आर्य समाजियों की अनेक और स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या को बहुत प्रोत्साहन मिला। हम यह तो नहीं कह सकते कि गाँधी जी ने इस प्रकार की कटु आलोचना यह जानते हुए की थी कि उससे यह हत्यायें होंगी किन्तु इतना तो सत्य है कि इन हत्याओं के होने से गाँधी जी की विचारधारा का एक दूसरा महत्वपूर्ण विरोधी हिन्दू और हिन्दुत्व रक्षक श्रद्धानन्द और उनका आर्य समाज समाप्त हो गया। अब गाँधी जी को मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से रोकने वाला अथवा उस पर उंगली उठाने वाला कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति अथवा संगठन शेष नहीं रह गया था। गाँधी जी अपने व्यक्तित्व का लाभ उठाकर अपनी नीतियों पर चलते रहे। फलस्वरूप १९४६ ई. में कलकत्ता में घोर हिन्दू संहार हुआ। वहाँ सुहरावर्दी मुख्यमंत्री थे और उन्होंने जानबूझ कर महत्वपूर्ण स्थानों में मुसलमान अधिकारियों की नियुक्ति कर दी थी। अगस्त १६, १९४६ को लीग की सीधी कार्यवाही वाले दिन सरकारी कार्यालय बन्द

भारत के इस्लामीकरण का
तीसरा चरण

१७५७ से १९४७
तक सम्पन्न

भारत का तिहाई भाग इस्लामी देश बना

हिन्दुस्तान

भारत में मुस्लिम बहुल काश्मीर

पाकिस्तान

काश्मीर
पश्चिमी पंजाब
बलूचिस्तान
नेपाल
भूटान
असम
पूर्वी बंगाल
लक्षदीप
लंका
मालद्वीव
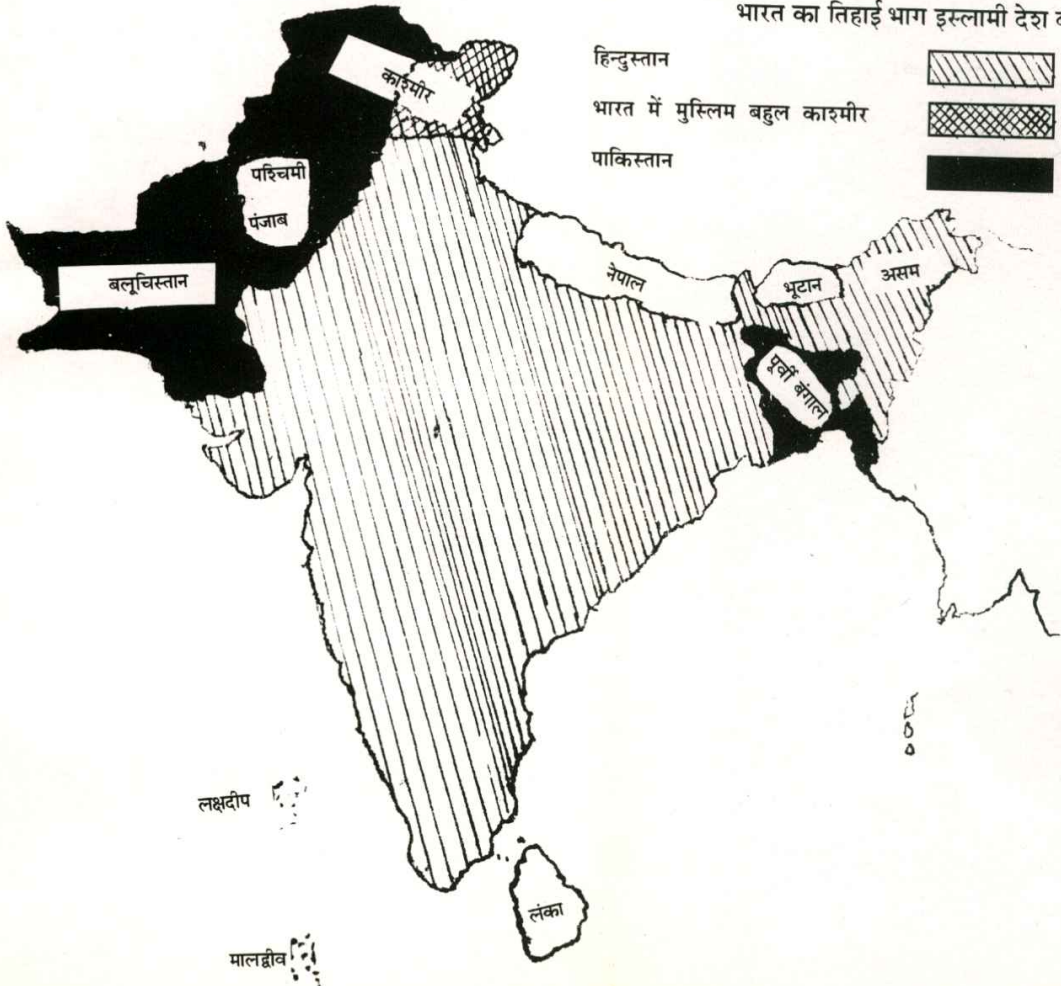
कर दिये गये। पेट्रोल पर उन दिनों राशन था। विशिष्ट समुदाय के लोगों को शासन ने खूब पेट्रोल दिया। फलस्वरूप १६ अगस्त को कलकत्ता में नियोजित ढंग से भीषण नरसंहार हुआ। सदैव की भाँति यथार्थ से बेखबर हिन्दू खूब पिटे। बिहार से बड़ी मात्रा में हिन्दू मज़दूर कलकत्ता में काम करने आते हैं। वह बड़ी संख्या में कत्ल कर दिये गये जिसके परिणामस्वरूप बिहार में साम्प्रदायिक दंगा हुआ और मुसलमान वहाँ के हिन्दुओं के कोपभाजन बने। कलकत्ते में जब हिन्दुओं ने इस अप्रत्याशित हमले से उबर कर प्रत्याक्रमण किया तो गाँधी जी तुरन्त कलकत्ता पहुँचे तथा आमरण उपवास पर बैठ गये। कलकत्ते में गाँधी जी की जीवन रक्षा के लिये क्रोधोन्मत्त हिन्दू युवकों ने तुरन्त हथियार डाल दिये और कलकत्ता में शान्ति स्थापित हो गयी। बिहार में शासन ने सेना की सहायता से और वायु से बम गिराकर स्थिति को काबू में कर लिया। पूर्वी बंगाल में भी गाँधी जी के प्रयासों से हिन्दुओं पर किये गये अनेक अत्याचारों के बाद कलकत्ते की भाँति शान्ति स्थापित हो गयी। किन्तु इस शान्ति का अर्थ यही निकला कि दोषी व्यक्ति कानून से साफ बच गये। पंजाब में सेना और पुलिस में मुसलमानों की संख्या अधिक थी। जनसंख्या भी लगभग बराबर थी इसलिये वहाँ हिन्दुओं को बचाने वाला कोई नहीं था। वहाँ न गाँधी जी पहुँचे न जवाहरलाल की वायु सेना।

गाँधी जी भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। किन्तु उनके मुख्य अनुयाई विभाजन के पक्ष में हो गये थे। जवाहर लाल ने लिखा है कि "हम लोग वृद्ध हो गये थे और फिर से जेल जाना नहीं चाहते थे। विभाजन से इन्कार करने पर जेल जाना निश्चित था।" गाँधी जी के विरोध को माउन्ट बैटन ने यह भय दिखाकर समाप्त कर दिया कि यदि विभाजन स्वीकार न हुआ तो जिन्नाह १६ अगस्त को सीधी कार्यवाही दिवस वाले भीषण रक्तपात को पूरे भारत में दोहराने में समर्थ हैं। अन्ततः गाँधी जी को विभाजन की स्वीकृति देनी पड़ी और भारत का १/३ भाग मुसलमान हो गया। हिंसा की धमकी मात्र के सामने अहिंसा पराजित हो गई।

इस प्रकार गाँधी जी के नेतृत्व में काँग्रेस की दोषपूर्ण नीतियों के कारण भारत के इस्लामीकरण का यह तीसरा चरण सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस दुखान्त अनुभव के पश्चात भी हिन्दुओं ने गाँधी दर्शन को और काँग्रेसी कार्यप्रणाली को अस्वीकार न कर चौथे चरण के लगभग ५० वर्षों में काँग्रेस को अथवा उसी से टूटी बिखरी पार्टियों को जो सभी गाँधी और गाँधीवाद की एक दूसरे से बढ़कर शपथ उठाती हैं देश का दायित्व सौंपे रखा।

२१

भारत के इस्लामीकरण का चौथा चरण

(१६ अगस्त १९४७ से.....)

सम्पूर्ण भारत के इस्लामीकरण के चौथे चरण का प्रारम्भ हमने १६ अगस्त १९४७ से इसलिये माना है कि वह दिन उसकी ११०० वर्ष की गुलामी के बाद स्वतंत्रता का पहला दिन था। किन्तु जैसा बहुधा होता है इस चरण के बीज वास्तव में तीसरे चरण में ही बो दिये गये थे। उन बीजों की फसल अब चौथे चरण में उग रही है। स्वतंत्र भारत के नेतृत्व में यदि पर्याप्त राज्य कौशल, इतिहास ज्ञान, दूर दृष्टि और संकल्प बल होता तो इस फसल का उन्मूलन किया जा सकता था। किन्तु हिन्दू नेतृत्व ने अपने कटु अनुभव और इतिहास से कुछ नहीं सीखा। वह उसी मार्ग पर चलता रहा जिस पर चलकर वह भारत के १/३ भाग के इस्लामीकरण को रोक नहीं पाया था। इतना ही नहीं जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे उसने इस विषयुक्त फसल का उन्मूलन करने के स्थान पर उसे खूब सींचा संजोया और इस प्रकार इस अन्तिम चरण में बचे खुचे भारत के इस्लामीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

अठारहवीं शताब्दी के विख्यात आलिम और सूफ़ी शाहवली उल्लाह (१७०२-१७६२) ने यह सम्भावना व्यक्त की थी कि कदाचित भारत में हिन्दू राज्य स्थापित हो जाय। किन्तु उसने भविष्यवाणी की थी कि यदि ऐसा हो भी गया तो दैवी प्रेरणा से हिन्दू नेता और शासक स्वयं ही इस्लाम ले आयेंगे।[१]

शाहवली उल्लाह कोई ज्योतिषी नहीं थे। उपरोक्त भविष्यवाणी उन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं और मानसिकताओं के गहन अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर की थी। इस भविष्यवाणी के बाद की घटनाओं ने काफी हद तक इस भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध किया। १८५७ का सैनिक विद्रोह जिसमें हिन्दू राजाओं और विद्रोहियों ने मुगल साम्राज्य की भारत में फिर से स्थापना के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी विफल हो गया। मुस्लिम नेतृत्व ने जिहाद की तलवार को भले ही म्यान में रख लिया राजनीति की बिसात पर वह कुशलतापूर्वक ऐसी चाले चलते रहे जिनसे इस्लाम का मुख्य ध्येय भारत का इस्लामीकरण सिद्ध हो जाय।

मुस्लिम बहुल इलाकों को बम्बई प्रान्त से काटकर सिन्ध और बलूचिस्तान सूबों की स्थापना की गई, बंगाल के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को काटकर एक अलग प्रान्त का निर्माण किया गया और उसमें हिन्दुओं का भीषण नरसंहार हुआ। ख़लीफ़ा की पुर्नस्थापना के लिये चलाया गया आन्दोलन जिसमें सहस्त्रों हिन्दू बलिदान हो गये और उसके पश्चात हुये भीषण हिन्दू मुस्लिम दंगे जिनमें सहस्त्रों हिन्दुओं का बलात धर्मान्तरण, सहस्त्रों का कत्ल और

सहस्रों स्त्रियों पर बलात्कार और अपहरण जैसी घटनाओं के पश्चात विश्व इतिहास में सबसे अधिक रक्तरंजित घटना भारत का विभाजन जिसके फलस्वरूप भारत के २५ प्रतिशत मुसलमान भारत के एक तिहाई भाग का इस्लामीकरण करने में सफल हो गये यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त घटनायें है कि शाहवली उल्लाह का अनुमान मिथ्या नहीं था। अब यह प्रश्न रहता है कि क्या शेष भारत का इस्लामीकरण होगा और शाहवली उल्लाह की भविष्यवाणी पूर्णतः सत्य सिद्ध होगी। हमें लगता है कि परिस्थितियों को देखते हुये उसके सत्य होने के यथेष्ट कारण है। पुस्तक के इस भाग में हम इन परिस्थितियों और कारणों पर विचार करेंगे।

सन् १९४७ की भयंकर भूलें-

१- द्विराष्ट्र सिद्धान्त और अल्प संख्यकों की समस्या

स्वतंत्रता के पश्चात स्वयं हिन्दू नेताओं ने ही ऐसे निर्णय लिये जिन्होंने हिन्दू भारत का भावी इस्लामीकरण सुनिश्चित कर दिया :

(क) भारत विभाजन का आधार ही था ९७ प्रतिशत भारतीय मुसलमानों द्वारा इस सिद्धान्त के पक्ष में सामूहिक वोट देना कि मुसलमान अलग राष्ट्र हैं और वह किसी भी दशा में हिन्दुओं के साथ सहअस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सकते। यह बात इस्लाम धर्म की मूलभूत भावनाओं के कितनी अनुकूल थी यह पीछे स्पष्ट कर दिया गया है किन्तु हिन्दू नेतृत्व ने तो मान न मान हम तेरे मेहमान वाली हठधर्मी पर कमर कसी हुई थी। हिन्दू भारत में मुसलमानों और मुस्लिम पाकिस्तान में हिन्दू-सिखों का रहना इस्लाम और पाकिस्तान के सिद्धान्त को और इसलिये विभाजन को ही नकारता था। समस्या मुस्लिम बहुल प्रान्तों की नहीं थी। वहाँ तो प्रत्येक दशा में सत्ता मुसलमानों के हाथ में ही रहनी थी, अपितु हिन्दू बहुल प्रान्तों में और केन्द्र में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की थी जो ज्यों की त्यों रह गई। निस्सन्देह डा. अम्बेडकर और जिन्नाह के जनसंख्या की अदला बदली के सुझाव को कार्यान्वित न करना सबसे बड़ी भूल हुई। मुस्लिम नेतृत्व के मन में इस विषय पर कोई भ्रम अथवा भ्रान्ति नहीं रही।

इस्लाम में अल्पसंख्यकों का कोई स्थान नहीं

पाकिस्तान के बौद्धिक पिता रहमत अली थे। वह कोई कठमुल्ला अथवा किसी मस्जिद के इमाम नहीं थे। वह एक सुशिक्षित, लंदन में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। पाकिस्तान की आवश्यकता और उसकी रूप रेखा पर विचार करते हुये उन्होंने अपनी पुस्तक "द मिल्लत एंड इट्स मिशन" में लिखा था।

"अल्पसंख्यक वाद से बचना। इसका अर्थ यह है कि हमें हिन्दू क्षेत्रों में मुसलमान अल्प संख्यकों को नहीं छोड़ना है भले ही अंग्रेज़ और हिन्दू उन्हें पूर्ण संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करने को तैयार हों। मुसलमानों की अलग राष्ट्रीयता का, जो उनका जन्म सिद्ध

अधिकार है, संवैधानिक संरक्षण कोई विकल्प नहीं है। साथ ही साथ हमें अपने मुस्लिम क्षेत्र में किसी हिन्दू अथवा सिख को नहीं रहने देना चाहिये भले ही वह संवैधानिक सरंक्षण अथवा उसके बिना भी वहाँ रहना पसन्द करे। **वह कभी भी हमारे नहीं हो सकते। शान्तिकाल में उनके कारण हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में बाधा पड़ेगी और युद्ध काल में वह हमारे साथ विश्वासघात कर हमारे नाश का कारण बनेंगे।"** थोड़ा ध्यान देने से ही यह समझ में आ जायेगा कि यह बात यथार्थ के कितनी निकट है।

रहमत अली के कथन पर भारत में घोर आपत्ति उन लोगों द्वारा की जाती रही है जो इस्लाम के दर्शन और इतिहास से अनभिज्ञ हैं। हम पहले खण्ड में इस विषय पर स-प्रमाण लिख कर सिद्ध कर चुके हैं कि इस्लाम की दुनिया में कुफ्र का कोई स्थान नहीं है। वह मजबूरी में उस समय तक दूसरे दर्जे के नागरिक की हैसियत से बरदाश्त किये जा सकते हैं जब तक कि वह बुद्धिमानी पूर्वक इस्लाम को एक मात्र सच्चा धर्म मान कर अपने मूल झूठे धर्म को तिलांजली न दे दें। मुस्लिम राज्य में उनकी राजनीतिक हैसियत न के बराबर होती है। इसलिये इस्लामी देशों में अल्प संख्यक लम्बे समय तक अल्प संख्यक समस्या उत्पन्न नहीं कर सकते। देर सबेर इस्लाम उन्हें उदरस्थ कर ही लेता है।

दूसरी ओर मुस्लिम अल्प संख्यक गैर-मुस्लिम राष्ट्र में, भले ही वह अपने को पंथ निरपेक्ष घोषित क्यों न करता हो, कभी संतुष्ट नहीं रह सकते जब तक की वहां इस्लाम और शरियत कानून का वर्चस्व स्थापित न हो जाय जिसके लिये प्राण-प्रण से चेष्टा करते रहना उनका अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है (देखें अध्याय ३ से ८ तक)।

रहमत अली द्वारा रेखांकित इस दर्शन के अनुसार यथार्थवादी जिन्नाह और अम्बेडकर अल्पसंख्यकों की अदला बदली का पग उठाने को तैयार हो गये थे परन्तु काँग्रेस इसके लिये तैयार नहीं हुई और उसके स्थान पर नितांत अव्यवहारिक यह सिद्धांत स्वीकार किया गया कि दोनों देश अपने अल्पसंख्यकों के प्रति न्यायपूर्ण और उदार नीति अपनायेंगे। यदि किसी देश ने ऐसा नहीं किया तो दूसरा देश उसका बदला अपने देश में रह रहे अल्पसंख्यकों से ले सकता है। इसे होस्टेजेज़ सिद्धान्त (Hostages Theory) कहा गया है। क्या आज के युग में कोई भी देश इस अमानवीय सिद्धांत पर आचरण कर सकता है?

पाकिस्तान ने रहमत अली के "यथार्थ" को स्वीकार कर अपने देश को "इस्लामी जनतंत्र" घोषित किया। जैसा कि अब तक के अध्ययन से हम समझ चुके है इस्लामी जनतंत्र बेशक एक निरर्थक शब्दाडम्बर है। इस्लाम में वह जनतंत्र सम्भव नहीं है जिसकी कल्पना साधारण तौर पर "जनतंत्र" शब्द से की जाती है।

पाकिस्तानी "जनतंत्र" ने तो बहरहाल अपने अल्पसंख्यकों के धर्मान्तरण द्वारा अथवा उनको बाहर भगा कर अपनी अल्पसंख्यक समस्या को समाप्त कर दिया। किन्तु अव्यवहारिक हिन्दू भारत में समस्या ज्यों की त्यों रह गई।

(ख) हिन्दू नेतृत्व ने भारत के इस्लामीकरण का मार्ग खोला

मुस्लिम ब्रादरहुड नामक कट्टरपंथी आतंकवादी मुस्लिम संगठन के सात नेताओं ने जार्डन की राजधानी अम्मान में स्वीकार किया कि "लोकतांत्रिक देश में उनके लिये आन्दोलन चलाना सरल होता है। मानवीय अधिकारों की बात करने वाले संगठन और (लोकतांत्रिक) देश इस प्रकार के संगठनों को बड़ा सुरक्षा कवच प्रदान करते हैं।[२]

इसलिये जब विभाजन के पश्चात भारत ने अपने को धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र घोषित किया तो यथार्थवादी मुस्लिम नेतृत्व ने इस निर्णय का स्वागत करने और इस से लाभ उठाने में देर नहीं लगाई। उन्होंने कहा : सरकार की नीति के रूप में धर्मनिरपेक्षता का कोई विरोध नहीं किया जा सकता जिसका अर्थ यह है कि धार्मिक आस्थाओं के आधार पर किसी के साथ कोई भेद भाव या पक्षपात नहीं बरता जायगा--वर्तमान परिस्थितियों में (अर्थात जब तक यहाँ हिन्दू बाहुल्य है और गैर इस्लामी शासन है) हम चाहते हैं कि सरकार का यह धर्मनिरपेक्ष रूप बना रहे।[३] परन्तु दूसरे ही सांस में वह अपने समाज के लिये धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत के विपरीत, शासन में और नौकरियों में धर्म के आधार पर विशेष सुविधायें और आरक्षण भी माँगने लगे। भारत के अधिकांश उलमा यह मानते हैं कि राज्य सत्ता को धर्मनिरपेक्ष बने रहना चाहिये पर मुसलमानों को उस धर्मनिरपेक्षता से बचाकर रखा जाना चाहिये।[४] भारत में अल्पसंख्यक समस्या बद से बदतर होती गई जो होना ही था। ढाई करोड़ से बढ़कर उनकी संख्या ९.५ करोड़ हो गई और धार्मिक कट्टरपन की मात्रा भी वही हो गई जो विभाजन से पहले थी।

२- विभाजन के कारक तत्वों को भुला देना-

१५-८-१९४७ को स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन भारत के ९७ प्रतिशत मुसलमान अलगाववाद, अल्पसंख्यकवाद, रूढ़िवाद, द्विराष्ट्रवाद और घोर मुस्लिम साम्प्रदायिकता के रोग से भयंकर रूप से ग्रस्त थे। सन् १९४६ में मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही के समय बंगाल और पंजाब में हुये भीषण हिन्दू विरोधी दंगों ने इस भावना की पुष्टि की थी।

यह कैसी आश्चर्यजनक बात है कि भारत का हिन्दू नेतृत्व या तो इस सत्य को बिल्कुल भूल गया अथवा उसने यह विश्वास कर लिया कि कई शताब्दियों से मुस्लिम जनमानस में बैठी हुई मजहब-जन्य यह भयंकर हिन्दू विरोधी घृणा और आक्रामकता सहसा ही १५-८-४७ की अर्धरात्रि को स्वयंमेव दूर हो गई। और यह करोड़ों कट्टर, धर्मान्ध लोग जो काफिरों का इस्लाम में धर्मान्तरण अथवा विनाश आवश्यक धर्मानुष्ठान मानते आये थे सहसा ही धार्मिक सहनशीलता, हिन्दू भारत के प्रति देश भक्त और जनतंत्रवाद के समर्थक बन गये। क्या देश विभाजन हो जाने मात्र से हिन्दू मुसलमान एक राष्ट्र हो गये? क्या उन्होंने अपनी अलग पहचान और अलग कानून की जिद तथा भारत पर फिर से इस्लामी राज्य लाने की आकांक्षा छोड़ दी? क्या उन्होंने एक अच्छे चरित्र वाले हिन्दू गाँधी को एक

दुष्चरित्र और चोर मुसलमान से बेहतर समझना स्वीकार कर लिया ? आज भी कोई आलिम यह स्वीकार नहीं कर सकता। और आलिम ही मुसलमानों के नेता और धर्मगुरु हैं।

३- राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिये साम्प्रदायिक तत्वों से साँठ गाँठ

जब वर्षों तक देश भक्ति और अनुशासन की शिक्षा पाये हुये सैनिक शत्रु देश में युद्ध बन्दी बना लिये जाते हैं और मुक्त होकर स्वदेश लौटते हैं तो उनकी नियुक्ति पुराने पदों पर नहीं कर दी जाती। उनको प्राथमिक जाँच पड़ताल के पश्चात तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रथम श्रेणी में, जिसे शुभ्र श्रेणी कहा जाता है, वह लोग होते है जिन पर शत्रु द्वारा प्रचार का कोई प्रभाव न पड़ा हो। देश भक्ति और सैनिक अनुशासन में कोई कमी न आई हो। इस श्रेणी के लोग अपने पुराने पदों पर नियुक्त कर दिये जाते हैं। दूसरी सलेटी श्रेणी में वह लोग होते हैं जो संदेह के घेरे में हो। उनको महत्वपूर्ण स्थानों पर न रखकर असंवेदनशील स्थानों में रखकर उन पर गहरी दृष्टि रखी जाती है। यदि वह सन्देह से परे पाये जाँय तो उनकी गिनती भी प्रथम श्रेणी में कर ली जाती है। तीसरी काली श्रेणी में वह लोग होते हैं जिनकी देशभक्ति और अनुशासन निश्चित रूप से शत्रु के प्रचार अथवा दूसरे कारणों से संदिग्ध पाया जाय। ऐसे सैनिकों को सेना से अवकाश देकर निकाल दिया जाता है। शत्रु द्वारा इन सैनिकों की निष्ठा डिगाने के लिये उपयोग किये गये सभी हथकण्डों का गहन अध्ययन किया जाता है और फिर उससे निपटने के कारगर उपाय सोचे जाते हैं और किये जाते हैं।

किन्तु हमारे देश में इसके विपरीत हुआ। विभाजन के पश्चात वह सब लोग जो अलगाववाद का विष फैलाने, देश को विभक्त कराने और खून खराबा कराने के ज़िम्मेदार थे उन्हें अपने को धर्मनिरपेक्ष कहने वाली सत्ताधारी काँग्रेस और उसी के चिन्तनवाली उसी से टूटी बिखरी अनेक पार्टियों ने आने वाले समय में मुस्लिम वोट संग्रह करने के लोभ में गले लगाने से संकोच नहीं किया। वहाँ घुसकर भेड़ की खाल में भेड़िये की कहावत चरितार्थ करते हुये यह महानुभाव और उनके तथाकथित धर्मनिरपेक्ष मित्रगण उन लोगों को साम्प्रदायिक कहकर राजनीतिक अछूत घोषित करने लगे जिन्होंने इनकी घिनौनी देशघाती करतूतों पर उंगली उठाई। मुस्लिम वोटों के लालच में इन तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों में इन घोर साम्प्रदायिक तत्वों से हाथ मिलाने और किसी भी कीमत पर उनके तुष्टीकरण करने की होड़ लग गयी।

जिस समय काँग्रेस को सत्ता मिली थी गाँधी जी के नाम का सम्मोहन, जवाहर लाल नेहरू, पटेल और राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं की लोकप्रियता उसको विरासत में मिली थी इसलिये काँग्रेस एक राजनीतिक दल ही नहीं था वह राष्ट्र की सम्पूर्ण निष्ठा, शक्ति और भक्ति का केन्द्र और प्रतीक भी थी।

उसके पास संसार की एक सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर एजेंसी, कुशल पुलिस, सेना और प्रशासन भी था। स्वतंत्रता की नयी उमंग में राष्ट्रभक्ति से ओत प्रोत कुशल राजतंत्र और प्रजा

भी उसके साथ थी। इस परिस्थिति में उपरोक्त साधनों से सम्पन्न कांग्रेस को सत्ताच्युत होने का कोई भय नहीं था।

किन्तु डा. विनयशील गौतम के शब्दों में : "काँग्रेस ने ऐसे सुअवसर पर भी सुदूर भविष्य में अपनी सम्भावित पराजय के डर से हिन्दुओं के सत्ता में आ जाने का भय मुसलमानों को दिखाकर मुस्लिम वोटों को अपने पक्ष में प्रभावित करने के प्रयास किये।" (५)

डा. ताराचन्द का कहना है कि यद्यपि विश्व के अनेक देशों में राष्ट्रों ने शासन को जन्म दिया है किन्तु अनेक देशों में ऐसा भी हुआ है कि शासन ने ही राष्ट्र को जन्म दिया है। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका इत्यादि अनेक विकसित देश कुशल और राष्ट्रीय शासकों द्वारा ही उन्नत राष्ट्र बन पाये हैं। यदि काँग्रेस शासन चाहता तो कोई कारण नहीं था कि अपने शासन के प्रथम २० वर्षों में ही वह बिना ज़ोर ज़बरदस्ती केवल उत्तम शिक्षा द्वारा ही प्रजा में व्याप्त अलगाववाद, मुस्लिम कट्टरवाद, जातिवाद जैसे राष्ट्रीयता के लिये अति विषाक्त संस्कारों को जड़ मूल से मिटाकर एक बलवान राष्ट्र निर्माण न कर सकता।

किन्तु कांग्रेस के इन प्रयासों का मुख्य ध्येय था जैसे भी हो मुसलमानों का तुष्टीकरण कर उनको कांग्रेस के साथ जुड़ा रखना। इसका फल भी वही निकला जो विभाजन से पहले गाँधी जी द्वारा अपनायी गयी मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से निकला था। अंतर केवल इतना था कि उस समय सत्ता में अंग्रेज थे जिनको यहाँ राज्य करने के लिये मुस्लिम वोटों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसलिये वह यदा कदा मुसलमानों को डराते धमकाते भी रहते थे और मुसलमान भी उनसे भय खाते थे। अब सत्ता प्राप्त करने के लिये और सत्ता में बने रहने के लिये मुस्लिम वोटों की उन सब दलों को आवश्यकता थी जो राष्ट्र की एकता अखण्डता का ढिंढोरा तो पीटते थे किन्तु सत्ता प्राप्ति के लिये उस नेतृत्व का सहारा लेने को लालायित थे जिसका स्पष्ट और घोषित ध्येय किसी न किसी प्रकार भारत का इस्लामीकरण था। कुशल मुस्लिम नेतृत्व अपने वोटों के बदले में धीरे-धीरे वह सब सुविधायें प्राप्त करता रहता था जिससे उनको अपनी ध्येय पूर्ति में सहायता मिलती हो।

"भारत के प्रथम काँग्रेसी प्रधानमंत्री के काल में उत्तर भारत में जमाते इस्लामी और दूसरे हिन्दू विरोधी वहाबी संगठनों ने मुसलमानों में अपनी धाक जमा ली। काँग्रेस की घोर शत्रु मुस्लिम लीग का पुनरोदय हो गया। और कांग्रेस ने केरल में उसके साथ मिलकर सरकार बना ली। हैदराबाद में पुराने रजाकारों ने तामीरे-मिल्लत और इत्तेहादुल मुसलमीन संगठन बना लिये------काँग्रेस की पुरानी साथी जमाते-उलेमा का व्यवहार भी दकियानूसी और सुधार विरोधी हो गया। सत्तारुढ़ पार्टी काँग्रेस ने धर्मनिरपेक्ष मुस्लिम नेतृत्व को उभरने नहीं दिया।" (६)

देश की राजनीतिक पार्टियों की मुस्लिम वोटों पर आधारित राजनीति को देखकर मुस्लिम साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और भारत के इस्लामीकरण की अदम्य इच्छा रूपी दैत्य जो विभाजन के पाप से भयभीत छुपा पड़ा था उठ खड़ा हुआ और अब ५० वर्षों

में पेट्रो डालरों से बल पाकर पहले से भी अधिक शक्तिशाली हो उठा है।

४- घोर साम्प्रदायिक शिक्षा

चौथी भूल इस तथ्य को भुला देना अथवा उपेक्षित कर देना था कि मुस्लिम शिक्षा का वह पूरा तंत्र जो अंग्रेजी सरकार ने खूब सोच समझकर कुटिलतापूर्वक मुसलमानों में कट्टर धर्मान्धता तथा अलगाववादी हिन्दू मुस्लिम विद्वेष को बढ़ावा देने के लिये खड़ा किया था और देश का विभाजन जिस शिक्षा की अन्तिम परिणति थी, न केवल ज्यों का त्यों खड़ा रह गया अपितु उसका अपूर्व विस्तार करने दिया गया और उस पर जाने माने घोर साम्प्रदायिक और धर्मान्ध मौलानाओं का एकाधिकार पुष्ट हो जाने दिया गया। इस विषय पर हम एक अलग अध्याय में विस्तार से विचार करेंगे।

५. विदेशी धन

पाँचवी भूल थी धर्म और संस्कृति के नाम पर भारत में आने वाले अथाह विदेशी धन और मिशनरियों के प्रवेश पर अंकुश न लगाना।

६. असफल नेतृत्व को स्वीकार करते रहना

छठी भूल थी विभाजन के पश्चात् हिन्दू जनता द्वारा सत्ता में उन्हीं लोगों को बिठाये रखना जिनकी पिछले ३० वर्ष की नीतियों ने भारत का विभाजन करवाया था। गाँधी और गाँधीवाद के भयानक मोहजाल में ३० वर्ष गुज़रने के बाद भी उस समय देश के पास नेहरू के स्थान पर विकल्प के रूप में कुछ लोग थे– सरदार वल्लभ भाई पटेल, दामोदर विनायक सावरकर, पुरुषोत्तम दास टंडन, डा. एस. राधाकृष्णन, डा. मुखर्जी, डा. मुंजे, छागला, किदवई इत्यादि। हिन्दू राष्ट्रवादी नेतृत्व के अभाव में भारत एक धर्मनिरपेक्ष हिन्दू राज्य और हिन्दू राष्ट्र घोषित नहीं किया जा सका। इस एक घोषणा से उपरोक्त अनेक भूलों के परिणामों से बचा जा सकता था।

७. इतिहास की भूलों से शिक्षा न लेना

सातवीं भूल थी गाँधी जी जैसे असाधारण महापुरुष के कटु किन्तु स्पष्ट अनुभवों से कोई पाठ न सीखना। इसकी विस्तारपूर्वक समीक्षा आगे करेंगे।

भारत के इस्लामीकरण
का चौथा (अन्तिम) चरण

१९४७ —

उभरती इस्लाम की छाया

मुस्लिम वर्चस्व क्षेत्र

मुस्लिम वर्चस्व वाले जनपदों की सूची
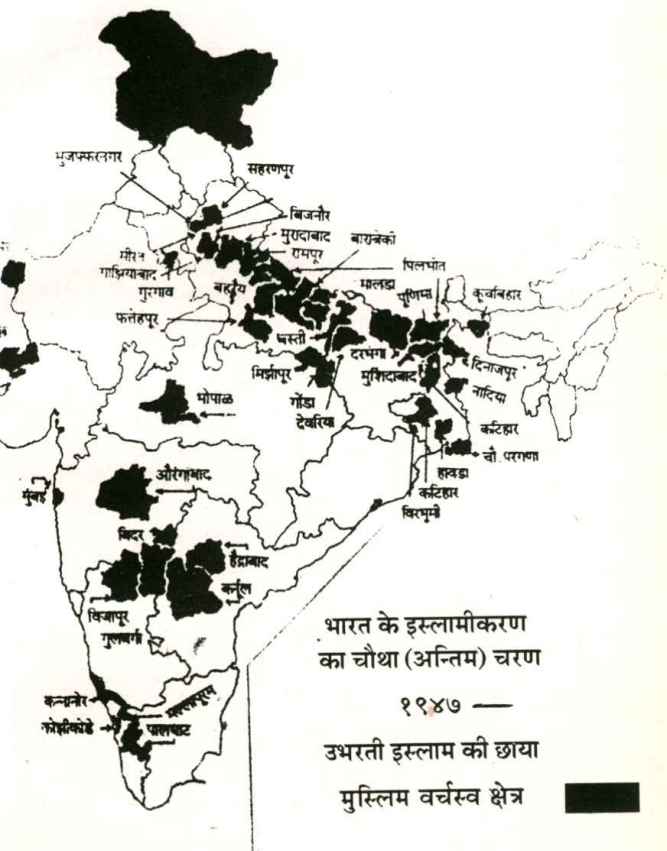
उत्तर प्रदेश

1– रामपुर
2– बिजनौर
3– मुरादाबाद
4– सहारनपुर
5– मुजफ्फरनगर
6– मेरठ
7– बहराइच
8– गोण्डा
9– गाजियाबाद
10– पीलीभीत
11– देवरिया
12– बाराबंकी
13– बस्ती

पश्चिमी बंगाल

14– मुर्शिदाबाद
15– मालदा
16– पश्चिमी दिनाजपुर
17– बीरभूमि
18– नदिया
19– चौबीस परगना
20– कूच बिहार
21– हावड़ा

केरल

22– मालापपुरम
23– कोझीकोडे
24– कन्नानोर
25– पालघाट
26– वायन्ड

बिहार

27– पुरनिया
28– कटिहार
29– दरभंगा

कर्नाटक

30– बीदर
31– गुलबर्गा
32– विजयपुर

महाराष्ट्र

33– ग्रेटर बाम्बे
34– औरंगाबाद

आन्ध्र प्रदेश

35– हैदराबाद
36– करनूल

हरियाणा

37– गुड़गाँव

मध्य प्रदेश

38– भोपाल

राजस्थान

39– जैसलमेर

गुजरात

40– कच्छ

नोट– यह लिस्ट पूरी नहीं है। कुछ दूसरे जनपदों में विशिष्ट
मुस्लिम वर्चस्व हो गया है।

२२

हिन्दू विरोधी मतों के प्रचार प्रसार की छूट और शिक्षा

पिछले पन्नों में किये गये अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हो गया होगा कि जब जब मुस्लिम समाज में उलेमा, सूफ़ियों और मौलवियों का वर्चस्व रहा है तब इस्लाम का काफिर (हिन्दू) विरोधी धार्मिक उन्माद बढ़ा है और उसके कारण हिन्दू मुस्लिम टकराव को बल मिला है।

स्वतंत्रता के पश्चात इस विषय की गहरी छानबीन होनी चाहिये थी। उदारमना मुसलमानों को विश्वास में लेकर सभी नागरिकों के लिये राष्ट्रीय शिक्षा का ऐसा पाठ्यक्रम बनाना चाहिये था जिससे भारतीय मुसलमानों को दाराशिकोह, छागला, अनवर शेख इत्यादि विद्वानों की तरह अपने हिन्दू पूर्वजों की संस्कृति और महानता का ज्ञान होता जिसके कारण पुरातन काल में भारत विश्वगुरु माना जाता था। यह शिक्षा वेदों और उपनिषदों के ज्ञान द्वारा ही हो सकती थी। यदि बिना किसी प्रयास के विपरीत परिस्थितियों में दारा शिकोह और छागला जैसे अनेक उदार विद्वान पैदा हो सकते हैं तो राष्ट्रीय स्तर पर शासन द्वारा समुचित शिक्षा नियोजित करने पर ऐसे विद्वान क्यों नहीं पैदा किये जा सकते?

उन्हें यह भी बताया जाता कि विदेश से आये हुये कुछ धर्मान्ध आक्रमणकारियों ने उनके पूर्वजों के साथ क्या किया। इसके विपरीत इतिहास से इन आक्रमणकारियों और शासकों द्वारा उस समय के हिन्दुओं पर जो भारतीय मुसलमानों के भी पूर्वज थे जो अत्याचार किये गये वह इतिहास की पुस्तकों में से शासनादेश द्वारा निकाल दिये गये और उसके स्थान पर मदरसों और मकतवों की उस शिक्षा का अपूर्व विस्तार होने दिया गया जो हिन्दुओं के प्रति घृणा और शत्रुता पर बार-बार बल देती है। इस शिक्षा का संचालन उन लोगों के हाथ में रहने दिया गया जो हिन्दू धर्म, संस्कृति और रीति रिवाजों से घृणा करना धर्मनिष्ठ मुसलमान के लिये अनिवार्य निर्धारित करते हैं। और जो अपने शिक्षा संस्थान में अपने नन्हें मुन्ने बच्चों और किशोरों को यह सिखाते हैं कि इन मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने से पहले यहाँ रहने वाले हिन्दू असभ्य थे जिनको न खाने, पीने और न पहनने की तमीज़ थी और जो अनेक देवी देवताओं और जड़ पदार्थों को पूजते थे।

उदाहरण के रूप में मौलाना सयद हसन अली नदवी (अली मियां) के कुछ विचार उनकी पुस्तक "मुस्लिम्स इन इण्डिया" से उद्धृत कर रहे हैं। उनके कुछ विचार पहले भी उद्धृत किये जा चुके हैं।

"कभी कभी मुसलमान भारत में बिना किसी भौतिक लक्ष्य और आकांक्षा के आये। उनका ध्येय केवल धार्मिक था। वह इस्लाम का सामाजिक न्याय और समानता का संदेश

लेकर आये जिससे उस संकीर्ण और अंधेरी दुनिया में उन लोगों को प्रकाश और स्वतंत्रता मिले जिसके लिये वह तरस रहे थे-----हजरत अली हुजवेरी, ख्वाजा मुइनुद्दीन अजमेरी और सयद अली बिन बहाव हमदानी कश्मीरी के नाम इसी श्रेणी में आते हैं।

"और कुछ आये योद्धाओं और विजेताओं के रूप में जैसे महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी और ज़हीरुद्दीन बाबर। साहस और आकांक्षा हृदय में लिये इन लोगों ने यहाँ एक शानदार साम्राज्य की नींव डाली जो सैकड़ों वर्ष तक यहाँ पनपता रहा और जिसने देश को तरक्की और खुशहाली की शानदार ऊँचाईयों पर पहुँचाया।

"यह लोग अपने को अल्लाह द्वारा उसकी पृथ्वी और रियाया के ट्रस्टी समझते थे। उनका विश्वास था हर मुल्क हमारा है क्योंकि वह हमारे अल्लाह का है।" (इन महापुरुषों ने भारत के इस्लामीकरण में क्या भूमिका निभाई वह हम पहले ही बता आये हैं-लेखक)।

"जब मुसलमानों ने भारतीय भूमि पर पैर रखा-----सांस्कृतिक रूप में भारत सभ्य संसार से काफी समय पहले से कट चुका था।-------मुसलमानों से पहले भारत पर अन्तिम आक्रमण करने वाला सिकन्दर महान था। उसके बाद भारत का सम्पर्क बाहर के विश्व से कट गया। विदेशों से जो ज्ञान का आदान प्रदान होता है वह समाप्त हो गया। (ऐसा लगता है अली मियाँ विदेशी आक्रमणों को किसी देश की उन्नति के लिये आवश्यक समझते हैं--लेखक)।

"ऐसे समय में भारत की रंगभूमि में मुसलमानों ने प्रवेश किया। वह अपने साथ एक नया व्यवहारिक और तर्कबुद्धिपरक मज़हब, विकसित ज्ञान, उन्नतिशील संस्कृति और विकसित सभ्यता लाये जिसमें अनेक राष्ट्रों की संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का समावेश था।

"इन उपहारों में सबसे अधिक मूल्यावान थी इस्लाम की ईश्वर की संकल्पना जो मनुष्य और उसके निमाता के बीच में प्रार्थना और निवेदन के सभी बिचौलियों को समाप्त कर देती है। निश्चय ही इस्लाम के विश्वास में बहुदेवतावाद, अवतारवाद और मुनष्य की आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाने जैसे सिद्धान्तों का कोई स्थान नहीं है।

"भारत में परिधान मोटे और खुरदरे कपड़े के बनते थे। गुजरात के सुल्तान महमूद शाह ने कपड़े बुनने, रंगने, छापने और उनके डिजाइन बनाने के अनेक कारखाने लगाये।

"मुसलमानों ने भारत के निवासियों को रहने की स्वच्छ और उत्तम रीतियाँ सिखायीं। उन्हें भोजन, पेय पदार्थ और उत्तम स्वाद के भोजन से परिचित कराया। उन्होंने उनको स्वास्थ्यवर्धक नियम सिखाये। हवादार मकानों का निर्माण और भोजन बनाने और खाने के विविध प्रकार के बर्तन। उस समय तक भारतवासी प्रीतिभोज के समय भी पेड़ों के बड़े बड़े पत्तों पर ही भोजन करते थे जैसा कि अब भी कहीं कहीं करते हैं।"

अलीमियां जानबूझकर अथवा अपनी अनभिज्ञता के कारण अपने विद्यार्थियों को यह नहीं बताते कि एक से नौ तक के अंकों, शून्य का प्रयोग और दशमलव के आविष्कारकर्ता जिनसे आज समस्त संसार गणना करता है हिन्दू थे। भारत से ही यह अरब देश पहुँचे और

हिन्दसे कहलाये। वहाँ से ग्रीस पहुँचे और न्यूमेरेरा इन्डिका कहलाये। जब संसार के प्राणी जंगलों में नंगे घूम रहे थे हिन्दू ज्योतिष, त्रिकोणामिति, बीजगणित, रेखागणित, भाषा विज्ञान, औषधि और सर्जरी के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे। यहाँ के वैद्यों को ख़लीफ़ा का इलाज करने को बुलाया जाता था। पाँच हजार वर्ष पुरानी मिस्र की ममियों पर लपेटा गया कपड़ा भारत से ही वहाँ आयात किया जाता था। इस्लाम के जन्म से सहस्रों वर्ष पूर्व उपनिषद लिखे जा चुके थे जिन्हें दाराशिकोह इत्यादि अनेक विद्वानों द्वारा एकेश्वरवाद पर आज तक लिखे गये ग्रन्थों में सर्वोत्तम माना जाता है। किन्तु महत्वपूर्ण यह नहीं है कि अलीमियाँ मुसलमानों के आगमन से पहले भारत के निवासियों को असभ्य समझते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि वह अपने विद्यार्थियों को हिन्दुओं के गौरवपूर्ण भूतकाल से अनिभज्ञ रखते हैं और उन विदेशी आक्रमणकारियों को जिन्होंने यहाँ के हिन्दुओं पर अवर्णनीय अत्याचार किये, इस देश को सभ्यता सिखाने वालों के रूप में पेश करते हैं जिन पर गर्व किया जाना चाहिये, जबकि ९० प्रतिशत भारतीय मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू ही थे। महत्वपूर्ण यह है कि वह भारत के मदरसों, मकतबों के प्रेरणास्रोत है। वह निश्चय करते हैं कि वहाँ क्या पढाया जाय और क्या न पढ़ाया जाय। कोई अन्य पुस्तकों को पढ़कर विपरीत धारणा न बना ले इसलिये छात्रों को पाठ्यक्रम से बाहर की पुस्तकें पढ़ने से निरुत्साहित किया जाता है और उनसे कहा जाता है : "तुम्हारी पढ़ने की मेज़ सार्वजनिक पुस्तकालय की मेज़ नहीं है। यह एक मदरसे की मेज़ है। हमारी अलमारियों में ऐसी कोई किताब नहीं मिलेगी जिसे पढ़कर आदमी हफ्तों मानसिक उलझन में पड़ा रहे। कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी जानी चाहिये जो उन चिर-पोषित आदर्शों के प्रति शंका पैदा करे जो कि हमारे मदरसों की आधारशिला हैं।"(७)

यह सब थोड़ा विस्तार से लिखने का हमारा ध्येय दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना है। पहली यह कि मदरसों और मकतबों में पढ़ने वाले किशोरों और नवयुवकों में कैसी मानसिकता का निर्माण होता है। दूसरी यह है कि उलमा द्वारा संचालित समस्त मदरसों मकतबों का बराबर विकसित होता यह विशाल तंत्र मुस्लिम समाज को सदैव एक तरोताज़ा, परम विद्वान, कट्टर, रुढ़िवादी, एक ही ध्येय के प्रति समर्पित नेतृत्व प्रदान करता है। यह इस्लाम के मिशनरी भी हैं और योद्धा भी। यह मुस्लिम समाज के सुधारक भी है और उसके रक्षक भी। इस तंत्र के रहते यह कभी नहीं हो सकता कि मुस्लिम समाज में हिन्दू समाज की भाँति एक गाँधी या एक श्रद्धानन्द पैदा हो और उनके मर जाने पर उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन ही समाप्त हो जाय। इस्लाम का यह शिक्षा तंत्र, भले ही संसार उसको रुढ़िवादी कह कर उसकी निंदा करे, अद्वितीय है। विश्व पर इस्लाम का वर्चस्व और शरियत शासन स्थापित करने के उसके ध्येय को प्राप्त करने में वह निःसंदेह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हथियार है।

अपने विषय पर आने से पहले इन मदरसों और मस्जिदों में चलने वाले मकतबों के विषय में कुछ विख्यात गैर हिन्दू विद्वानों और मुस्लिम विद्वानों के विचारों पर दृष्टि

डालना आवश्यक है।

विख्यात ब्रिटिश राजनीति विशारद सर स्लीमन का कहना है कि "मस्जिदों में दी जाने वाली शिक्षा हिन्दू मुसलमानों में सौहार्द्र उत्पन्न करने के स्थान पर वैमनस्य को जन्म देती है।"(८) प्रसिद्ध मुस्लिम राजनयज्ञ और पत्रकार जी. एच. जानसेन के अनुसार "उन सभी राष्ट्रों ने जो अपने को इस्लामी राष्ट्र समझते हैं इस्लाम की शिक्षाओं को अपने नागरिक शिक्षा पाठ्यक्रम में शामिल कर दिया है। यह कार्य पिछले २५ वर्षों से चल रहा है। इसके विपरीत पश्चिमी ईसाई देशों में (भारत ने भी – लेखक) धर्म को पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया है। इस प्रकार अपनी शिक्षा को आक्रामक, इस्लामोन्मुख दिशा देना इस्लामी राष्ट्रों की वर्तमान काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसकी ओर किसी का ध्यान इसलिये नहीं जाता कि यह कार्य अलग–अलग देशों में वर्षों से अत्यन्त साधारण दिखने वाले मदरसों में चलता आ रहा है। किन्तु करोड़ों मुस्लिम बच्चों के मस्तिष्क और हृदय का यह इस्लामीकरण उनके हाथ काटने से भी अधिक आक्रामक है।"(९)

स्वयं भारत के भूतपूर्व उड्यन मंत्री गुलाम नबी आजाद का कहना है कि जमाते इस्लामी द्वारा चलाये जाने वाले मदरसों ने देश के मतनिरेपक्ष ढाँचे को बहुत हानि पहुँचायी है-----घाटी के नौजवानों का बन्दूक की संस्कृति से परिचय करा दिया है।"(१०)

मंत्री जी के वक्तव्य से यह भ्रम हो सकता है कि उनका आरोप केवल जमाते इस्लामी द्वारा चलाये जाने वाले मदरसों के लिये है दूसरों के लिये नहीं। किन्तु जैसा पिछले पृष्ठों में बताया गया है कि काफिरों के विषय में सभी मुस्लिम संस्थाओं और विचारकों के चाहे वह जमाते इस्लामी से सम्बन्धित हो अथवा राष्ट्रीय मुसलमानों की संस्था जमातुल उलमा के मौलाना मदनी अथवा मौलाना आजाद हों, सभी के विचार एक जैसे ही है। कुरान और हदीस की शिक्षा के प्रकाश में वह भिन्न हो भी नहीं सकते।

"इन्सटीट्यूट आफ एडवान्सड स्टडी शिमला" में एक सेमिनार में बोलते हुए श्री मकबूल अहमद ने कहा कि "रुढ़िवादिता फैलाने वाले साधनों में मैं (मदरसों मकतबों की) रुढ़िवादी शिक्षा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता हूँ। इन मदरसों के स्नातक बहुधा समाज में रुढ़िवाद पर बल देने और उसके प्रसार के मुख्य स्रोत हैं।"(११)

डा. मुशीरुल हक जो स्वयं एक मदरसे के स्नातक हैं और उसके पश्चात विदेशों में भी धार्मिक अध्ययन और अध्यापन कर चुके हैं इस शिक्षा पर अपनी पुस्तक "इस्लाम इन सेकुलर इण्डिया" में लिखते हैं "१९५० में कुल भारत में ८८ मदरसे थे। १९६९ में केवल बिहार और उ.प्र. में इनकी संख्या कम से कम ३५६ हो गयी थी।"(१२)

इधर हाल में काज़ी पब्लिकेशन्स निजामुद्दीन दिल्ली से १९९० में प्रकाशित मंजूर अहमद की पुस्तक "इस्लामिक एजूकेशन" के अनुसार पूरे भारत में मदरसों की संख्या इस पुस्तक के लिखे जाने तक ३०,००० हो चुकी थी। जो अब तक (१९९६ तक) अवश्य ही ४०००० से ऊपर होगी।

टाइम्स आफ इण्डिया दिनाँक ३०–१–९० में छपे एक समाचार के अनुसार श्री

अब्बास नकवी का कहना है कि "भारत में ३२२३३११ मस्जिदें है उनमें से आधी के लगभग ठीक रखरखाव में है।" जैसा हमने अन्यत्र कहा है प्रत्येक मस्जिद में एक मकतब खोलने के लिये सऊदी अरेबिया से अपार धनराशि भारत में आ रही है। यदि हम यह मान लें कि तमाम मस्जिदों की एक चौथाई संख्या में मकतब चल रहे हैं तो सम्पूर्ण भारत में मकतबों की संख्या लगभग ८ लाख आती है।

यदि एक मदरसे से प्रत्येक वर्ष १० नवयुवक स्नातक और प्रत्येक मकतब से निकलने वाले किशारों की संख्या ५ मान लें तो मुस्लिम समाज को ४ लाख नवयुवक और ४० लाख किशोर प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं। सभी इस्लाम की कुरान और हदीस पर आधारित काफिर और कुफ्र के विरुद्ध घृणा और आक्रोश उत्पन्न करने वाली शिक्षा से एक ऐसा उत्साह लेकर निकलते हैं जो "हाथ काटे जाने से भी अधिक आक्रामक है।"

इसलिये इस्लाम का प्रचार प्रसार करने वाली संस्थाओं को कभी भी न युवा नेतृत्व की कमी रहती है और न युवा कार्यकर्ताओं की। मदरसों मकतबों का विस्तार गाँव गाँव में है। फलस्वरूप इनमें पढ़ने वाले किशोर और युवक समाज के हर वर्ग से आते हैं। इसके विपरीत हिन्दूनिष्ठ संस्थाओं में चाहे वह हिन्दू महासभा हो या आर्य समाज कुछ वृद्ध ही देखने को मिलेंगे। राष्ट्रीय स्वयं संघ में भी धीरे-धीरे किशोरों और युवकों की अनुपस्थिति स्पष्ट दिखाई देने लगी है। हिन्दू संस्थाओं में नेतृत्व मुख्यतया ब्राह्मणों और क्षत्रियों के हाथ में है और उनकी निम्न वर्ग के हिन्दुओं में और गाँवों में कोई उपस्थिति दिखाई नहीं देती। ४०-४५ लाख समर्पित कार्यकर्ता प्रतिवर्ष तैयार करने वाले इस्लामी तंत्र द्वारा भारत के इस्लामीकरण को रोकना कितना दुष्कर है यह बताना आवश्यक नहीं है। ऐसे संगठनों से कोई महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होना असम्भव है।

इसलिये यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं कि २२.११.८० से २८.११.८० तक बम्बई में कई सहस्र मुस्लिम नवयुवकों ने सामूहिक शपथ ली कि वह भारत में इस्लाम धर्म की पुनः स्थापना करेंगे और अल्लाह की इस्लामी मान्यता की विरोधी सभी मूर्तियों और दर्शनों को नष्ट कर देंगे।

डा. मुशीरुल हक के अनुसार मदरसों मकतबों के इस अपूर्व विस्तार से यह समझने में सहायता मिलती है : "कि मुसलमानों को अपनी धार्मिक शिक्षा की कितनी चिन्ता है वे अच्छी तरह जानते हैं कि मदरसे से पढ़े हुए लोगों के लिये दुनिया में सफलता प्राप्त करने के सभी द्वार बन्द हैं। फिर भी उन्होंने इन मदरसों को चलाने के लिये न केवल भरपूर पैसा दिया बल्कि इस बात का भी पूरा प्रबन्ध किया कि किसी मदरसे में छात्रों की कमी न होने पाये। आम तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि केवल गरीब घरों के लोग, जो अपने बच्चों को युनिवर्सिटी की शिक्षा दिलाने में असमर्थ है, उन्हें मदरसों में भेज देते हैं। यह बात केवल आंशिक रूप से सत्य है क्योंकि बहुत से खाते पीते घराने कम से कम अपने एक बच्चे को तो मदरसे में भेजते ही हैं। सच तो यह है कि मदरसे की शिक्षा को धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। आस्था यह है कि कयामत के दिन आलिम अपने माँ बाप और

रिश्तेदारों की तरफ से पैरवी करेगा। इसलिये बहुत से आधुनिक शिक्षा पाये हुए बाप भी जो अपने सभी बच्चों की आधुनिक शिक्षा का खर्च दे सकते हैं कम से कम एक बेटे को तो मदरसे की शिक्षा के लिये भेजने की कोशिश ज़रूर करते हैं।"(१३)

इस आस्था के फैलाने से एक लाभ यह है कि प्रत्येक मुस्लिम परिवार में अन्ततः एक आलिम पहुँच जाय। इस्लाम को स्वच्छ रखने और उसमें काफिरों के रीति रिवाज़ों और गैर इस्लामी विश्वासों के प्रवेश को रोकने का इससे उत्तम और क्या उपाय हो सकता है?

मुशीरुल हक के अनुसार "मदरसों के छात्रों की शिक्षा का उद्देश्य मुख्यतया छात्र को इस्लाम के प्रचार और उसकी व्याख्या के लिये तैयार करना है: "इन सभी मदरसों में चाहे वह देश के किसी भाग में स्थित हो उच्चतर धार्मिक शिक्षा उर्दू भाषा (और फारसी लिपि) के माध्यम से ही दी जाती है। फलस्वरूप किसी भी छात्र को अपने राज्य से भिन्न भाषा और संस्कृति वाले दूसरे राज्य के मदरसे में चले जाने में कोई कठिनाई नहीं होती। सारे भारत व पाकिस्तान का हर आलिम कम से कम उतनी ही अच्छी उर्दू जानता है जितनी अपनी मातृ भाषा।"(१३क)

इस प्रकार जहाँ दक्षिण राज्यों में हिन्दी का विरोध होता है वहाँ उर्दू का विरोध नहीं होता है और वह एक प्रकार से सम्पूर्ण भारत के मुसलमानों और उनके उर्दू प्रेस की धार्मिक और सम्पर्क भाषा बन गयी है। भले ही यह प्रचार किया जाता हो कि उर्दू हिन्दू मुसलमानों की साझा भाषा है धीरे-धीरे वह पाकिस्तानी और भारतीय मुसलमानों की ही साझा भाषा रह गयी है। उर्दू पढ़े लिखे नवयुवक हिन्दू ढूँढ़े नहीं मिलते। १९६० ई. तक साधारण भारतीय मुसलमान उर्दू को छोड़कर हिन्दी अपना चुका था परन्तु उनके वोटों की तलाश में हिन्दू नेतृत्व ने ही उर्दू को दूसरी राज्य भाषा बनाने का लोभ दे देकर उन्हें हिन्दी से विमुख कर दिया।

मदरसों और मकतबों से पास करने वाले यह नवयुवक मस्जिदों में पेश इमाम हो जाते हैं या इस्लाम के प्रचार प्रसार के संगठनों से जुड़ जाते हैं। कुछ उर्दू पत्रकारिता में अपना स्थान बना लेते हैं। कुछ अपने अलग-अलग मदरसे या मकतब खोल लेते हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में शिक्षा लेकर सरकारी सेवाओं में चले जाते हैं। उर्दू को दूसरी राज्य भाषा बनाकर सहस्रों की संख्या में सरकारी स्कूलों में उर्दू शिक्षकों की नियुक्तियों से इनके लिये एक नया मार्ग खुल गया है। वह कहीं भी हों उनका एक ही स्पष्ट ध्येय और एक ही आकांक्षा होती है भारत में कुफ्र का नाश कर इस्लाम का वर्चस्व और शरियत शासन स्थापित करना। अपने शैशव और किशोरावस्था में निरन्तर उन्होंने अल्लाह की वाणी में पढ़ा है "मनुष्य जाति में जो भी पैदा किये गये हैं उनमें तुम सर्वोत्तम समुदाय हो------" (कुरान ३:११०) सिवाय थोड़ा दुख पहुँचाने के वे तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। और यदि वे तुमसे युद्ध करेंगे तो वह तुम्हें पीठ दिखाकर भाग जायेंगे। फिर उन्हें कहीं से सहायता नहीं मिलेगी। (३:१११) और अल्लाह का वायदा है कि वह इस्लाम को सभी दूसरे मतों पर विजयी बनायेगा भले ही मूर्ति पूजक उसका कितना ही विरोध क्यों न करें। (कुरान ९:३३)

दैनिक जागरण दिनाँक २-८-९६ के अनुसार उ.प्र. के प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा सचिव सिराज हुसैन की विज्ञप्ति के अनुसार प्रदेश सरकार ने शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिये १५००० अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का मकतबों के माध्यम से चलाये जाने का निर्णय लिया। ७५०० चालू वित्तीय वर्ष में और ७५०० अगले वर्ष। इनमें टीचर्स को २०० रुपये मासिक दिया जायगा। बच्चों को किताब-कापी, पेन्सिल, रबर, मुफ्त दी जायगी। दीनी तालीम, उर्दू, अरबी के अतिरिक्त हिन्दी भी पढ़ाई जायेगी। यह स्पष्ट नहीं है कि पिछड़े वर्ग का केवल मुसलमानों से आशय है या उसमें हिन्दू भी शामिल होंगे। यदि पिछड़े वर्ग के हिन्दू बच्चे मस्जिदों में जाकर मकतबों में शिक्षा पायेंगे तो क्या वह हिन्दू रह जायेंगे? और मुस्लिम बच्चों की क्या मानसिकता बनेगी?

उपरोक्त परिपेक्ष में जब हम पायनियर लखनऊ दिनांक ६ जून १९९६ में यह पढ़ते हैं कि उ.प्र. शासन ने राज्य द्वारा सहायता दिये जाने वाले मदरसों को ढाई करोड़ रुपये का अनुदान मंजूर किया है जिससे कि मदरसों के टीचरों और दूसरे कर्मचारियों का वेतन दिया जा सके अथवा टाइम्स ऑफ इन्डिया दिनांक १९-६-९५ में यह पढ़ने को मिलता है कि शासन मस्जिदों में नमाज पढ़ाने वाले इमामों के वेतन के लिये ३०० करोड़ रुपया देने जा रही है तो वह कहावत याद आती है कि दैव जिनको नष्ट करना चाहता है उनकी मति भ्रष्ट कर देता है।

विज्ञान और इतिहास की शिक्षा और मतों के तुलनात्मक अध्ययन से अनेक अंध विश्वासों और कट्टरता का उन्मूलन होता है। नई पीढ़ी के मस्तिष्क पर मतान्धता की पकड़ ढीली होती है। पारस्परिक समझदारी बढ़ती है। मुस्लिम बच्चों में विज्ञान, सत्य इतिहास और मतों के तुलनात्मक अध्ययन से अनेक अंध विश्वासों और कट्टरता का उन्मूलन हो सकता था। एसी शिक्षा पर धन व्यय न कर रुढ़िवादी शिक्षा पर धन व्यय करने का अर्थ सम्पूर्ण भारत के इस्लामीकरण के लिये मौदूदी की भाषा में १२ लाख खुदाई फौजी सैनिकों को प्रतिवर्ष तैयार करने में सहयोग देना है।

भारत के इस्लामीकरण को हरी झण्डी

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि सम्पूर्ण इस्लामी जीवन जीने के लिये इस्लाम के इस तकाज़े को पूरा करना भी आवश्यक है कि सभी धर्मों पर इस्लाम का वर्चस्व और मानवकृत संविधानों के स्थान पर शरियत को स्थापित किया जाय। यह उतना ही आवश्यक है जितना नमाज़ और रोज़े की पाबन्दी। "किसी भी व्यक्ति को जो मुसलमान रहना चाहता है यह जानना आवश्यक है कि वह अपने इस्लाम का पालन इस्लामी वातावरण में रहकर ही कर सकता है जहाँ इस्लाम ही सर्वोपरि है। अन्यथा वह इस भ्रम में रहता है कि वह इस्लाम का अनुभव कर रहा है जबकि वास्तव में वह एक जाहिली (मूर्खतापूर्ण) संस्कृति के मध्य एक खोया हुआ अथवा उत्पीड़ित व्यक्ति है।"[१४]

"एक मुसलमान को जिसका संकल्प इस्लाम के सभी तकाज़ों को निभाना है शरियत शासन में ही रहना चाहिये। यह सुनिश्चित करने के लिये उसे राजनीति में उतरना ही पड़ेगा।"[१५] "बात वैयक्तिक धार्मिक विश्वास तक ही सीमित नहीं है। पृथ्वी पर अल्लाह की इच्छाओं को लागू करने के प्रयासों में शामिल होने की है।"[१५क] जहाँ काफ़िरों का शासन हो मुस्लिम शासन दृढ़तापूर्वक स्थापित करना मुसलमानों की पहली प्राथमिकता है। कुरान आग्रह करती है कि जो भी अल्लाह के उपदेशों (कुरान) के अनुसार शासन नहीं करते वह काफिर हैं (५:४४) मुसलमानों को उनके आदेशों का पालन नहीं करना चाहिये और उनसे युद्ध करना चाहिये।[१६]

नियमानुसार मुसलमानों को दारुल-इस्लाम में ही रहना चाहिये जहाँ शरियत कानून और संस्थानों द्वारा ही राज्य का परिचालन होता हो। यदि ऐसी स्थिति न हो और राज्य गैर-मुस्लिम हो तो मुसलमानों को इस स्थिति को पलटने का प्रयास करने चाहियें अन्यथा उस देश को छोड़ देना चाहिये।[१७]

यह तथ्य कितना ही कटु क्यों न हो फिर भी सत्य है। मदरसों, मकतबों की शिक्षा के द्वारा इस्लाम के उपरोक्त सभी धार्मिक तकाज़ों के प्रति निष्ठा बढ़ती है। गैर मुस्लिम शासन के प्रति आक्रोश बढ़ता है और उसके स्थान पर इस्लामी शासन की स्थापना के प्रति आतुरता बढ़ती है, संकल्प दृढ़ होता है। मुसलमान और गैर मुसलमान में फासला बढ़ता जाता है। हिंसा का जन्म होता हैं। पहले यह छोटी छोटी बातों को लेकर साम्प्रदायिक दंगों के रूप में प्रकट होती है फिर यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो रक्तपात और आतंकवाद में। इसी प्रक्रिया को उड्यन मंत्री ने "मदरसों की शिक्षा द्वारा मुसलमान नवयुवकों का बन्दूक की संस्कृति से परिचय" करा देना कहा है।

इस प्रकार गैर मुस्लिम, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक देश, जिनमें मुस्लिम

अल्पसंख्यक हैं, एक भँवर में फंस जाते हैं। उनके जनतंत्र का तकाज़ा है कि वह अपने मुसलमान नागरिकों द्वारा अपने मत के पालन की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबन्ध न लगायें और इस्लाम के पालन का तकाज़ा यह है कि मुस्लिम नागरिक जैसे भी हो काफ़िर शासन को हटाकर वहाँ इस्लामी शासन और इस्लामी धर्म स्थापित करें। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक देशों में अल्पसंख्यकों को उनके धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के ध्येय से दिये गये विशेषाधिकार उन देशों के धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक ढाँचे को ध्वस्त कर उनके स्थान पर इस्लाम धर्म और शासन को स्थापित करने के साधन बन जाते हैं। यह प्रक्रिया परिस्थितियों के अनुसार कभी धीरे-धीरे और कभी तेज गति से चलती रहती है। धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश इस्लाम के फलने फूलने और प्रसार के लिये उर्वरा भूमि होने के कारण इस्लाम देर सबेर उन पर छा जाता है।

हिन्दुओं के धर्मान्तरण की स्वतंत्रता

इस्लाम और ईसाई मत में गैर मुसलमानों और गैर ईसाइयों को धर्मान्तरित कर अपने अपने मत में दीक्षित करना परम धार्मिक कर्तव्य है। क्योंकि हमारा विषय इस्लाम से सम्बन्धित है हम उसी के विषय में बात करेंगे। गैर मुस्लिमों को इस्लाम ग्रहण करने का निमंत्रण देना और उनको इसके लिये तैयार करना बड़ा पुण्य का कार्य माना जाता है और इस पर किसी प्रकार की आपत्ति करना अथवा प्रतिबन्ध लगाना मुसलमानों की धार्मिक स्वतंत्रता पर कुठाराघात माना जाता है। धर्मान्तरित लोगों की वापसी के प्रयास तो और अधिक कटुता उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार हिन्दुओं का इस्लाम में धर्मान्तरण एकल दिशा मार्ग है मुसलमान कदाचित ही धर्म परित्याग करते हैं।

ओमप्रकाश त्यागी द्वारा संसद में छल कपट और लोभ द्वारा हिन्दुओं के धर्मान्तरण पर रोक लगाने के बिल का मुसलमान और ईसाईयों द्वारा प्रबल विरोध किया गया था और हिन्दू सांसदों से पर्याप्त समर्थन न मिलने के कारण बिल सफल न हो सका।

संविधान सभा में चेतावनी

संविधान सभा में ३-१२-४८ को जब भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ व ३० पर बहस हो रही थी तब इस्लाम और ईसाई मतावलम्बियों को अपने मत के प्रचार और प्रसार की छूट तथा अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों की स्वतंत्रता का मुद्दा उठाया गया था।

श्री तजम्मुल हुसेन ने कहा था : "महोदय इस अनुच्छेद की उपधारा-१ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आत्मा की स्वतंत्रता का तथा विश्वास (मत) के विस्तार करने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार होगा। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक अपने विश्वास (मत) को खुले आम स्वीकार और आचरण करने का अधिकार हो। किन्तु महोदय मुझे भय है कि यह अधिकार देना गलत होगा कि इस देश में लोग अपने अपने मज़हब (विश्वास,मत अथवा पंथ) का प्रचार करने को भी स्वतंत्र हों।

"महोदय मज़हब (विश्वास,मत अथवा पंथ) एक व्यक्ति और उसके कर्ता के बीच

एक वैयक्तिक मामला है। इसका दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे विश्वास (मत) में आप दखलअन्दाज़ी क्यों करें? और मैं आपके विश्वास (मत) में दखलअन्दाज़ी क्यों करू। ------यदि आप मुझसे सहमत हैं तो विश्वास (मत) का प्रचार क्यों? आप अपने घर में बैठकर ईमानदारी से अपने विश्वास का पालन करें। उसका दिखावा क्यों करें? यदि इस देश में आप मज़हब का प्रचार करना प्रारम्भ कर देंगे तो आप दूसरों के लिये कंटक बन जायेंगे। अभी तक ऐसा ही हुआ है।

"महोदय मेरा निवेदन है कि हमने भारत को पंथ (मत) निरपेक्ष माना है। एक पंथनिरपेक्ष राज्य को पंथ (मत) से कोई वास्ता नहीं होना चाहिये। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने पंथ की वैयक्तिक रूप से घोषणा करने और उस पर आचरण करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दें।

श्री लोकनाथ मिश्र ने भी संविधान सभा में अल्पसंख्यकों को अपने धर्म पर न केवल आचरण अपितु उसके प्रचार प्रसार को मूल अधिकार मानकर संरक्षण देने वाले संविधान के प्राविधानों पर चेतावनी देते हुये कहा था : "मुझे लगता है कि यदि संविधान का अनुच्छेद १९ स्वतंत्रता का अधिकार पत्र है तो अनुच्छेद २५ हिन्दुओं को गुलाम बनाने का अधिकार पत्र है। मैं सचमुच विश्वास करता हूँ कि यह हमारे संविधान का सर्वाधिक अपमानजनक और अन्धकारमय अनुच्छेद है। मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि मैंने सभी संवैधानिक प्रेसीडेन्स (पूर्ववर्तिता) का अध्ययन किया है और मुझे कहीं भी मूल अधिकारों में पंथ (मज़हब) के प्रचार के लिये प्रोपेगेन्डा करने का अधिकार दिये जाने का (किसी संविधान में) उदाहरण नहीं मिला।

"महोदय, हमने भारत को पंथनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है। ऐसा हमने पर्याप्त और विवेकशील कारणों से किया है। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि हम विविध पंथों से कोई वास्ता नहीं रखते? आपको मालूम है कि पंथों के प्रचार द्वारा इस देश में कैसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पैदा हुई और देश का बंटवारा भारत और पाकिस्तान में हुआ। यदि इस देश में इस्लाम अपना पंथ लादने के लिये न आया होता तो सम्पूर्ण भारत पूर्णतया पंथनिरपेक्ष और शान्तिपूर्ण राज्य होता। विभाजन का कोई प्रश्न नहीं उत्पन्न होता। धीरे-धीरे यह लगता है कि हमारा "पंथनिरपेक्ष राज्य" वाक्य एक धूर्तता पूर्ण और अविश्वसनीय वाक्य हो गया है जो इस भूमि की पुरातन संस्कृति की उपेक्षा करने का एक बहाना है।-------किन्तु यह अन्यायपूर्ण उदारता जिसमें एक ओर पंथ पर पाबंदी लगायी जा रही है और दूसरी ओर उसके प्रचार प्रसार को मूल अधिकारों में शामिल किया जा रहा है कपटपूर्ण और खतरनाक है। न्याय की माँग है कि इस भारत भूमि की प्राचीन संस्कृति और धर्म को, यदि १००० वर्ष के दमन के पश्चात्, उसकी पुरानी प्रतिष्ठा पर स्थापित न भी किया जा सके तो उसके साथ अन्याय भी न किया जाय। हमारा ईसा या मौहम्मद से कोई झगड़ा नहीं है,न उससे जो उन्होंने देखा और कहा। हम उनका आदर करते हैं। किन्तु मेरे विचार से वैदिक संस्कृति से बाहर कुछ रह ही नहीं जाता। प्रत्येक दर्शन और संस्कृति का अपना स्थान अवश्य है किन्तु

यह पंथों का शोर एक खतरनाक शोर है। यह अवमूल्यन करने वाला है। यह विभाजन करता है और लोगों को सामरिक कैम्पों में बाँटता है। आज के सन्दर्भ में प्रारूप के अनुच्छेद १९ (संविधान के अनुच्छेद २५) में "धर्म के अबाध रूप से प्रचार करने के अधिकार" का क्या अर्थ है? हिन्दू संस्कृति और हिन्दू जीवन पद्धति को सम्पूर्णतया नष्ट करने का (भारत के इस्लामीकरण का) मार्ग प्रशस्त कर देना ही इसका एक मात्र अर्थ है। इस्लाम हिन्दू दर्शन के विरुद्ध शत्रुता की घोषणा कर चुका है। ईसाई मत ने ऐसी नीति अपनाई है जिससे वह हमारे सामाजिक जीवन की सीमाओं में पिछले दरवाजों से शान्तिपूर्वक घुस सके। यह इसलिये सम्भव हुआ है क्योंकि हिन्दू धर्म ने अपने बचाव के लिये किलेबन्दी नहीं की है। हिन्दू धर्म विविध दृष्टिकोणों और जीवन दर्शनों के एक सम्मिलित दृष्टिकोण वाले समुदायों का समूह है जो एक संगठित समाज के रूप में अपने अपने दर्शन के अनुसार शान्ति और सहअस्तित्व के साथ रहना चाहते हैं। किन्तु हिन्दू की उदारता का दुरूपयोग हुआ है और राजनीति हिन्दू संस्कृति पर विजयी हो गई है।

"वास्तव में संसार के किसी भी संविधान में मत के अबाध रूप से "प्रचार" करने का मूल अधिकार नहीं दिया गया। आइरिश फ्री स्टेट के संविधान में वहाँ के बाहुल्य समाज के धर्म को प्रधानता दी गई है। भारत के हम लोग इस तरह की बात से शर्माते हैं। अन्त में मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद से प्रचार शब्द को निकाल दिया जाय-----यदि जीवित रहना है तो सावधानी बरतें।

साम्प्रदायिक शिक्षा के विरुद्ध चेतावनी देते हुये आदरणीय श्री आर. के. सिधवा ने कहा था : "जैसा कि मैंने कहा यद्यपि शासन किसी भी मत मतान्तर का अनुयाई नहीं है उन शिक्षा संस्थानों को, जो सरकारी सहायता नहीं लेते, अपने मत की शिक्षा देने का अधिकार दिया जा रहा है। मैं इन मतों के धर्म-ग्रन्थों की मान्यताओं पर चर्चा नहीं करना चाहता जो इन शिक्षा संस्थानों में पढ़ाये जाते हैं। मुझे उदाहरण मालूम हैं जब धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक घृणा की शिक्षा दी गयी है। मुझे नहीं मालूम कि इस (आने वाले) नये युग में जब शासन इस संविधान के अनुसार चलेगा उसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जायगी अथवा नहीं (जिसने मुसलमानों को हिन्दुओं से इतनी घृणा करना सिखाया कि ९७ प्रतिशत मुसलमानों ने हिन्दू बाहुल्य के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। - (लेखक)। उसी प्रकार की शिक्षा के रोकने को जो (अल्पसंख्यकों के) अनेक स्कूलों में दी जा रही है कोई प्राविधान नहीं किया गया है। मैं उनका नाम ले सकता हूँ परन्तु मैं साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाना नहीं चाहता। मैं केवल यह चाहता हूँ कि इस विषय में संविधान में यह स्पष्ट कर दिया जाय कि धार्मिक शिक्षा से हमारा आशय किस प्रकार की शिक्षा से है।"

दुर्भाग्यवश उस सभा में अधिकांश विद्वान हिन्दू सदस्यों को इस्लाम के वास्तविक स्वरूप की जिस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं कोई जानकारी नहीं थी। न उनको ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू आदिवासियों और पिछड़े वर्ग के लोगों के धर्मान्तरण के लिये अपनाये गये हथकंडों, प्रलोभनों इत्यादि का कोई ज्ञान था। उनके लिये ईसाई पादिरयों की

गतिविधियाँ उतनी ही थीं जितनी शहरों में चलने वाले उनके उत्तम शिक्षा संस्थानों, अस्पतालों अथवा अनाथाश्रमों में उनको दृष्टिगत होती थीं। वह इस्लाम को हिन्दू समाज में प्रचलित अनेक पूजा पद्धतियों की भाँति एक दूसरे प्रकार की पूजा पद्धति मात्र समझते थे। संविधान सभा की विस्तृत कार्यवाही पढ़ने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। धर्मनिरपेक्षता के इन महारथियों ने लोकनाथ मिश्रा और सिधवा जैसे विद्वानों की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप, भारत में केवल ४५ वर्ष के स्वतंत्रता काल में ३०,००० नये मदरसे और लाखों नये मकतब खुल गये जहाँ छोटे छोटे मुस्लिम बच्चों को वही काफ़िर और कुफ्र विरोधी घृणोत्पादक और आक्रामक शिक्षा धर्म के नाम पर दी जाने लगी, जिसने विभाजन पूर्व केवल ८८ मदरसों और एक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के बल पर भारत का विभाजन करवा दिया था। नये नये विश्वविद्यालय और कालेज भी अल्पसंख्यक संस्थाओं के नाम पर मुस्लिम संस्कृति की कथित रक्षा के लिये खुल गये।

संविधान में अनुच्छेद २५ तथा ३० द्वारा उन्हें अपनी अलगाववादी, हिन्दू विरोधी आक्रामक, घृणोत्पादक शिक्षा को स्वतंत्र रूप से चलाने की छूट दी गई। अपने अलगाववादी मत के प्रचार और प्रसार का मूल अधिकार भी दिया गया। वस्तुतः यह एक घोर साम्प्रदायिक शिक्षा द्वारा धर्मनिरपेक्ष नागरिकों के निर्माण का प्रयास था। कदाचित इस एक भूल ने ही हिन्दू भारत के भाग्य का फैसला कर दिया। इस शिक्षा के चलते क्या कोई भी शक्ति सम्पूर्ण भारत के इस्लामीकरण को रोक सकती है?

भारत की एक इंच भी भूमि एसी नहीं है जिसे हमारे पूर्वजों ने अपना रक्त देकर न खरीदा हो। अतः भारत, समूचा भारत हमारी बपौती है और इस्लाम के लिये उस पर पुनः विजय प्राप्त की जानी चाहिये।----- हमारा अन्तिम लक्ष्य यह होना चाहिये कि आध्यात्मिक तथा राजनीतिक दोनों ही प्रकार से इस्लाम के झंडे के नीचे भारत का एकीकरण हो।

एफ़ के खाँ दुर्रानी : मीनिंग ऑफ पाकिस्तान की भूमिका में।

इस बीसवी शती में मुसलमानों का यह पहला सफल पग इस दिशा में था कि वह इस देश पर पूर्ण आधिपत्य के अपने १२०० वर्ष पुराने स्वप्न को साकार कर सके।

आर्नाल्ड टायनबी : "व्हाट इज़ पाकिस्तान" में।

२४

हिन्दू शिक्षा का नियोजित विध्वंस

इसके विपरीत हिन्दू शिक्षा की क्या दुर्गति हुई? मुस्लिम काल में मुस्लिम शासकों ने यह बात भली भाँति समझ ली थी कि हिन्दू धर्म शिक्षा के चलते हिन्दुओं का धर्मान्तरण असम्भव है इसलिये उन्होंने नियोजित ढंग से हिन्दू पाठशालाओं, पुस्तकालयों और हिन्दू शिक्षकों (ब्राह्मण) को सिलसिलेवार नष्ट किया। पुस्तकों के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा के साधन होते हैं पूजा ग्रह, त्यौहार और तीर्थ स्थल। पूजा ग्रहों का विध्वंस, तीर्थ यात्राओं पर टैक्स और हिन्दू त्यौहारों को सार्वजनिक रूप से मनाने पर प्रतिबंध हिन्दू धर्म शिक्षा को नष्ट करने के उद्देश्य से ही किया गया।

जब अंग्रेज आये तो उनको ईसाई मत में धर्मान्तरण और अपने राज्य के प्रति विरोध कम करने के लिये अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार आवश्यक हो गया। फलस्वरूप भारत में हिन्दू के अस्तित्व को जितना खतरा उसके शिक्षा तन्त्र के नष्ट हो जाने से हुआ उतना किसी दूसरे कारण से नहीं हुआ।

हिन्दू धर्मग्रन्थों में मिलावट

किन्तु हिन्दू शिक्षा के भ्रष्ट करने के दोषी स्वयं हिन्दू भी कम नहीं हैं। यह बात भली भाँति विदित है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को छोड़कर हिन्दुओं ने स्वयं ही अपने धर्मग्रन्थों में बड़े पैमाने पर मिलावट की। बाल्मीकि रामायण और वेदव्यास की महाभारत में सहस्त्रों श्लोक जोड़ दिये गये हैं। मनुस्मृति का भी यही हाल है। मुस्लिम काल में किसी ने एक नये उपनिषद अल्लोपनिषद की रचना कर डाली। साठ वर्ष पहले किसी ने संतोषी माता का नाम भी नहीं सुना था। अब उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा के अधिकांश हिन्दू परिवारों की महिलायें इस नवीन देवी का व्रत रखती हैं। एक विद्वान ने किसी श्रद्धालु महिला से २ रु. प्रति श्लोक लेकर १००० श्लोकों का संतोषी माता पुराण भी लिख डाला। अथर्वेद के २० वें कांड में कुंताप सूक्त के ८०७ मंत्र मुस्लिम काल में मिलाये गये। विजयनगर राज्य के महामंत्री सायण के वेदों के अनुवाद में यह मंत्र नहीं पाये जाते। उसके बाद की प्रतियों में ही पाये जाते हैं। इन मंत्रों को मौहम्मद साहब के पृथ्वी पर आने की भविष्यवाणी के रूप में पेश किया जाता है। स्वार्थी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये इस प्रकार की मिलावटें किया करते हैं।

इसके विपरीत मुसलमानों ने अपने सीमित इतिहास व धर्मग्रन्थों को लिखने का तथा उनकी प्रमाणिकता बनाये रखने का अति प्रशंसनीय कार्य किया है। लगभग सभी मुस्लिम बादशाहों ने अपने अपने दरबारों में शाही इतिहासकार नियुक्त किये हुए थे और

वह इन इतिहासकारों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों को न केवल स्वयं पढ़ते थे बल्कि उस इतिहास में तथ्यों को तोड़ने मरोड़ने वाले लेखकों से सख्ती से पेश भी आते थे।

मौहम्मद साहब की मृत्यु के १२ वर्ष पश्चात ही तीसरे खलीफा उस्मान द्वारा कुरान की एक प्रमाणित प्रति तैयार करवा ली गयी थी और शेष सभी संस्करण नष्ट कर दिये गये थे। खलीफा द्वारा अधिकृत संस्करण बन जाने के बाद उसमें एक शब्द भी इधर उधर करने से या उसका उल्टा सीधा अनुवाद करने से असंख्य बार खून की नदियाँ बहाई गयी हैं। इस प्रकार के खून खराबों को वह लोग जो ग्रन्थों की पवित्रता की महत्ता को नहीं समझते भले ही पागलपन कहे किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस प्रकार की कुर्बानी देकर ही कोई समुदाय अपनी संस्कृति और इतिहास की सुरक्षा कर सकता है।

प्रमाणिकता के प्रति असाधारण प्रेम से सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख इस स्थान पर कर देना अप्रासंगिक न होगा।

इस्लाम में कुरान के बाद दूसरा महत्वपूर्ण धर्मग्रंथ हदीस कहलाती है यह मौहम्मद साहब से सम्बन्धित उनके जीवन काल की घटनायें हैं। मौहम्मद साहब एक पूर्ण व्यक्ति समझे जाते हैं। उनकी हर बात एक मुसलमान के लिए अनुकरणीय है। उदाहरणार्थ मान लो मौहम्मद साहब से किसी मनुष्य ने किसी समस्या के विषय में सलाह ली अथवा उन्होंने स्वयं कोई उपदेश या आदेश दिया तो वह सलाह, उपदेश या आदेश आगे आने वाले हर मुसलमान के लिए एक अपरिवर्तनीय कानून बन गया। किन्तु जैसे जैसे समय बदलता गया लोगों ने अपने मतलब की हज़ारों हदीसें ईजाद कर ली। इस दूषित व्यवस्था को देखकर मौहम्मद साहब के २०० वर्ष बाद कुछ मुस्लिम विद्वानों ने प्रत्येक प्रचलित हदीस की प्रमाणिकता का अन्वेषण कर उसे निरस्त अथवा स्वीकार करने में अपना पूरा जीवन लगा दिया। कठिनतम परिश्रम द्वारा प्रमाणित हदीसों का संकलन किया गया और सावधानी बरती गयी कि आगे उनमें कभी कोई मिलावट न की जा सके। लगन, विद्वता और पांडित्य के ऐसे उदाहरण विश्व इतिहास में मिलने कठिन हैं।

हिन्दू शिक्षा की वर्तमान स्थिति

जहाँ मुस्लिम बच्चों में भारत से कुफ्र (हिन्दू धर्म) को मिटाकर इस्लाम और शरियत शासन स्थापित करने के उनके धार्मिक कर्तव्य को निरन्तर स्मरण कराने, दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति उत्पन्न करने वाली शिक्षा के लगभग ४०,००० मदरसे और लगभग ८ लाख मकतब हैं हिन्दुओं के पास इस बौद्धिक आक्रमण से बचने का शिक्षा तंत्र क्या है?

वास्तविक वैदिक धर्म, जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म की शिक्षा देने वाला भारत में कदाचित एक भी शिक्षा संस्थान नहीं है। स्मरण रहे कि भारत ने जो विश्वविख्यात ख्याति अर्जित की थी वह उसका वैदिक काल ही था। एंग्लो वैदिक स्कूल और गुरुकुल, सनातन धर्म स्कूल और गुरुकुल, जैन स्कूल और कालेज तो सहस्त्रों में होंगे किन्तु शिक्षा वहाँ भी

वही दी जाती है जो सरकारी स्कूलों में क्योंकि गैर-अल्पसंख्यक स्कूलों को अपने पाठ्यक्रम और नियम सरकार की नीति के अनुसार ही रखने पड़ते हैं। उत्तम अंग्रेजी बोलना और लिखना आ जाय और बच्चे सरकारी सेवाओं में किसी प्रकार प्रवेश पा जाँय यही उन सब शिक्षा संस्थानों का ध्येय रह गया है। जाने माने मिशनरी ईसाई पब्लिक स्कूलों में प्रवेश पाना बड़े सौभाग्य की बात है। यह स्कूल संख्या में कम भी है और बहुत खर्चीले भी। इस प्रकार बच्चे अपने धर्म और संस्कृति के विषय में उतना ही जानते हैं जितना टी.वी. और फिल्मों के माध्यम से उन्हें बताया जाता है।

इन स्कूलों की माँग को देखते हुए अनेक व्यवसायी इस क्षेत्र में उतर पड़े हैं। वह हिन्दू हैं परन्तु अपने स्कूलों का नाम जीसस, क्राइस्ट, मेरी इत्यादि इत्यादि ईसाई नामों पर रखते हैं। इन स्कूलों में जो बच्चे तैयार होते हैं उनमें हिन्दू और हिन्दुत्व का न कोई ज्ञान होता है और न उस के प्रति कोई प्रेम ही होता है। अधिकतर हीन भावना ही होती है। उनको हिन्दी में गिनती तक नहीं आती। उनकी विशेष रुचि अंग्रेजी उपन्यास और कॉमिक्स पढ़ने में रहती है। इस प्रकार के स्कूल चलाने वालों का शिक्षा के प्रति अथवा बच्चों के चरित्र निर्माण के प्रति कोई मोह नहीं होता। यह उनके पैसा कमाने के साधन मात्र हैं।

शिक्षा संस्थानों के बाद समाज को बनाने का दायित्व पूजा ग्रहों और धर्म गुरुओं पर होता है। इस्लाम के पास अपने धर्मानुयाइयों का पथ प्रदर्शन करने वाली, भाई चारे का पाठ पढ़ाने वाली ३२ लाख मस्जिदें हैं। वहाँ दिन में तीन चार बार वह सामूहिक नमाज के लिये इकट्ठे होते हैं। इस्लाम में सामूहिक नमाज़ का बड़ा पुण्य है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति मस्जिद में जाकर ही नमाज़ पढ़ना पसन्द करता है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से परिचित हो जाता है, एक दूसरे के दुख सुख में स्वतः ही शामिल हो जाता है। वहाँ प्रत्येक नमाज के बाद एक धर्मनिष्ठ, अपने धर्म की आस्थाओं और आकांक्षाओं के लिए समर्पित योग्य विद्वान का प्रवचन वह शांतिपूर्ण अनुशासनबद्ध ढंग से सुनते हैं। कोई शोर नहीं कोई दूसरी चर्चा नहीं। वहाँ अपने समाज की समस्याओं पर विचार विनिमय होता है। विद्वान लोग नमाजियों का मार्ग दर्शन करते हैं। सब कुछ सैनिक अनुशासन की भाँति होता है।

हिन्दुओं के लगभग सभी पूजा स्थल मूर्ति पूजा स्थल हैं। देवता को प्रसाद और पुष्प चढ़ाईयें और जाइये। इतना कर देने से हिन्दू अपने समाज की और अपनी वैयक्तिक चिन्तायें मानों उन निर्जीव मूर्तियों को सौंप देता है। धर्म का पालन हो गया। वह यही अपने घर पर करता है और यही अपने व्यवसाय के स्थान पर। बहुत हुआ तो कोई साप्ताहिक रामायण या गीता पाठ अथवा कथा। पुजारी और कथा वाचक अधिकांश निरक्षर हैं या अल्प शिक्षा प्राप्त। उन्होंने वेदों उपनिषदों का अध्ययन तो दूर उनका नाम भी नहीं सुना होगा। हाँ अपनी प्रत्येक कपोलकल्पित बातों को वह "वेद ऐसा कहते हैं" कहकर उनके प्रति भावुक हिन्दू की श्रद्धा और अन्ध विश्वास जीतने में सफल हो जाते हैं। पूजा कराना उनका व्यवसाय मात्र है। वहाँ कोई अनुशासन नहीं, कोई ज्ञान की बात नहीं, कोई अन्ध विश्वास को दूर करने

की अथवा सामाजिक बुराई से छुटकारा पाने की चर्चा होती नहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात मुस्लिम समाज ने ४०००० मदरसे और लाखों मकतब बनाये। उनमें मूर्ति पूजा और बहुदेवतावाद को संसार का घोरतम और अक्षम्य पाप और मूर्तियाँ तोड़ने को महा पुण्य बताया जाता है। मूर्ति भंजकों और मूर्तिपूजा करने वालों को कत्ल करने वालों को इस्लाम के महापुरुष मान कर प्रशंसा की जाती है। हिन्दू समाज ने उसी काल में कदाचित लाखों छोटे बड़े मूर्ति मन्दिर बनाये जहाँ मूर्तियों की पूजा की जाती है। उनमें भगवान की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है और उन्हें साक्षात भगवान माना जाता है परन्तु उनके तोड़ने वालों ओर हिन्दुओं का धर्मान्तरण और कत्ल करने वालों की कब्रों और मजारों की पूजा करने के लिये वह भीड़ लगाते हैं। इस प्रकार वेद विरुद्ध मूर्ति पूजा और बहुदेवतावाद का प्रसार किया जा रहा है जो किसी दशा में भी हितकारी नहीं है। सशक्त संचार माध्यम टी.वी. द्वारा असम्भव, अवैज्ञानिक, मिथिक, पौराणिक कहानियों के प्रचार से अंधविश्वास को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। हिन्दू धर्म का यह पौराणिक मिथक रूप इंग्लिश स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा प्राप्त युवक युवतियों का मनोरंजन तो कर सकता है उसके प्रति आदर और लगाव उत्पन्न नहीं करता। अधिक से अधिक वह उसे पारम्परिक कर्म कांड के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। प्रेम प्रसंग अथवा भौतिक लाभ के लिये ईसाई अथवा मुसलमान हो जाने में उन्हें संकोच नहीं होता।

सहस्त्रों वर्षों से चलते आ रहे पौराणिक, जैन और बौद्ध धर्म के निवृत्तिवाद और अहिंसा परमो धर्म सिद्धान्त उनके मन और मस्तिष्क पर इतना छा गये हैं कि गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को स्मरण कराया गया यह वैदिक सिद्धान्त वह बिल्कुल भूल गये हैं : "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यते महीम्" (गीता–२:३७) अर्थात यदि धर्मयुद्ध में मारे गये तो स्वर्ग भोगोगे और यदि विजयी होकर जीवित रहे तो पृथ्वी के भौतिक सुख भोगोगे, इसलिये धर्म्यादि युद्धाच्छ्रेयों न्यत्क्षत्रियस्य न विद्यतें" अर्थात धर्मानुकूल युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये कोई अन्य कल्याण का हेतु नहीं है (गीता २ : ३१)। इस्लाम में मूर्ति पूजा, निवृत्ति वाद, अहिंसा जैसे अवैदिक सिद्धांतों को कोई स्थान नहीं दिया गया।

रैडियन्स (जमाते इस्लामी हिन्द का मुख पत्र)

भारत का राष्ट्रीय एकता का स्वप्न कभी साकार नहीं होगा जब तक कि सम्पूर्ण देश जीवन की इस्लामी पद्धति को स्वीकार कर इस्लाम के संदेश पर आचरण न करने लगे। (अक्टूबर 1962)

भारतीय संस्कृति मर चुकी है और उसको पुनर्जीवित करने के प्रयास समुद्र तट पर कंकड़ गिनने के समान है। (14-2-65)

यदि हिन्दू भारतीय राष्ट्रीयता का समुचित विकास करने में असमर्थ है तो वह भारत को मुसलमानों को सौंप दें। (मार्गदीप 13-2-65)

२५

भारत के इस्लामीकरण का एक और कारण मुस्लिम और हिन्दू नेतृत्व में महत्वपूर्ण गुणात्मक भेद है। इस अध्याय में हम उनकी चर्चा करें गे।

भ्रांति रहित, एक निष्ठ, सुदृढ़ संकल्पशील समर्पित मुस्लिम नेतृत्व और सुस्पष्ट ध्येय

उत्तम प्रशासन और सफल राजनीति के लिये शीर्ष स्थान पर सुस्पष्ट ध्येय, सुस्पष्ट आदेश, दूर दृष्टि, दृढ़ संकल्प और ध्येय के प्रति समर्पित भावना से कार्य करने वाले अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता अनिवार्य होती है।

इस्लाम ने १००० वर्ष तक विश्व के महानतम साम्राज्य पर राज्य किया है। और अपने उस अनुभव को एक विशाल साहित्य के रूप में संजो कर रखा है। अपनी विशेष शिक्षा के द्वारा अपनी भावी संतति को उसे भुलाने नहीं दिया गया है। आज भी ३२ देशों में उनका शासन है। अम्बेडकर के इस कथन में कि मुसलमान संसार के श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ है और चर्चिल के इस कथन में कि हिन्दू राजनीतिज्ञों को राजनीति के प्रारम्भिक पाठ सीखने में सहस्त्रों वर्ष लगेंगे कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है परन्तु यह नितांत असत्य नहीं है।

मुस्लिम समाज सहस्त्रों वर्षों से अपनी मदरसों, मस्जिदों में दी जाने वाली प्रारम्भिक शिक्षा और उससे उत्पन्न पारिवारिक संस्कारों के कारण ऐसे नेतृत्व, प्रचारकों और शासकों को जन्म देता रहा है जिनके मन में अपने जीवनोद्देश्य, धार्मिक ध्येय और अपनी नियति के विषय में कभी संदेह नहीं रहा है। यद्यपि इस्लाम में भी अनेक फिर्के बन गये हैं उन सब की प्रेरणा के स्त्रोत उनके परम मान्य धर्म ग्रन्थ कुरान और हदीस और आदर्श पुरुष पैगम्बर मौहम्मद साहब रहे हैं। मुसलमानों का कोई भी वर्ग हो, कोई भी सम्प्रदाय हो यह तीन वस्तुयें ऐसी अचूक और अटूट सीमेंट हैं जो उन सभी वर्गों सम्प्रदायों और व्यक्तियों को गैर इस्लाम और विशेषकर कुफ्र के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक एकजुट रखती हैं। हिन्दू समाज में ऐसा कोई सीमेंट शेष नहीं रहा है ? यहाँ हर व्यक्ति अपने लिये है।

मुस्लिम काल में ऐसे सैकड़ों उदाहरण है जहाँ एक हिन्दू राजा ने दूसरे हिन्दू राजा के विरुद्ध इस्लाम की सहायता की किन्तु ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जिसमें किसी मुस्लिम शासन ने किसी दूसरे मुस्लिम शासन के विरुद्ध किसी हिन्दू की सहायता कर हिन्दू शासन स्थापित करने की भूल की हो।

सुस्पष्ट ध्येय

ब्रिटिश शासन में उलमा में इस विषय पर मतभेद था कि सम्पूर्ण भारत के इस्लामीकरण के लिये पाकिस्तान बनना उत्तम था अथवा अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त करने

के लिये हिन्दुओं का साथ देना। किन्तु यह विचार–विभिन्नता मार्ग चुनने के विषय में थी। मंजिल के विषय में नहीं। मंजिल सभी उलमा की थीः सम्पूर्ण भारत का इस्लामीकरण। और याद रखिये यह उलमा मुस्लिम समाज के धर्म नेता भी हैं और राजनीतिक नेता भी, शिक्षा विद भी हैं और रक्षक भी। वह उनके असंदिग्ध मार्ग दर्शक भी हैं और कमांडर भी।

इन दो विचारधाराओं को स्पष्ट करने के लिये दो प्रतिनिधि विद्वानों के विचार प्रासंगिक होंगे।

एफ.के. दुर्रानी ने पाक–समर्थकों के विचार स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक "मीनिंग आफ पाकिस्तान" में लिखा हैः "पाकिस्तान का निर्माण इसलिये आवश्यक था कि उसको शिविर बना कर शेष भारत का इस्लामीकरण किया जाय।"---भारत,सम्पूर्ण भारत हमारी बपौती (बिरासत) है और उसे फिर से इस्लाम के लिये विजय किया जाना चाहिये।[१८]

पाक विरोधी उलमा के मंतव्य को मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने स्पष्ट किया हैः "धर्मपरिवर्तन के क्षेत्र में गैर मुस्लिम ही तो हमारी इस गौरवशाली क्रिया के कच्चे माल हैं। हम अपने इस मिशनरी कार्य को भारत के किसी विशिष्ट भाग में (अर्थात पाकिस्तान तक) सीमित करने के विरुद्ध हैं। हमारे पूर्वजों के बलिदान के कारण भारत के प्रत्येक कोने पर हमारा बराबर का अधिकार है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस अधिकार के क्षेत्र को घटाने के स्थान पर बढ़ायें।"[१९]

मौदूदी ने जो पाकिस्तान विरोधी थे दोनों दृष्टिकोणों को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "हम तो पूरे भारत को ही इस्लाम की भूमि बनाने को कृत संकल्प थे। फिर इस्लाम के नाम पर हम किसी देश (पाकिस्तान) के निर्माण का विरोध कैसे कर सकते थे।"

मुस्लिम काल में तो भारत का इस्लामीकरण होता ही रहा। अंग्रेजी काल में भी उन्होंने अपने ध्येय को ईमानदारी से स्पष्ट रूप से कहने में कभी कोई त्रुटि नहीं की। पानीपत के तीसरे युद्ध में शाहवलीउल्लाह ने अहमदशाह अब्दाली को अफगानिस्तान से और नजीबुद्दौला को रुहेलखंड से मराठा, जाट और सिख शक्ति को विध्वंस करने के लिये और मुगल शासन फिर से स्थापित करने के ध्येय से बुलाया। अब्दाली को उनहोंने लिखा : "मुसलमानों को गैर मुसलमानों के पंजे से मुक्त कराना तुम्हारा कर्तव्य है।" नजीबुद्दौला को उन्होंने जाटों, मराठों और सिखों का संहार करने की प्रेरणा दी थी।

इसके पश्चात १८५७ में सिपाही विद्रोह के समय जिसे भूलवश भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है हजरत सयद अहमद शहीद ने हिन्दू राजाओं को जो पत्र इस विद्रोह में शामिल होने के लिये भेजा था उसमें भी उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "वह (हिन्दू राजा) जानोमाल से इस्लाम की खिदमत करें और अपनी मसनद हुकूमत पर (जो मुगल बादशाहों द्वारा जागीरों के रूप में उन्हें बखशी गयीं थीं और अंग्रेजों द्वारा जब्त की जा रही थी) कायम रहें।"[२०]

सर सयद अहमद ने भी यह आशा व्यक्त की थी कि भारत में यदि अंग्रेजी राज्य समाप्त हो जाय तो भारतीय मुसलमान सीमा पार पर रहने वाले अपने धर्म बन्धु पठानों की

सहायता से इस्लामी राज्य स्थापित कर लेंगे। उन्हें भरोसा था कि भारतीय मुसलमानों की सहायता के लिये सीमा पार के पठान अपनी वादियों से टिड्ढी दल की भाँति निकल पड़ेंगे ओर भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक (हिन्दुओं के) खून की नदियाँ बहा देंगे।[(२१)]

१८८७ के कांग्रेस अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयब जी ने सर सयद को आश्वासन दिया था कि वह कांग्रेस में इसलिये थे कि उसमें रहते हुए मुसलमानों का हित साधन करते रहें। उन्होंने ए.ओ.ह्यूम को एक पत्र लिखा था कि यदि मुस्लिम समुदाय समग्र रूप से कांग्रेस के विरुद्ध रहे-----कारण उचित हो या नहीं इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता------तो इसका अर्थ होगा कि काँग्रेस आन्दोलन स्वतः ही सर्वमान्य जनता का आन्दोलन नहीं रह जायगा।"[(२२)] स्पष्ट है कि तैयब जी काँग्रेस में मुसलमानों का वीटो बनाये रखने के पक्ष में थे।

१९०६ में बंगाल में जो हिन्दू विरोधी दंगे हुये उसका भी मूल कारण वह लाल परचा था जिसमें मुसलमानों को हिन्दू स्कूलों, दुकानों और नौकरियों के बहिष्कार की प्रेरणा दी गयी थी। अति उत्तेजनात्मक शब्दों में उनसे कहा गया था कि उनकी दरिद्रता के कारण हिन्दू है और उन्हें दोजख भेज देना चाहिये। पूर्वी बंगाल में मुल्लाओं ने घूम घूम कर मुस्लिम जनता में यह प्रचार किया था कि इस्लाम का पुनरोदय हो रहा है। हिन्दू अफसरों के हुक्म मानने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू दुकानें लूटी जा सकती हैं और औरतें उठायी जा सकती हैं।[(२३)]

१९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष हकीम अजमल खाँ ने अहमदाबाद में बोलते हुये स्पष्ट कहा था : "एक ओर एशिया माइनर और दूसरी ओर हिन्दुस्तान भविष्य में बनने वाले इस्लामी महासंघ रूपी जंजीर की दो छोर कड़ियाँ हैं जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चय ही बीच के सब राज्यों को समेटती हुई एक बड़ा राज्य तंत्र बनने जा रही है।"[(२४)]

१९२५ में डा. किचलू ने चेतावनी दी थी कि यदि मुसलमानों को उनके अधिकार नहीं दिये गये तो वह अफगानिस्तान अथवा किसी दूसरी मुस्लिम शक्ति के साथ मिलकर इस देश में अपना राज्य स्थापित कर लेंगे।[(२५)]

लाहौर से निकलने वाले "द मुस्लिम आउटलुक" ने अपने सितम्बर १९२५ के अंक में लिखा था कि हमें हिन्दू राजनीतिज्ञों को अपने हथियारों के रूप में उपयोग करने में कोई आपत्ति नहीं है और साथ ही यह बता देने में भी कि हमारा ध्येय भारत में मुस्लिम शासन स्थापित करना है और अगली बार जब मुसलमान भारत में राज्य करेंगे तो वह सुल्तान महमूद गज़नवी और औरंगज़ेब द्वारा छूटा अधूरा पुण्य कार्य पूरा कर देंगे।[(२६)]

इसके पश्चात् मालाबार कोहाट इत्यादि अनेक स्थानों पर जो हिन्दुओं का कत्ले आम और बलात धर्मान्तरण किया गया उसमें भी यह बात सार्वजनिक रूप से कही गयी कि मुस्लिम शासन स्थापित हो गया है और मुस्लिम शासन में काफिरों का कोई स्थान नहीं है।

फरवरी १९२६ में सर अब्दुर्रहीम ने अलीगढ़ में बोलते हुए कहा था: "यदि इस

देश से अंग्रेज चले जायें तो हम भारतीय मुसलमान यह पसन्द करेंगे कि कोई विदेशी मुसलमान हिन्दुस्तान पर राज्य करे।

२६-८-३८ को केन्द्रीय विधान सभा में मौहम्मद अली के अनुचर काजी मौहम्मद अहमद काजमी ने स्पष्ट कहा था: "१८६४ में काजियों के पद समाप्त होने पर ------ -मुसलमानों ने निश्चय किया कि हिन्दुस्तान दारुल हर्ब (युद्ध स्थल) हो गया था---- ---आज भी हम अपनी नमाज उसको दारुल हर्ब मान कर ही पढ़ते हैं।(२७)

पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट करते हुये १९४० में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष जिन्ना साहब ने स्पष्ट कर दिया था कि "इस्लाम और हिन्दू वास्तव में दो धर्म नहीं बल्कि भिन्न और सुस्पष्ट सामाजिक व्यवस्थायें हैं। हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न धार्मिक दर्शनों सामाजिक प्रथाओं और साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं। वे निस्सन्देह दो भिन्न सभ्यताओं से सम्बन्धित हैं जो प्रधानतः परस्पर विरोधी तत्वों और धारणाओं पर आधारित हैं। जीवन के सम्बन्ध में प्रधानतः उनके दृष्टिकोण भिन्न हैं। हिन्दू और मुसलमान, इतिहास के दो भिन्न स्रोतों से अपनी प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उनकी वीरगाथायें भिन्न हैं, उनके महापुरुष भिन्न हैं। उनके उपाख्यान भिन्न हैं। बहुधा एक का महापुरुष दूसरे के महापुरुष का शत्रु है। ऐसे दो राष्ट्रों को एक राष्ट्र में जोत देना, एक अल्पसंख्यक और एक बहुसंख्यक, बढ़ते हुए असन्तोष का तथा उस ढाँचे के आखिरी विनाश का कारण होगा, जिसे ऐसे राज्य की सरकार के लिये निर्माण किया गया है।"(२८)

१९४७ में पाकिस्तान के निर्माण पर अपनी आपत्ति का कारण स्पष्ट करते हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा है : "विभाजन के पश्चात भारत में मुसलमानों की संख्या साढ़े तीन करोड़ रह जायगी और वह थोड़ी थोड़ी संख्या में पूरे भारत में बिखरे पड़े होंगे। (फलस्वरूप उनकी संगठित शक्ति इस समय से भी कम हो जायगी)। वह यहाँ १००० वर्ष से रह रहे हैं और उन्होंने यहाँ अपनी सभ्यता और संस्कृति के महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित कर लिये हैं।(२९) "मुस्लिम होने के नाते मैं एक क्षण को भी सम्पूर्ण भारत पर अपने अधिकार और उसके भविष्य को दिशा देने में अपनी हिस्सा बरदारी को त्यागने को तैयार नहीं हूँ।"(३०)

वह दिशा क्या होनी चाहिये यह वह अपने प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन में पहले ही बता चुके थे : "भारत को जो एक बार इस्लामी शासन में रह चुका है फिर से इस्लाम के लिये विजय करना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है।"(३१) मुसलमान खुदा की पार्टी है।"(३२) "हमारा विश्वास है कि कोई भी विचार (दर्शन) जिसका स्रोत कुरान के बाहर है नितान्त कुफ्र है।"(३३)

सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश मेहरचन्द महाजन ने आज़ाद की पुस्तक "इण्डिया विन्स फ्रीडम" के विषय में लिखा था : "मौलाना आजाद जिन्नाह से अधिक धूर्त थे। यदि उन पर छोड़ दिया जाता तो भारत वस्तुतः मुसलमानी वर्चस्व का देश हो जाता। (३३क)

भारत का द्विराष्ट्र सिद्धांत पर विभाजन होने के १४ वर्ष पश्चात

७ फरवरी १९६१ को औरंगाबाद की एक मस्जिद में २०० मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए जमाते इस्लामी के नेता सयद अहमद हुसैन ने कहा : "क्या मुसलमान जिनके पास अपना एक अलग सम्पूर्ण दर्शन है धर्मनिरपेक्षता की इस सर्वनाशी धारा में डूब जायेंगे अथवा वह इस धारा को ही बदलकर इस्लामी प्रभुसत्ता को स्थापित करेंगे? भारत के मुसलमानों के सामने यह एक गम्भीर प्रश्न है। इस्लाम का तो जन्म ही हुआ है पूरे विश्व को इस्लामी बनाने के लिये। हमें भारत में इस धर्मनिरपेक्ष राजसत्ता को हटाकर इस्लामी राज्य सत्ता स्थापित करनी है। इस महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये तमाम मुसलमानों को संगठित हो जाना चाहिये। (३४)

विभाजन के पश्चात राष्ट्रीय मुस्लिम नेता मौलाना हुसैन अहमद मदनी अध्यक्ष जमीयते–उल्माये हिन्द द्वारा १९७२ में लिखे गये अनेक पत्रों से भी यह बात स्पष्ट होती है कि मुस्लिम नेतृत्व के विचार और संकल्प कितने स्पष्ट और अपरिवर्तनीय थे। अपने पत्रों में उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि "हिन्दुस्तान दारुल हर्ब है। वह उस वक्त तक दारुल हर्ब रहेगा जब तक कि इस देश में कुफ्र को गल्बा (वर्चस्व) हासिल रहेगा।" एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा "हिन्दुस्तान जबसे इकतदारे इस्लाम (इस्लामी सत्ता) खत्म हुआ तब से ही दारुल हर्ब है।" १९७२ में उन्होंने फिर लिखा "जब सल्तनत हासिल न हो, अहाद (मुस्लिम व्यक्तियों) का फरीजा (कर्तव्य) सिर्फ यह होगा कि अपनी ताकत के अनुसार सिर्फ इसकी जद्दोजहद करें कि इस्लामी हुकूमत कायम हो।"(३५)

सयद अहमद अरुल कादरी– सदस्य मजलिसे शोरा व सअवसर कायम मुकाम अमीर (अध्यक्ष) जमाते इस्लामी हिन्द की १९७० में दिल्ली से छपे "इकामते दीन फर्ज है– पृ. ५९, ६० व ६३ के अनुसार" यह साबित हो चुका है कि दीने हक (इस्लाम) को बातिल अदियान पर (गैर–इस्लामी झूठे धर्मों पर) गालिब व सर बुलन्द करना जिसके लिये कुरान ने एक जामा इस्तलाह (सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्द) "इकामते दीन" इस्तेमाल किया है फर्ज है।---राहे खुदा में जिहाद का फरीजा है।"(३६)

इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के प्रधान जनाब इब्राहीम सुलेमान सेत ने १४ अप्रैल १९८२ को हैदराबाद (भारत) में कहा : "चौदहवीं सदी गुजर चुकी है और पन्द्रहवीं सदी का आगाज़ हो गया है। चौदहवीं सदी आखिरी का जो निस्फ दौर था, इसमें इस्लामी तहरीकें उठी। इस्लामी शख्सीतयें पैदा हुई– शाहवली उल्ला----- सैयद अहमद शहीद------ सैयद कुत्ब------- अल्लामा इकबाल---और सबसे बढ़कर मौलाना मौदूदी जैसी शख्सीयतें सामने आई-- इनकी तहरीकों की वजह से हमारे अन्दर-----ये यकीन पैदा हो गया है कि इस्लाम चन्द इबादतों का संग्रह नहीं है बल्कि एक निजामें हयात (जीवन विधि) है जो जिन्दगी के तमाम शोबों पर हाबी है। और हमारे पास सियासत व मजहब में कोई भेद नहीं किया जा सकता-- यह सदी इस्लाम की पुनर्स्थापना की सदी है। इस्लाम के

वैभव की सदी है और फिर इसके साथ साथ अर्ज़ करूँगा कि जहाँ तक यहाँ (भारत) पर इस्लाम की तरक्की के लिये और बातें होनी चाहिये वहीं हमारे मिल्लीवजूद के लिये दीन व शरियत का तहाफ्फुज़ भी ज़रूरी हो जाता है और फिर इसके साथ–साथ इकामतेदीन के फर्ज को अदा करना है।---

मैं दुआ करता हूँ अल्लाहरब्बुल इज्ज़त से कि इस सदी को वह इस्लाम की पुनर्स्थापना की सदी बना दे, इस्लाम के वैभव की सदी बना दे, इस्लाम के गलबे (वर्चस्व) की सदी बना दे।"(३७)

३० मार्च को दिल्ली के बोट क्लब पर हज़ारों मुसलमान इकटठे हुए। बाबर के हुक्म से राम जन्म भूमि पर बनाई गई बाबरी मस्जिद को प्राप्त करने के लिए ख़ून का आख़िरी कतरा तक बहा देने का ऐलान किया गया। सरकार ने उनकी बात न मानी तो उनका कदम अयोध्या की ओर बढ़ेगा और वे राम जन्म भूमि पर बनी मस्जिद में नमाज अदा करेंगे।(३८)

बोट क्लब पर तख्तियां लटकायी गई थीं–

न घबराओ मुसलमानों, खुदा की शान बाकी है,
अभी इस्लाम जिन्दा है, अभी कुरान बाकी है।
वो काफिर क्या समझते हैं, जो अपने दिल में हँसते हैं,
अभी तो कर्बला का आख़िरी मैदान बाकी है।(३९)

यहाँ चार बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। पहली यह कि मुस्लिम नेतृत्व चाहे कांग्रेस में हो अथवा किसी दूसरे संगठन में संपूर्ण भारत के इस्लामी करण का सदैव न केवल इच्छुक रहा है अपितु इस ध्येय प्राप्ति के प्रति अपने दृढ़ संकल्प की निरंतर घोषणा करता रहा है। इस को कभी छिपाया नहीं है। दूसरी यह कि विभाजन के पश्चात भी उनके इस संकल्प की निरंतर और सार्वजनिक रूप से घोषणा के बाद भी न शासन, न हिन्दू समाज और न हिन्दू धार्मिक नेतृत्व इस संकल्प से निपटने के लिये कोई प्रभावी पग उठा सका है। चौथी यह कि इस संकल्प की सार्वजनिक घोषणा के पश्चात कोई भी राजनीतिक पार्टी मुसलमान नेतृत्व से सहायता के लिये भिक्षा मांगने में संकोच नहीं करती। और यदि सम्भव हो तो उनकी सहायता से सरकार बनाने और चलाने को उत्सुक रहती है। इस प्रकार के इरादों को नाकाम करने के संकल्प की घोषणा मात्र किसी व्यक्ति अथवा पार्टी पर साम्प्रदायिकता का बिल्ला चिपकाने के लिये पर्याप्त है।

२६

पुराना रोग अयोग्य डाक्टर और वही असफल नुस्खे

जहाँ मुस्लिम नेतृत्व के मन में अपने ध्येय के प्रति इस्लाम के जन्म से आज तक कोई भ्रम नहीं रहा है और उस ध्येय को प्राप्त करने की निष्ठा और संकल्प में भी लेशमात्र अंतर नहीं आया है हिन्दू नेतृत्व दिशा विहीन, भ्रमयुक्त, अव्यवहारिक और अतिवादी भावुकता और संशय से ग्रस्त रहा है। हमारी इस बात का गाँधी जी से उत्तम उदाहरण मिलना कठिन है। वह भारतीय राजनीति पर अपने जीवन काल में ३० वर्ष छाये रहे। और उनकी मृत्यु के ५० वर्ष बाद आज भी सुविधानुसार राजनीति में मुस्लिम लीग से लेकर भारतीय जनता पार्टी तक और कम्युनिस्टों से लेकर समाजवादी पार्टी तक सभी उनके नाम की दुहाई देकर अपनी साख स्थापित करते रहते हैं। कट्टरवादी उलमा जैसे अलीमियाँ इत्यादि और शहाबुद्दीन जब उनको उपयोगी लगता है गाँधी की दुहाई देते हैं।

गाँधी जी ने भारत का नेतृत्व १९१६ से अपने हाथ में लेना प्रारम्भ किया था। १९२४ तक वह अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों हिन्दू महासभा, आर्य समाज, क्रांतिकारी, तिलक, जिन्नाह (जब वह काँग्रेसी थे) इत्यादि को पछाड़ चुके थे।हिन्दुओं ने स्वेच्छा से उन्हें अपना डिक्टेटर स्वीकार कर लिया था।

१९२४ तक के अनुभवों में जहाँ एक ओर ख़िलाफ़त आन्दोलन के समय गाँधी जी हिन्दू मुस्लिम एकता की चरम उँचाइयों पर थे वहीं ख़िलाफ़त प्रश्न समाप्त होते ही भीषण हिन्दू मुस्लिम दंगे हुये। उस समय के महात्मा जी की वेदना उनकी निम्नलिखित वक्तव्यों से स्पष्ट प्रकट होती है :-

(क) हिन्दुओं ने लिखित रूप से मुझसे शिकायत की है कि मैं मुसलमानों को एक करने और उन्हें जागृत करने के लिये उत्तरदायी हूँ। मैंने मौलवियों को अपूर्व प्रतिष्ठा प्रदान की है। अब जब कि ख़िलाफ़त का प्रश्न ठंडा पड़ चुका है जागृत मुसलमानों ने हिन्दुओं के विरुद्ध एक प्रकार से जिहाद की घोषणा कर दी है।[४०]

(ख) मेरा निजी अनुभव भी इसी विचार की पुष्टि करता है कि मुसलमान स्वभाव से आक्रामक होता है और हिन्दू कायर।[४१]

(ग) मेरी ग़लती? क्यों, क्या मुझ पर यह लांछन नहीं लगाया जा सकता कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया है? मैंने उनसे कहा था कि वे अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिये तन और धन मुसलमानों को सौंप दें और फल क्या निकला? कितनी अधिक बहनें मेरे पास शिकायत लेकर आयीं----उन्हें अकेले जाने में डर लगता है-----जिस प्रकार उनके नन्हें मुन्नों पर अत्याचार किया गया उसे मैं कैसे सहन करूँ?------ मैं किस मुँह से कहूँ कि हिन्दू हर स्थिति में धैर्य धारण करें? मैंने उन्हें

आश्वासन दिया था कि मुसलमानों की मैत्री के अच्छे परिणाम होंगे। आज मैं असमर्थ हूँ उस आश्वासन को पूरा नहीं कर सकता। मेरी कोई नहीं सुनता। लेकिन आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहूँगा कि भले ही मर जाओ, मारो मत।"(४२)

(घ) इन आरोपों में इतनी सच्चाई तो है कि मुसलमान कम रुचि लेते हैं क्योंकि वह भारत को अपनी जन्मभूमि नहीं मानते जिस पर उन्हें गर्व होना चाहिये था। बहुतेरे स्वयं को विजेताओं का वंशज मानते हैं। मेरे विचार से यह नितांत अनुचित बात है।" (४३)

(ङ) "मैं अपनी अयोग्यता स्वीकार कर चुका हूँ। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि एक डाक्टर की हैसियत से मैं इस मर्ज (हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य) को ठीक करने के लिये सही नुस्ख़ा तजबीज़ करने में असफल रहा हूँ।"(४४)

इस स्वीकारोक्ति के पश्चात क्या गाँधी जी को यह नैतिक अधिकार था कि अपने ऊपर अगाध श्रद्धा रखने वाले हिन्दुओं को यही कहते रहे : "------लेकिन आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहूँगा कि भले ही मर जाओ मारो मत।" इस प्रकार का आह्वान अनैतिक तो था ही अव्यवहारिक और हिन्दुओं के लिये आत्मघाती भी था। यह भारत के इस्लामीकरण के नितान्त अनुकूल था। इसका फल भी जैसा कि सभी जानते हैं यही निकला भी। २०-२२ वर्ष बाद भारत का १/३ भाग इस्लामी देश पाकिस्तान बन गया और वहाँ हिन्दू लगभग निःशेष कर दिये गये।

स्मरण कीजिये पैगम्बर मौहम्मद साहब का वाक्य कि मुसलमान को एक ही सुराख़ से दो बार डंक नहीं खाना चाहिये। अर्थात दो बार विश्वासघात का शिकार नहीं होना चाहिये। और गाँधी जी का यह संकल्प कि दूसरों पर अविश्वास करने की अपेक्षा मैं हज़ार बार धोखा खाना पसन्द करूँगा। हो सकता है गाँधी जी की बात में असीम नैतिकता छिपी हो परन्तु जो लोग पुराने कटु अनुभव से पाठ नहीं सीखते वह यथार्थ की दुनिया में जीवित रहने का अधिकार खो बैठते हैं।

गाँधी जी के साथ भी यही हुआ। उन्हें कहना पड़ा : "मेरे जीवन का स्वप्न ही भंग हो गया। मेरे जीवन का तो ध्येय ही मिट्टी में मिल गया।" (४५)

सरोजनी नायडू ने अन्यथा नहीं कहा था : "जहाँ तक राजनीति का सम्बन्ध है (विभाजन के फलस्वरूप) गाँधी जी मर चुके हैं। उनके जीवन की तपस्या भंग हो गयी है। उनके सामने उनके जीवन व्रत का शव पड़ा है।"(४६) परन्तु गाँधी वाद का भूत आज भी हिन्दू नेतृत्व पर सवार है।

२७

सिद्धान्तहीन स्वार्थ और अवसरवादिता

पिछले पत्रों में हमने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मौहम्मद बिन कासिम (७१२ ई.) से मुस्लिम शासन के १७५७ में पतन तक मुस्लिम आक्रान्ताओं और शासकों का समान और दृढ़ संकल्प रहा है कि सम्पूर्ण भारत इस्लाम ग्रहण कर ले। मुस्लिम शासन समाप्त होने पर शाहवलीउल्लाह (१७०२–६२) से इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के अध्यक्ष इब्राहीम सुलेमान सेत के हैदराबाद में १४ अप्रैल १९८२ तक की गईं घोषणायें, अनेक वक्तव्यों और १९९२ में बोट क्लब दिल्ली की विशाल मुस्लिम रैली में अब्दुल्ला बुखारी की घोषणा से स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों के उस संकल्प में कोई फेरबदल नहीं हुआ है। हो भी नहीं सकता है क्योंकि यह इस्लाम का तकाज़ा है।

इसके विपरीत हिन्दुओं का उनके इस संकल्प को विफल करने के प्रयास की कौन कहे उसकी ओर ध्यान भी नहीं गया। इसका एक और भी कारण था। अपने वेदों और उपनिषदों के वास्तविक धर्म को भुलाकर विलासी हिन्दू शासक पौराणिक मत और अपनी गद्दी को सुरक्षित रखने मात्र को ही अपना धर्म समझ बैठा था। प्रचलित हिन्दू धर्म की तुलना में उसे इस्लाम बेहतर लगता था। किन्तु प्रजा में अभी भी जाने अनजाने अपने धर्म से मोह था। उदयपुर के महाराणा को छोड़कर शेष सभी राजपूत रजवाड़ों की मानसिकता को अकबर के समक्ष मानसिंह ने इस प्रकार प्रकट किया था: "हम लोगों ने ज़िद के सबब कुफ्र की बातें क़ुबूल नहीं कर रखी हैं बल्कि इस कारण हिन्दू बने हुये हैं कि जो अकेले (प्रजा के हिन्दू रहते) मुसलमानी कुबूल करें तो कौम के लोग हमें छोड़कर अलग हो जाँय और हमें (अपना) सरदार न बनावें। इस झगड़े के सबब लाचार हैं वर्ना सब मज़हबों से मुसलमानी मज़हब बेहतर जानते हैं।" [४७] इन सभी राजपूत राजाओं ने मुसलमान शासकों से भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति के लोभ में खुशी खुशी अपनी राजकुमारियाँ मुगलों को दी थीं। जो राजपूत अपने अतिरिक्त दूसरे वंश के राजपूत को भी बेटी देना अपमान जनक, समझता था वह स्वेच्छा से और कभी कभी आग्रहपूर्वक तुर्कों को बेटी देकर मुस्लिम शासकों से जागीर अथवा पद पाने में गौरव अनुभव करता था।

केवल इतना ही नहीं यह राजपूत जिन्होंने अपनी बेटियां मुस्लिम शासकों को व्याह दी थीं उन राजपूत सरदारों का उपहास करते थे और उनकी कठिनाइयों पर हँसते थे जो महाराणा प्रताप का साथ देकर मुगल शासकों से लोहा ले रहे थे। (देखे श्याम दास द्वारा लिखित वीर विनोद)

अकेले अकबर के काल में शाही परिवार में ३८ से कम राजपूत रानियां नहीं थीं। १२ अकबर की, १६ जहाँगीर की, ६ दानियाल की, २ मुराद की, एक जहाँगीर के पुत्र खुसरों की।[४८] आज तो लाखों हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमानों से विवाह करती हैं। इसके विपरीत मुस्लिम काल में उन हिन्दुओं को शासन का घोर कोप भाजन बनना पड़ता था जिनकी पत्नियाँ मुसलमान होती थीं। आजकल भी मुस्लिम लड़की के स्वेच्छा से हिन्दू युवक से विवाह कर लेने पर साम्प्रदायिक दंगा भड़क उठता है। यद्यपि इस प्रकार की घटना गिनी चुनी ही होती हैं।

स्वार्थ को, धर्म और राष्ट्र के ऊपर स्थान देने का एक अच्छा उदाहरण विभाजन के पश्चात देसी रियासतों में विलय के समय मिलता है।

धर्म के नाम पर विभाजन के पश्चात विलय के प्रश्न पर जोधपुर के शासक ने उस निर्णायक घड़ी में भी अपने स्वार्थ को धर्म के ऊपर स्थान देना चाहा था। जोधपुर के महाराज हनवन्त सिंह जैसलमेर के महाराज कुमार को साथ लेकर जिन्नाह से मिले। जिन्नाह ने महाराज की सभी शर्तें मान लीं तो महाराजा जोधपुर पाकिस्तान से मिलने को तैयार हो जाये। उन्होंने जैसलमेर के महाराज कुमार से पूछा कि क्या वह उनका साथ देंगे। महाराजकुमार ने कहा कि उनकी एक शर्त है: "यदि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कोई झगड़ा होगा तो वह हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों का पक्ष नहीं लेंगे।" महाराज हनवन्त सिंह असमंजस में पड़कर बिना विलय पत्र पर हस्ताक्षर किये जिन्नाह से समय माँग कर वापिस आ गये[४९] राज्य की हिन्दू प्रजा द्वारा पाकिस्तान में विलय का घोर विरोध किया गया। उसको देखते हुए महाराज की हिम्मत जवाब दे गई अन्यथा वह तो लालच में आ ही गये थे।

इसके विपरीत मुस्लिम बहुल रियासतों के शासकों का व्यवहार देखें। हैदराबाद और भोपाल जैसे मुस्लिम शासक भी जो चारों ओर से हिन्दुस्तान से घिरे हुये थे और जिनकी प्रजा हिन्दू थी पाकिस्तान में विलय अथवा स्वतन्त्र रहकर उससे संधि की बात सोच रहे थे। जूनागढ़ का नवाब तो पाकिस्तान में विलय करने का मन बना कर वहाँ जा ही चुका था। उसने कुछ भारतीय क्षेत्र पर भी बल पूर्वक कब्ज़ा कर लिया था। प्रजा का विरोध और सरदार पटेल का कड़ा रुख ही जूनागढ़ इत्यादि इन रियासतों को भारत में रख सका।

मुस्लिम बाहुल्य काश्मीर में हिन्दू राजा होते हुये भी भारत उस राज्य में हिन्दुओं को समान व्यवहार नहीं दिला सका और उसका एक भाग पाकिस्तान ने हथिया लिया। शेष काश्मीर से हिन्दू भगा दिये गये। गिलगिट और जम्मू पर भी जो उससे लगे हिन्दू बहुल क्षेत्र हैं पाकिस्तान की आँखें लगी हैं। क्या इस बात को सिद्ध करने के लिये बहुत तर्क की आवश्यकता है कि यदि काश्मीर हिन्दू बाहुल्य प्रांत होता तो वहाँ यह समस्या कभी भी खड़ी न होती और खड़ी होती भी तो इसी प्रकार समाधान निकल आता जैसे पंजाब अथवा हैदराबाद का। काश्मीर की समस्या इस्लाम धर्म के राजनीतिक दर्शन और उसकी धार्मिक मान्यता से उत्पन्न समस्या है। इस्लाम इस स्थिति को स्वीकार नहीं करता कि मुसलमान किसी गैर मुस्लिम शासक के अथवा गैर–शरियत कानून के अधीन जीवन–यापन करें। यह पैगम्बर के जीवन में मक्का की अस्थायी स्थिति जैसी मजबूरी हो सकती है। ऐसी स्थिति में यदि परिवर्तन असम्भव ही हो जाय तो उनको उस शासन से हिजरत कर मुस्लिम शासन में चला जाना चाहिये। जैसे मुसलमान मक्का छोड़ कर मदीने चले गये थे। और यदि ऐसे काफ़िर देश पर वह अपना शासन स्थापित करने में सफल हो जाँय तो शासन का कर्तव्य है कि उस देश में कुफ्र और काफ़िरों को सर्वथा समाप्त कर दें जैसा मक्का विजय के बाद अरब में किया गया। मूर्ति मंदिर काबे से ३६० से अधिक मूर्तियों को निकाल कर तोड़ दिया गया और मूर्ति मंदिर काबे को इस्लाम का पूजा स्थल बना दिया गया। इतिहास इस्लाम के इस व्यवहार की अनेक मुल्कों में साक्षी देता है। भारत में

३००० से ऊपर ऐसे ज्ञात स्थान हैं जहाँ मन्दिर तोड़कर उनके स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया।

अन्धा ढोवे अन्धे को

जहाँ मुस्लिम नेतृत्व के मन में अपने ध्येय के प्रति कभी कोई भ्रम नहीं रहा है, न हिन्दू धर्म व हिन्दू समाज के प्रति, वहाँ शीर्ष हिन्दू नेता इन मौलानाओं, सूफियों और इस्लाम के विषय में कितने अनभिज्ञ और भ्रमयुक्त रहे हैं वह निम्नलिखित दो चार उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है।

इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली दिनाँक ९-९-९० के अनुसार उपराष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा ने कहा कि मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भारत की धर्मनिरपेक्ष राजनीति के जीते जागते उदाहरण हैं और प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने कहा कि मौलाना आज़ाद ने देश को केवल आज़ादी दिलाने में ही महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी अपितु धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिक सद्‌भावना के पालन की भी मिसाल कायम की।

इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली १८-१०-९० के अनुसार हिन्दुस्तानी आन्दोलन के मधु मेहता ने सम्पादक को लिखे गये पत्र में कहा कि "भातृ प्रेम और पारस्परिक भाई चारे की नीति अपनानी चाहिये जैसा कि सभी धर्म अपने अनुयाइयों से अपेक्षा करते हैं।"

अमर उजाला मेरठ दिनांक १८-१०-९० के अनुसार अजीत सिंह, उद्योगमंत्री ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करते हुये कहा "सर सयद अहमद ने हिन्दू मुस्लिम एकता तथा भाई चारे का पाठ पढ़ाया।"

श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह का यह बयान है कि "मैं अली मियाँ के सपनों का हिन्दुस्तान बनाना चाहता हूँ" हम अन्यत्र उद्‌धृत कर चुके हैं।

शंकराचार्य हिन्दू धर्म मतावलम्बियों के सर्वोच्च धार्मिक नेता हैं। हिन्दू समाज को संकट से चेताना, उसकी रक्षा और प्रचार प्रसार करना उनका मुख्य कर्तव्य है। सान्ध्य समाचार २७-१२-८६ के अनुसार कलकत्ते में कान्चि काम कोटि पीठ के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती ने संवाददाताओं से बात करते हुए कहा : "सभी धर्म हिंसा और उग्रवाद छोड़ने पर बल देते हैं-------हिन्दुत्व को कोई खतरा नहीं है------"। जिस समाज के ऐसे प्रहरी हों उसके नष्ट होने में क्या सन्देह है।

सभी धर्म समान है। सभी हिंसा त्यागने और अहिंसा का उपदेश देते हैं। सभी पारस्परिक भाई चारे का संदेश देते हैं। सभी समान रूप से सच्चे हैं। सभी ईश्वर तक पहुँचने के अलग अलग मार्ग हैं। ऐसा कहने वाले हिन्दू ही मिलेंगे। कोई मुसलमान या ईसाई भूले से भी ऐसा नहीं कहता। इसके विपरीत वह केवल अपने मत को ही सत्य और दूसरों को घृणित, काफिर और हिदेन्स मानते हैं। उनकी संस्कृति को अंधकारमय और नष्ट करने योग्य घोषित करते हैं।

महत्वपूर्ण पदों पर आसीन इन हिन्दू नेताओं द्वारा तथ्यों के नितांत विपरीत इस प्रकार के बयानों का कारण उनकी अनभिज्ञता है अथवा घोर स्वार्थ से उपजी अवसरवादिता? जब ऐसे महापुरुष इस प्रकार का प्रचार करते हों तो साधारण लोगों का क्या कहना?

२८

हिन्दू समाज का विघटन

यह समझाने के लिये बहुत तर्क की आवश्यकता नहीं है कि एक संगठित समाज को नष्ट करना कठिन है। यदि उसी समाज को छोटे छोटे आपस में वैमनस्य रखने वाले टुकड़ों में बाँट दिया जाय तो उन अलग अलग टुकड़ों को एक एक कर नष्ट कर देना बहुत सरल होता है। इस दृष्टि से हिन्दू समाज के खण्डित होने का अर्थ है भारत के इस्लामीकरण और ईसाईकरण के मार्ग को सुगम कर देना। जो शासक, विचारक, धर्मगुरु और राजनीतिज्ञ जाने अनजाने ऐसा कोई भी पग उठाते हैं जिससे हिन्दू समाज अलग अलग वैमनस्यपूर्ण दलों में जाति, भाषा, क्षेत्र इत्यादि के नाम पर बँट जाय वह निश्चय ही भारत के इस्लामीकरण को खुला निमन्त्रण दे रहे हैं।

हिन्दू-सिख एकता पर कुठाराघात

इन्दिरा गाँधी का प्रधानमन्त्रित्व काल जहाँ एक ओर पाकिस्तान के विभाजन और बांग्लादेश के जन्म के लिये याद किया जायगा वहीं वह इतिहास में भारत के इस्लामीकरण की यात्रा में एक मुख्य पड़ाव के रूप में भी याद किया जायगा। उनके काल में हिन्दू समाज की खड़ग भुजा सिख समुदाय का हिन्दू समाज से ऐसा मनमुटाव हुआ जो सिख इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था।

१८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही गुरु नानकदेव की परम्परा में जन्में १० वें गुरु गोविन्द सिंह का खालसा तलवार लेकर भारत में इस्लाम के बढ़ते चरणों को रोककर खड़ा हो गया था। स्वयं गुरु महाराज ने अपने सामने जो महान आदर्श रखा वह हिन्दू धर्म की रक्षा का ही था :

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे। जगे धर्म हिन्दू सकल भण्ड भाजे।।

वह खालसा पंथ की घोषणा का उद्देश्य हिन्दू धर्म में उत्पन्न अंध विश्वास ढोंग इत्यादि से उसको मुक्त करना बताते हैं। यद्यपि सिखों का एक छोटा सा वर्ग सदैव ही कहता रहा है कि सिख हिन्दू नहीं है परन्तु पंजाब में हिन्दू सिखों के सम्बन्ध इतने पुराने और घनिष्ट थे कि इस प्रकार की बात करने का कोई विशेष प्रभाव नहीं रहा। स्वयं गुरुग्रन्थ साहब की साक्षी इस कल्पना के विरुद्ध है। इसमें हरी का नाम १०,००० बार, राम का २४०० बार, ब्रह्म का ५५० बार, ओंकार का ४०० बार, वेद, पुराण, स्मृति और शास्त्र का ३५० बार, ईश्वर के गुणों में वैदिक कल्पना निरंजन निरंकार जैसे शब्द २६०० बार, मुरारी, माधव, केशव, मोहन इत्यादि २००० बार, और पुराणों से सम्बन्धित २७०० बार, और वेदों से सम्बन्धित शब्द १२५० बार प्रयोग हुए हैं। पुराणों की अनेक कहानियाँ जो दम्भ,

अन्ध विश्वास, कर्मकाण्ड की निन्दा करती हैं और भक्ति काल के अनेक हिन्दू सन्तों की वाणी इसमें पायी जाती है। फिर क्या संदेह रह जाता है कि इनके प्रेरणास्रोत कौन थे?

निस्संदेह पंजाब में हिन्दू और सिख एक संगठित समाज था। कुछ केशधारी सिख थे तो कुछ बिना केशधारी और कुछ हिन्दू थे। नानक सभी के समान रूप से आदर के पात्र थे। अनेक हिन्दू गुरुद्वारों में मत्था टेकने जाते थे तो सिख मन्दिरों में। त्योहार एक थे। खाना पीना एक था। रोटी बेटी का व्यवहार था। अनेक हिन्दू परिवारों में बड़े पुत्र को केशधारी सिख बनाने की परम्परा थी। क्योंकि गुरु गोविन्द सिंह ने केशधारी सिखों की सेना हिन्दुओं की रक्षा के लिये खड़ी की थी इसलिये उस सेना में हिन्दू अपने बच्चों को न भेजता तो कौन भेजता? पंजाब में यदि किसी हिन्दू माँ के चार पुत्र होते और कोई उससे पूछता कि उसके कितने पुत्र हैं तो वह अपने तीन ही पुत्र गिनती। कहती एक पंथ को दे दिया। सिखों में भी जो केशधारी नहीं थे वह मौने सिख कहलाते थे। महाराज रणजीत सिंह ने हिन्दू सिख सम्प्रदायों में उस प्यार मुहब्बत को स्थिर रखा। हरि मंदिर में संगमरमर और सोने की चादर लगाई परन्तु कोहिनूर हीरा वह जगन्नाथ पुरी मंदिर में ही चढ़ाने का मन बना चुके थे। वह धर्म निष्ठ सिख थे परन्तु ब्राह्मणों को दान देते थे, गंगा स्नान करते थे और मंदिरों में पूजा भी करते थे। ऐसे रोटी, बेटी, धर्म और विश्वास के कठोर सीमेंट से जुड़े हिन्दू सिख सम्पद्राय में अंग्रेजों ने आरक्षण का लोभ देकर अलगाव का विष बोने का प्रयास किया था।

१८५७ के विद्रोह में मुस्लिम नेतृत्व के बहकाने में आकर और अपनी रियासतों को ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त किये जाने के भय से केवल हिन्दुओं ने मुसलमानों का साथ दिया था। क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से जागृत सिखों ने भारत के इस्लामीकरण के खतरे को भुलाया नहीं था उन्होंने अंग्रेज़ों का साथ दिया। अंग्रेज़ों ने अपनी सहायता करने वाले सिखों को इनाम स्वरूप भूमि देकर पुरस्कृत किया। सिख युवकों को बड़ी संख्या में सरकारी नौकरियों में विशेष रूप से सेना और पुलिस में लिया जाने लगा। किन्तु शर्त थी वह केशधारी हों और उन्होंने बाक़ायदा पाहल लेकर सिख धर्म स्वीकार किया हो।[५०]

अनेक हिन्दू युवक अंग्रेजों द्वारा इन आर्थिक सुविधाओं का लाभ उठाने के लिये केश रखकर और पाहल लेकर खालसा बनने लगे। इसमें हिन्दुओं को तो कोई आपत्ति थी ही नहीं और सिख धर्म के बढ़ते प्रसार की दृष्टि से खालसा को भी कोई आपत्ति नहीं थी। इसलिये ब्रिटिश नीति का कोई विशेष अलगाववादी प्रभाव नहीं पड़ा।

पाकिस्तान के निर्माण के समय मुसलमानी आतंक का हिन्दू और सिख समान रूप से शिकार हो रहे थे। इस कारण हिन्दू और सिक्ख सम्प्रदायों ने एकजुट होकर मुस्लिम शासन काल की भाँति इस आतंक का मुकाबला किया। मुसलमान हिन्दुओं से अधिक सिखों से घृणा करते थे, क्योंकि वह हिन्दू होने के साथ साथ शस्त्रधारी थे और अहिंसा में विश्वास नहीं करते थे। इसलिये विभाजन के समय मुसलमानों का क्रोध सिखों पर अधिक था। लाहौर, अमृतसर, मुल्तान और रावलपिंडी में सिखों पर अमानुषिक अत्याचार

किये गये। उनकी दाढ़ियों में आग लगा दी गयी और उन्हें ज़िन्दा जला दिया गया। गाँधी जी के शिकायती पत्र पर पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकतअली ने उत्तर दिया कि "वह पाकिस्तान में शेष रहे हिन्दुओं की रक्षा का प्रयास करेंगे परन्तु सिखों को किसी प्रकार भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।"[५१]

विभाजन का दुष्प्रभाव सिखों पर विशेषरूप से पड़ा। पचास लाख सिखों में से जो पाकिस्तान से भागकर भारत आये लगभग २५ लाख के वहाँ बड़े बड़े फार्म थे अथवा कारोबार थे और वे समृद्ध थे। भारत में वह कंगाल हो गये। स्वतंत्र और पंथनिरपेक्ष भारत में उनके आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र और सरकारी नौकरियों में आरक्षण भी छिन गये। अनेक सिख जो इन सुविधाओं के लोभ में सिख बने थे केश कटवाकर मोने होने लगे। सिखों में जो अलगाववादी तत्व थे उन्होंने कहना शुरू किया, मुसलमानों को पाकिस्तान मिला, हिन्दुओं को हिन्दुस्तान मिला, सिखों को क्या मिला?" कुछ यह भी समझने लगे कि जिस प्रकार मुसलमान अपने बाहुल्य प्रधान क्षेत्रों में पाकिस्तान बनाने में सफल हो गये वह भी अपने बाहुल्य क्षेत्रों में खालिस्तान बनाने में सफल हो सकते हैं।[५२] किन्तु भारतवर्ष में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था जहाँ सिखों का पूर्ण बहुमत हो। पाकिस्तान से आने वाले सिख शरणार्थियों का हिन्दुओं द्वारा भारत में सहानुभूति-पूर्ण स्वागत किया गया था। परिश्रमी सिखों ने शीघ्र ही अपनी मेहनत और सूझ बूझ से भारत में व्यवसाय, उद्योग और फार्म फिर खड़े कर लिये। उत्तरी भारत में लगभग सभी स्थानों पर सिख शरणार्थी पहुँच गये और शीघ्र ही वहाँ के समाज में उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। इसलिये पंजाब के कुछ सिखों को छोड़कर खालिस्तान की बात कोई विशेष बल नहीं पकड़ सकी।

यदि राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए सूझ बूझ से काम लिया जाता तो सिखों में अलगाववाद के उठने और ज़ोर पकड़ने का कोई प्रश्न न उठता किन्तु पंजाब में काँग्रेस नेताओं ने अपनी ही पार्टी के प्रतिद्वन्द्वियों की साख समाप्त करने के लिये वहाँ अलगाववाद का बीज बोया।

इन्दिरा गाँधी ने ही ज्ञानी जैल सिंह के साथ मिलकर भिण्डरावाले को एक संत के रूप में पंजाब में स्थापित कर उसे बढ़ावा दिया, इससे अनेक विद्वान सहमत हैं। प्रारम्भिक जीवन में ही जब भिण्डरावाले आतंकवाद की ओर बढ़ रहा था उसी समय यदि निर्णायक पग उठाये गये होते तो स्वर्ण मन्दिर पर सेना द्वारा आक्रमण करने की नौबत ही नहीं आती। इस विषय में शासन की बांटो फिर राज करो नीति के कारण भिण्डरा वाले ने एक असंतुष्ट अवकाश प्राप्त अत्यन्त कुशल और अनुभवी सिख जेनरल शाहबेग सिंह की सहायता से स्वर्ण मन्दिर को एक अभेद्य दुर्ग बना दिया। वहाँ असंख्य आधुनिक हथियार भारत के शत्रु देशों से लाकर जमा कर लिये। इन हथियारों की खरीद के लिये पंजाब के धनाढ्य हिन्दुओं से धन जुटाया गया। गुरुद्वारों की करोड़ों रुपयों की आमदनी का दुरूपयोग भी इस कार्य के लिये किया गया। पाकिस्तान ने जो सदैव भारत को निर्बल करने के अवसर की तलाश में रहता है, पंजाब के सिरफिरे बेरोज़गार युवकों को आतंकवाद के प्रशिक्षण द्वारा और दूसरे

प्रकार की सहायता की।

अन्ततः स्वर्ण मन्दिर को मुक्त कराने के लिये सेना को वहाँ भेजना पड़ा। जिसके फलस्वरूप साधारण सिखों में भी जिन्हें तथ्यों का पता नहीं था और जो जनरैल सिंह भिण्डरवाले को केवल एक संत सिक्ख युवक की दृष्टि से देखते थे और उसके द्वारा स्वर्ण मन्दिर में की गयी अधार्मिक गतिविधियों से परिचित नहीं थे कांग्रेसी शासन के विरुद्ध जिसे वह हिन्दू शासन समझते थे आक्रोश उभर पड़ा।

जेनरल अरोड़ा का कहना है कि "स्वर्ण मन्दिर से आतंकवादियों को निकालने के लिये उस विषम परिस्थिति में भी दूसरे उपाय हो सकते थो जिनसे सिखों को उतनी पीड़ा न होती जितनी स्वर्ण मन्दिर पर आक्रमण के कारण हुई।

"स्वर्ण मंदिर की घटना से पहले सिख समुदाय की विशिष्ट छबि यह थी कि अल्पसंख्यक समाज होते हुये भी कुछ गिने चुने लोगों को छोड़ कर उन्होंने कभी अपने को राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग अनुभव नहीं किया। भारत के दूसरे सभी समुदायों के साथ वह मिल जुल कर रहते रहे थे। यह तथ्य कि उनका मत अलग था अथवा वह दूसरों से अलग थलग दीखते थे (उनकी इस राष्ट्रीय भावना में) कभी आड़े नहीं आया। किन्तु अब (ब्लू स्टार आपरेशन के बाद) वह स्थिति नहीं रही। यह बात सिखों के लिये भी और राष्ट्रीय एकता के लिये भी दुर्भाग्पूर्ण है।"[५३]

इन्दिरा गाँधी के इस कृत्य से क्षुब्ध उनके दो सिख अंगरक्षकों ने उन्हें गोलियों से भून दिया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इन्दिरा के प्रशंसक और सहयोगी कुछ काँग्रेस नेताओं ने असामाजिक तत्वों को साथ लेकर सिखों पर आक्रमण कर दिया। कहा जाता है कि अकेले दिल्ली में ही २००० सिखों का वध किया गया। उनके घर और दुकानें लूट ली गयीं। सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मोहल्ले के हिन्दुओं ने इन दंगों में कोई भाग नहीं लिया और अनेक स्थानों पर सिखों के बचाने के प्रयास किये।

इन अत्याचारों का नेतृत्व करने वाले काँग्रेसियों पर कार्यवाही करने की सिखों की माँग पर उनके पुत्र राजीव गाँधी ने उदासीनता बरती। फलस्वरूप भारत के शताब्दियों से अविभाज्य चले आ रहे हिन्दू और सिखों के संगठित समाज में एक चौड़ी खाई पैदा हो गयी। अलगाववादियों को अपने दुष्प्रचार के लिये एक महत्वपूर्ण हथियार मिल गया। पंजाब के आतंकवादियों ने पाकिस्तान से सहायता लेकर स्वतंत्र खालिस्तान बनाने के लिये गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। वह काश्मीर में मुसलमान आतंकवादियों से भी सांठ गांठ करने लगे। उनके कल के घोर शत्रु उनके मित्र बन गये।

अलग सिखिस्तान की माँग करने वाले लोग यह नहीं समझते कि अपने यहाँ से हिन्दू और सिखों का सफाया करने वाला पाकिस्तान भारत के विरुद्ध उनकी सहायता सिखों के प्रति प्रेम के कारण नहीं करता है। यदि ऐसा ही है तो ननकाना साहब इत्यादि सिखों के पूज्य पाकिस्तानी क्षेत्र उन्हें सौंप कर सिखिस्तान की माँग करे। परन्तु उसका वास्तविक ध्येय तो सिखों और हिन्दुओं को लड़ा कर भारत को इस्लामिस्तान बनाने

और इस प्रकार इस्लाम के विश्वव्यापी ध्येय को पूरा करना है।

हिन्दू समाज का अगड़ों पिछड़ों में विघटन

हिन्दू समाज के विघटन को गति देने वाले दूसरे हिन्दू महापुरुष थे विश्वनाथ प्रताप सिंह। उन्होंने जहाँ हिन्दू समाज में अगड़ों पिछड़ों का विष बोया वहाँ मुस्लिम तुष्टीकरण के नये कीर्तिमान स्थापित किये। कुल मिलाकर काँग्रेस की भाँति उनका ध्येय भी था मुसलमानों और पिछड़ी जातियों का वोट बैंक बनाकर अपने पक्ष में उपयोग करना।

जब विश्वनाथ प्रताप सिंह तथाकथित घोर साम्प्रदायिक भारतीय जनता पार्टी के सहयोग से राजीव गाँधी को हराकर प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने दो निर्णय लिये जो भारत के इस्लामीकरण के इतिहास में सदैव स्मरण किये जायेंगे। एक निर्णय जो उन्होंने ऐतिहासिक लाल किले की प्राचीर से घोषित किया वह था इस्लाम के पैगम्बर मौहम्मद साहब के जन्मदिन की सार्वजनिक छुट्टी और दूसरा था पिछड़ी हिन्दू जातियों के लिये आरक्षण।

भारत में छुट्टियों की कमी नहीं है। इसलिये मौहम्मद साहब के जन्म दिन की एक और छुट्टी बढ़ा देने में कोई विशेष बात नहीं है। परन्तु १५ अगस्त के महत्वपूर्ण अवसर पर इस साधारण सी घोषणा को लाल किले से करने का ख़ास मक़सद मुसलमानों को एक विशेष संदेश देना थाः "हम तुम्हारा विशेष ध्यान रखने के लिये प्रधानमंत्री बने हैं।" देश ने इसी रूप में इस संदेश को लिया भी। यही घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा १५ अगस्त को राष्ट्र के नाम संदेश के अवसर पर न कर यदि भारत सरकार के किसी उप सचिव के हस्ताक्षरों से परम्परागत रीति के अनुसार गजट में छपवा दी जाती तो इस पर किसी का ध्यान न जाता। किन्तु इससे मुसलमानों को भारत के प्रधानमंत्री का वह संकेत भी प्राप्त न होता जो वह उनको देना चाहते थे।

विश्वनाथ प्रताप सिंह पुराने कांग्रेसी है। मुसलमानों को अपना वोट बैंक बनाने की उनकी यह आकांक्षा नयी नहीं थी। जब वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे पायनियर लखनऊ के कार्यालय में कार्य करने वाले एक मुस्लिम उप सम्पादक का कत्ल हो गया था। पत्रकारिता जगत में इन महाशय का कोई विशिष्ट स्थान नहीं था। कुछ ही लोगों ने उनका नाम सुना होगा। उस समय भी किसी ने यह संदेह व्यक्त नहीं किया था कि उनकी पत्रकारिता से रुष्ट किसी व्यक्ति ने उनका वध किया है। उस समय तक जो चर्चा थी वह यही थी कि वध का सम्बन्ध उनकी किसी परिचित अथवा रिश्तेदार लड़की से था।

किन्तु मुख्यमंत्री ने देर नहीं लगायी। उस समय के समाचार पत्रों के अनुसार वह स्वयं मृत पत्रकार के निवास स्थान पर गये और एक बड़ी धनराशि सहायता के रूप में सार्वजनिक कोष से मृत व्यक्ति के परिवारजनों को दे आये। बाद में इन उप सम्पादक की मेज़ की दराज़ से अनेक सुन्दर लड़कियों के चित्र बरामद हुये और कम से कम न्यायालय में यह तो कभी कहा नहीं गया कि वध का सम्बन्ध उनकी पत्रकारिता से था।

प्रधानमंत्री बनने से पहले विश्वनाथ प्रताप सिंह जामा मस्जिद देहली के इमाम

बुखारी और लखनऊ के मदरसे नदवतुल उलेमा के विश्व विख्यात धार्मिक विद्वान प्रबन्धक सयद अबुल हसन अली नदवी (अली मियाँ) पर हाजिरी देते रहते थे। प्रधानमंत्री होने के पश्चात उन्होंने जामा मस्जिद देहली को एक बड़ी राशि दान में दी थी। मुसलमानों को तुष्ट करने के इस प्रकार के प्रयास उस समय भी समाचार पत्रों में चर्चा के विषय बने रहे।

इसके काफी पश्चात जब वह प्रधानमंत्री नहीं रहे तब भी वह इन कट्टरवादी मुस्लिम नेताओं की हाजिरी बजाते रहे। दैनिक जागरण लखनऊ ने अपने ९-३-९६ के अंक में यह समाचार प्रकाशित किया : "ज्यों ज्यों चुनाव नजदीक आते जा रहे हैं मुस्लिम वोटों के दृष्टिगत राजनीतिक दलों में मौलाना अली मियाँ की सर परस्ती हासिल करने की दौड़ तेज़ हो गयी है। पिछले दिनों भूतपूर्व प्रधानमंत्री नरसिंह राव और उसके बाद प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल मोतीलाल वोरा की अली मियाँ के साथ हुई एकान्त वार्ताओं के अभी राजनीतिक अर्थ तलाशे ही जा रहे थे कि पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के मौलाना से मुलाकात करने के लिये ११ मार्च को अचानक लखनऊ आने के कार्यक्रम ने राजनीतिक प्रेक्षकों को सोचने का एक और बिन्दु सौंप दिया।----" इसके पश्चात १२-३-९६ को दैनिक जागरण लखनऊ ने प्रथम पृष्ठ पर छापा कि "पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी.पी. सिंह ने अलीमियां के सामने फर्श पर बैठकर यह कहकर अप्रत्यक्ष रूप से मदद माँगी कि वह उन (अली मियाँ) के ख्वांबों का हिन्दुस्तान तामीर करना चाहते हैं।" इस भेंट में उन्होंने मुख्य रूप से साम्प्रदायिक ताकतों (भारतीय जनता पार्टी पढ़ें) के मुकाबले धर्मनिरपेक्ष ताकतों (जनता दल पढ़ें) को बलशाली बनाने के लिये अपनी कारगुजारियों को दोहराते हुए इस बात की कोशिश की कि मौलाना आने वाले चुनावों में उनकी सहायता करें लेकिन मौलाना चुप्पी साधे बैठे रहे।"

अलीमियां के सपनों के हिन्दुस्तान के विषय में पहले लिखा जा चुका हे। उन्होंने यह स्पष्ट करने में कोई कमी नहीं की है कि उनकी दृष्टि में महमूद गज़नवी, गौरी, बाबर और औरंगजेब का शासन काल भारत का स्वर्णयुग था। वह तो अकबर के शासन को भी भारत में कुफ्र को बढ़ावा देने वाला मान कर उसकी निन्दा करते हैं। किन्तु मुस्लिम तुष्टीकरण भारतीय राजनीति के लिये कोई नया शब्द नहीं था। विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के इस्लामीकरण की भूमिका में हिन्दू समाज को अगड़े पिछड़ों में बाँटने के लिये इतिहास में सदैव स्मरण किये जायेंगे जैसे उनके पूर्वज जयचन्द्र स्मरण किये जाते हैं (देखें वरिष्ठ पत्रकार जनार्दन ठाकुर की पुस्तक वी.पी. सिंह : "क्वेस्ट फार पावर", तथा वीर अर्जुन दिल्ली २९-९-९०)

उन्होंने वर्षों पुरानी धूल खाती मंडल कमीशन की विवादास्पद रिपोर्ट को आधार बनाकर कुछ तथाकथित पिछड़ी जातियों को शिक्षा संस्थानों में प्रवेश, सरकारी सेवाओं में नियुक्तियों और पदोन्नति में आरक्षण दे दिया। इसका फल यह हुआ कि मेडिकल, इंजीनियरिंग, रिसर्च इत्यादि जैसे प्राविधिक (तकनीकी) कालिजों में पाँच प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले प्रवेश पा गये और ७० प्रतिशत अंक पाने वाले वंचित हो गये। फिर जब

पदोन्नति में भी यही नीति अपनाई गई तो विभागों के अध्यक्ष पर भी ५ प्रतिशत अंक पाने वालों का पहुँचना और ७० प्रतिशत अंक पाने वालों का उनके अधीनस्थ रहना सुनिश्चित हो गया। इसके दुष्परिणामों को गिनाने की आवश्यकता नहीं। इस एक कृत्य ने हिन्दू समाज के लगातार विखण्डन का मार्ग खोल दिया। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दूसरों में घोर कटुता पैदा हुई जो दीवारों पर लिखे इस बहु प्रचारित नारे से प्रकट होती है: "तिलक तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार।"

इसके पश्चात पिछड़े वर्गों में भी यादवों, कुर्मियों, इत्यादियों में पारस्परिक कटुता बढ़ी।

वी.पी.सिंह की इस घोषणा के फलस्वूरप लगभग चालीस (४०) किशोरों ने आत्मदाह किया किन्तु वी.पी.सिंह का मन नहीं पसीजा। कोई भी राजनीतिक दल मण्डल रिपोर्ट का विरोध कर उसमें वर्णित पिछड़ी जातियों को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था इसलिये किसी ने भी इस राष्ट्रघाती नीति का विरोध नहीं किया।

कहने को तो वह समाजवाद और पिछड़ी जातियों के उत्थान के नाम पर किया गया था परन्तु क्या उनके पास उस घोर वैमनस्यजनक हिन्दू समाज विखण्डनकारी नीति के अतिरिक्त कोई दूसरा और कहीं अधिक प्रभावशाली विकल्प न था?

उन्हीं के दल के कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच.डी.देवगौड़ा ने उस राज्य में मुसलमानों के हितार्थ प्रत्येक जिले में उनके बच्चों की शिक्षा के लिये एक एक आवासीय विद्यालय खुलवाया था जिसमें उनके खाने, पीने, रहने, कपड़े, सबकी व्यवस्था सरकार द्वारा निःशुल्क की जाती थी और १९९६ में प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने इसी तर्ज पर मुस्लिम बच्चों और दलितों के बच्चों के लिये पूरे देश में आवासीय विद्यालय खोलने की घोषणा की। (दैनिक जागरण लखनऊ दि. ४-७-९६)

निश्चय ही यह योजना विश्वनाथ प्रताप सिंह की आरक्षण की योजना से बेहतर है। यह आरक्षण द्वारा साधारण (Mediocre) को श्रेष्ठता (Excellence) पर वरीयता नहीं देती अपितु श्रेष्ठता अर्जित करने का साधन और अवसर प्रदान करती है। परन्तु धर्म और जाति के आधार पर पृथककरण (Separatism) का भयानक दोष इसमें भी है। यह अंग्रेजों की उसी नीति की हूबहु कापी है जिसके द्वारा उन्होंने मुस्लिम बच्चों के लिये अलग मुस्लिम स्कूलों की स्थापना कर हिन्दू और मुसलमान बच्चों में स्कूल के क्लास रूम और खेल के मैदान में उत्पन्न होने वाली अन्तर धार्मिक मित्रता पर जानबूझकर कुठाराघात किया था। (देखें अध्याय-१५)

यदि माननीय देवगौड़ा की इस नीति को बिना धर्म और जाति को आधार बनाये एक निश्चित आर्थिक रेखा से नीचे रहने वाले सभी भारतीयों के बच्चों पर लागू किया जाता तो वह न केवल मुसलमान और दलितों का शुभाशीर्वाद अर्जित करते अपितु यह नई पीढ़ी में वास्तविक राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन देने वाला महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी पग होता। निश्चय ही निर्धारित आर्थिक रेखा से ऊपर वाले परिवारों का भले ही उनकी कोई

जाति व धर्म हो इस सुविधा से बाहर रखा जा सकता था।

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भूतकाल में कुछ अछूत जातियों के प्रति उनसे ऊपर की जातियों ने अमानवीय व्यवहार किया। किन्तु भूत काल में अपने को पिछड़ा और दलित कहकर शासन में भागीदारी की माँग करने वाली अनेक जातियाँ उस अमानवीय व्यवहार का पाप आज भी करती हैं। यदि ठाकुर और ब्राह्मण, चमार और भंगी कहे जाने वाले अछूतों पर अनेक अत्याचारों के दोषी है तो क्या वही अत्याचार पासी, लोध, कुर्मी, यादव, जाट, गूजर इत्यादि तथाकथित पिछड़ी जातियाँ उन पर नहीं करती रहीं हैं। कहीं कहीं इन जातियों का व्यवहार तो ब्राह्मणों ओर ठाकुरों के व्यवहार से भी अधिक क्रूर पाया जाता है।

हमें यहाँ यह दोहराने पर विवश होना पड़ता है कि इस भयंकर भेदभाव को पृथक्करण द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। पृथक शिक्षा संस्थान बनाने और नौकरियों इत्यादि में पृथक माप दण्ड निर्धारित करने से पृथक्करण की गति को बल ही मिलेगा यह सिद्धान्त और अनुभव दोनों से सिद्ध होता है।

इस खाई को दूर करने का उपाय वही है जो दयानन्द ने बताया था और आर्य समाज ने अपनाया था। शिक्षा संस्थानों को सही मानों में मत निरपेक्ष बनाना सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के बच्चों की सह शिक्षा, जहाँ सभी बच्चे एक ही समाज के सदस्य समझे जाँय न उन्हें अपनी जाति और वर्ण का पता हो न दूसरों का। शिक्षा का ध्येय कोरी साक्षरता अथवा नौकरी पाना न हो। उन्हें अपने देश के अतीत का सत्य इतिहास पढ़ाया जाय। उस वैदिक साहित्य से परिचय कराया जाय जिसके कारण भारत सभ्यता की चरम सीमा पर पहुँचा था। और उसके अवनति और गुलामी के कारणों और इतिहास से भी।

मुझे दुख है कि लोग हिन्दू-मुसलमान एकता को बेकार ही सिद्धान्त बना लेना चाहते हैं। जो सच्चाई है, उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। --- हिन्दू मुसलमान एकता का मतलब यह नहीं होना चाहिये कि हिन्दू सेवक है, गुलाम है। हर बार हिन्दू अपनी नम्रता, उदारता के कारण नुकसान में रहा है। इस समस्या का एक मात्र श्रेष्ठ हल यह है कि हिन्दुओं को संगठित होना चाहिये। इससे हिन्दू-मुसलमान एकता अपने आप ही अपनी निश्चित दिशा ढूंढ़ लेगी। अर्थात इस समस्या का समाधान अपने आप हो जाएगा। अन्यथा हमने कठिन समस्या हल कर ली है ऐसे मिथ्या संतोष के ख्याल में विश्रांति ढूँढ़ लेंगे, जब वास्तव में उस समस्या को हमने अलमारी पर चढ़ा दी होगी।

(श्री अरविंद के साथ- सायं वार्तालाप खण्ड 2-3 प्रकरण 3 प्रश्न 32 भावानुवाद)

२९

हिन्दू विघटन भारत के इस्लामीकरण में सहायक

मुसलमान राजनीतिज्ञों की दृष्टि सदैव ही हिन्दू समाज के पिछड़े और विशेष रूप से अछूत वर्ग पर रही है। याद कीजिये १९१९ में कोकनाडा काँग्रेस के अध्यक्ष पद से मौलाना मौहम्मद अली का यह सुझाव कि हिन्दू अछूतों को मुसलमान और हिन्दू आधे आधे बाँट लें। आधों का धर्मान्तरण मुसलमान मौलवियों को करने की छूट दे दी जाय और आधों को हिन्दू समाज अपने में समाहित कर ले। उस समय उनकी इच्छापूर्ति में आर्य समाज बाधा बन गया था। अब स्वयं हिन्दू नेताओं द्वारा ही इन जातियों को राजनीतिक लाभ का लोभ दिखाकर अलगाववाद उत्पन्न करने से यह जातियाँ मुख्य हिन्दू समाज से मुँह मोड़ने लगी हैं। मुस्लिम नेतृत्व को यह अवसर इन जातियों को लुभाने के लिये और अपना सहयोगी बनाने के लिये अनुकूल दिखाई देने लगा है। इसके साथ ही साथ खाड़ी देशों में अथाह धन और विदेशों में नौकरियों के लोभ से इनके धर्मान्तरण की गति भी तेज़ हो गयी है।

नई दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका इण्डिया टुड़े ने ३० नवम्बर १९८३ के अंक में एक लेख प्रकाशित किया था। उसमें कहा गया था कि कुवैत, संयुक्त अमीरात और सऊदी अरब १९७४ में तेल के मूल्य में वृद्धि के बाद खाड़ी के शेख तंत्र इस्लाम के प्रचार के लिये प्रत्यक्ष रूप से प्रतिमास २० करोड़ डालर (इस समय के ६४० करोड़ रुपये) व्यय करते हैं। इस प्रत्यक्ष धन के अतिरिक्त बहुत सा धन अप्रत्यक्ष रूप से धर्मान्तरण के लिये भारत में प्रवेश करता है।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों ने अपनी गोपनीय रिपोर्ट में जो रहस्योद्घाटन किये हैं उनके अनुसार सऊदी अरब सरकार के आश्रय में एक संस्था रबाइत-अल-आलम अल-इस्लामी गठित की गई है। जो भारत में तोड़ फोड़, साम्प्रदायिक उपद्रव तथा हरिजनों को मुस्लिम बनाने में सक्रिय कार्य कर रही है। इस कार्य में तेज़ी लाने के हेतु अनेक संगठन खड़े किये गये हैं, जिनमें से प्रमुख दल इस प्रकार हैं-[(५४)]

१- वर्ल्ड मस्जिद कान्फ्रैंस (मक्का)

इसका काम नई मस्जिदें बनाना, पुरानी तथा अनुपयोगी मस्जिदों का पुनर्निर्माण, और प्रत्येक मस्जिद में मकतब स्थापित करना है जिनका खर्चा वर्ल्ड मस्जिद कान्फ्रैंस द्वारा रबात से मिलता है। यह समिति भारत की कुख्यात जमाते इस्लामी संस्था के निर्देश में चलती है।

२- मोतमार अल-आलम-अल इस्लामी

इसके प्रमुख केन्द्र कराची और बम्बई हैं और इसका मुख्य कार्य हरिजनों को

मुसलमान बनाना है।

३- सलाहकार समिति

यह समिति संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में है। इसका मुख्य कार्य विशेषतः जमाते इस्लामी हिन्द को धन भेजना है।

४- व्लर्ड दीनबन्धु कान्फ्रेन्स

इसके प्रधान केन्द्र लन्दन तथा बम्बई में हैं। इस संस्था का उद्देश्य हरिजन तथा पिछड़ी जाति को इस्लाम धर्म में प्रवेश करने के लिये उत्साहित करना है।

१६ नवम्बर १९८२ को अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र स्टेट्समैन में केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने राज्यों को लालच अथवा अन्य गैर कानूनी तरीकों से धर्मान्तरण के विषय में कुछ आदेश भेजे कि उसको रोकने के लिये अपने अपने राज्य में कानून बनाये। किन्तु इसका फल कुछ नहीं निकला। केवल जो धर्मान्तरण सामूहिक रूप से और खुले तौर पर हो रहे थे वे चुपचाप होने लगे। उस समाचार में यह कहा गया था कि तमिलनाडु और दूसरे प्रान्तों में हरिजनों का लगातार धर्मान्तरण हो रहा है। जमायते इस्लामी, इण्डियन यूनियन मुस्लिम लीग, इसातुल इस्लाम सभा व तबलीगी जमात जैसी धर्म परिवर्तन में लगी संस्थायें हरिजनों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के कार्य में बड़ी भारी भूमिका निभा रही हैं।

इस सरकारी रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि मुसलमानों का वर्ष १९८१ में ५० हजार हरिजनों का इस्लाम धर्म में धर्मान्तरण करने का लक्ष्य था जिसमें से १७०० धर्मान्तरित हो भी चुके हैं। वर्ष १९८२ के अन्त तक यह संख्या दो लाख तक पहुँचने की आशा है। लन्दन स्थित इस्लामिक कल्चरल सेन्टर ने भारत के १२ करोड़ हरिजनों में से ८ करोड़ हरिजनों को खाड़ी के देशों एवम् दूसरे अलग देशों की विपुल आर्थिक सहायता से इस्लाम धर्म में धर्मान्तरण करने की योजना बनाई है। उनका उद्देश्य यह है कि अगले दशक में मुस्लिम जनसंख्या आठ करोड़ से बढ़ाकर बीस करोड़ कर ली जाय। इस प्रकार हरिजनों को हिन्दू समाज से तोड़कर इस्लाम में धर्मान्तरित करने का एक बहुत नियोजित कार्य विदेशी धन की सहायता से बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इस श्रेणी के लोग जितना ही हिन्दू मुख्य धारा से विमुख होंगे उतनी ही इस देश के इस्लामीकरण की गति तेज होगी।

हिन्दू समाज की इन उपेक्षित जातियों और मुसलमानों के सम्मिलित अनेक संघटन और फोरम बनाये जा रहे हैं। इनका ध्येय, स्पष्टतया दलित समाज को मुख्य हिन्दू समाज से तोड़कर भारत को दारुल इस्लाम बनाना है। उनका नारा हैः हरिजन मुस्लिम भाई भाई। हिन्दू जाति कहाँ से आई।

कहने को तो सब संगठनों और मंचों का उद्देश्य समान रूप से अपने अधिकारों से वंचित मुसलमानों और हरिजनों को उनके अधिकार दिलाने के लिये संघर्ष करना है किन्तु जानकार लोग जानते हैं कि भारत के इस्लामीकरण के लिये पहले हरिजनों के वोट बैंक को बना कर सत्ता हस्तगत करना और फिर उसका उपयोग उनके धर्मान्तरण के लिये करना ही उनका वास्तविक उद्देश्य है।

पाञ्जन्य में २९-३-९२ को एक रिपोर्ट के अनुसार "काश्मीरी उग्रवादी दक्षिण में भी पैर पसारने लगे हैं। उग्रवादी संगठन हिजबुल्लाह व सुन्नी टाइगर की खतरनाक गतिविधियाँ तमिलनाडु में फैलने लगी है। सुन्नी टाइगर संगठन की दो पत्रिकायें माध्यम (साप्ताहिक) व सैसिंग (मासिक) प्रकाशित होती हैं। हारिश (पुत्र अहमद, पी.पी.हाउस, काविलकम पन्नीयंकारा आक्सम गाँव), हिजबुल्ला संगठन का कार्यकर्ता है। उसके बयान के अनुसार इन दोनों उग्रवादी संगठनों द्वारा सैकड़ों लोगों को शस्त्रों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। हारिश के अनुसार मुसलमानों की रक्षा के नाम पर अरब देशों से पैसा लिया जाता है। उसका कहना है कि हिन्दू हमारे लिये काफिर हैं और हम लोगों ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि हम भारत में इस्लामी ध्वज अवश्य फहरायेंगे। अब्दुल सलाम चौकिल हिजबुल्ला का स्थानीय नेता है वह कहता है कि समय आने पर हम दूसरे संगठनों से हाथ मिला सकते हैं। उसका कहना है "बहुजन समाज पार्टी के प्रान्तीय अध्यक्ष कारला सुकुमारन राजस्व कर्मचारी वी.प्रभाकरन, इंजीनियरिंग के छात्र, अम्बुजक्षन व दलित वायस के सम्पादक वी.टी.राजेशखरन इन संगठनों के वेतनभोगी कर्मचारी की तरह है। वे वही करते हैं जो उन्हें आदेश मिलता है। धर्मान्तरण व हरिजनों तथा पिछड़ों को शेष हिन्दू समाज से अलग करने के कार्य में हम उनका उपयोग करते हैं। फारुख कालेज के प्रोफेसर शादुल हमीद को धर्मान्तरण की जिम्मेदारी सौंपी गयी है। पिछले तीन वर्षों में काफी हिन्दुओं का धर्मान्तरण कराया गया। मैं दिल्ली में ६ मास रहा उस समय इमाम बुखारी व सिमरनजीत सिंह मान से भी मुलाकात हुई और सूचनायें प्राप्त कीं। हारिश के अनुसार कुड़वली में बम बनाये जाते रहे हैं जिनका प्रयोग चट्टानों को तोड़ने के लिये किया जाता है परन्तु ज़रूरत पड़ने पर अन्य उद्देश्यों के लिये भी उनका प्रयोग किया जा सकता है।

यह संस्थायें दलित हिन्दू जातियों को किस प्रकार मुख्य हिन्दू धारा से काटकर मुसलमान बनाने के लिये कुत्सित प्रचार कर रही हैं। उसका एक उदाहरण है "अम्बेडकरवादियों के लिये इस्लामी संदेश" नामी एक पुस्तक। इसके लेखक हैं आर.एस.आदिल, एम.ए.,.एल.एल.बी. प्रकाशक दलित मुक्ति संगठन, ८१/५०, यमुना बिहार, दिल्ली-११००५३। इस पुस्तक के अनुसार इसके लेखक १९६१ से १९८१ तक बौद्ध धर्म से सम्बद्ध रहे हैं और १० वर्षों से लगातार भारतीय बौद्ध महासभा, दिल्ली प्रदेश की कार्यकारिणी, उसकी शाखाओं के संयोजक, महासचिव एवम् अध्यक्ष भी रहे हैं।

लगता है कि उसके उपरान्त वह बौद्ध धर्म त्यागकर मुसलमान हो गये। वह दावा करते हैं कि अम्बेडकरवादी केवल इस्लाम स्वीकार करने पर ही डा. अम्बेडकर द्वारा निरूपित एवम् निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में निश्चित रूप से सफल होंगे।

इसके बाद "हिन्दू धर्म ने दलित वर्ग को पशुओं से भी बदतर स्थिति में पहुँचा दिया है" जैसी उत्तेजनात्मक बयानबाज़ी के बाद वह पूछते हैं "परम्परागत उच्च वर्ग द्वारा दलितों पर बेकसूरी एवं बेरहमी से किये जा रहे अत्याचारों को कैसे रोका जाय?" इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये वह बाहर से आये आर्यों द्वारा अछूतों के पूर्वजों यहाँ के मूल निवासी

द्रविड़ों को हराकर उन्हें अछूत बनाने जैसा आरोप लगाते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि अब भी जब कि यह बात लगभग निश्चित रूप से सिद्ध हो चुकी है कि आर्य बाहर से भारत में नहीं आये अपितु भारत से ही यूरोपीय और एशियाई देशों में गये , छोटे-छोटे बच्चों की पुस्तकों द्वारा उन्हें यह झूठ अब भी पढ़ाया जाता है। वह झूँठ जो अंग्रेजों द्वारा हिन्दू समाज के वर्गों में अलगाववाद फैलाने की दृष्टि से प्रचारित किया गया था अब मुसमलानों द्वारा अपना लिया गया है।

आदिल साहब की पुस्तक का सारांश यह है कि यदि अम्बेडकर आज जीवित होते तो बौद्ध होने से कोई लाभ न देखकर मुसलमान ही होने का मार्ग सुझाते। अनेक प्रकार से पुस्तक में इसी बात पर बल दिया गया है।

आदिल साहब ने हिन्दुओं द्वारा हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों का बहुत रोना रोया है परन्तु मुसलमानों की इन जातियों को अछूत बनाने और उनके साथ व्यवहार में क्या भूमिका रही है , यह बात वह क्यूँ बताने लगे थे?

अछूत कहे जाने वाले लोगों के द्रविड़ मूल के आदि निवासी होने की बात हास्यास्पद सिद्ध हो चुकी है। स्वयं अम्बेडकर भी इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है कि यह अछूत जातियाँ हिन्दू समाज के ही वह लोग हैं जो बौद्ध हो गये और बाद में हिन्दू राज्य हो जाने पर उनको प्रताड़ित किया गया। किन्तु इन दोनों दृष्टिकोणों से भिन्न दृष्टिकोण और भी है। भंगी से अधिक अछूत कदाचित कोई जाति नहीं मानी जाती क्योंकि वह अनेकों अछूतों के लिये भी अछूत हैं। परन्तु भंगियों के कुछ गोत्र ब्राह्मणों, राजपूतों और खत्रियों से मिलते हैं जैसे कश्यप, चौहान, भाटिया इत्यादि। इनमें कुछ पठान उपजातियों के नाम भी आते हैं। फिर ये उच्च वर्ग के लोग भंगी कैसे बन गये? स्व. श्री ओमप्रकाश त्यागी ने जो संसद सदस्य भी रहे है अपनी पुस्तिका "विदेशी देनःअस्पृश्यता" (प्रकाशिक अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम संघ महर्षि दयानन्द भवन, राम लीला मैदान, नई दिल्ली) में बड़ी कुशलता से यह सिद्ध किया है कि मुस्लिम आक्रान्ताओं और शासकों ने युद्ध में पकड़े गुलाम हिन्दू स्त्री बच्चों से जो इस्लाम स्वीकारने को तैयार नहीं हुये बलात अपने शौचालय साफ करवाये। इन गुलामों में छोटे बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष सभी थे। यह वह लोग थे जिन्होंने यह पतित कार्य करना स्वीकार किया किन्तु इस्लाम स्वीकारने को तैयार नहीं हुये। हिन्दू भारत में पर्दा प्रथा न होने के कारण स्त्री पुरुष सभी शौच के लिये घरों से बाहर जाते थे। मोहनजोदड़ों इत्यादि नगरों में स्नान गृह तो मिले हैं परन्तु शौचालय नहीं मिले। पर्दानशीन मुस्लिम औरतों की शौचालय सुविधा के लिये ही मुस्लिम काल में भंगियों का उदय हुआ। यह सब वैदिक काल में कहीं नहीं पाया जाता। कहावत भी है "मार-मार कर भंगी बना दूँगा।"

यह तो हुई भंगी बनाने की बात। इन जातियों के साथ मुस्लिम पाकिस्तान में क्या व्यवहार किया गया उसकी झलक गाँधी जी के सचिव प्यारे लाल ने अपनी पुस्तक द लास्ट फेज में पाकिस्तान के प्रारम्भिक दिनों का वर्णन करते हुये दी है। "----हरिजनों की

दशा तो और भी करुणाजनक थी उन्हें कपड़ों पर अछूत होने का बिल्ला लगाना पड़ता था। बहाना यह था कि यह उनकी सुरक्षा के लिये है। हिन्दू धोबियों और भंगियों को कानून बनाकर सिन्ध छोड़कर जाने से रोक दिया गया था। अन्दर के क्षेत्रों में अछूतों के बलात धर्मपरिवर्तन के समाचार निरन्तर आ रहे थे।"(५५) डा. के.एस. लाल ने अपनी पुस्तक "द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रुल इन इंडिया" में मुसलमान शासकों द्वारा इन पिछड़े परन्तु धर्मनिष्ठ हिन्दुओं पर क्रूर अत्याचारों द्वारा गुलाम बनाये जाने का करुणाजनक विवरण दिया है।

परन्तु इस प्रकार के प्रापैगैण्डा साहित्य की अपनी उपयोगिता होती है। "झूठ को यदि बार बार सत्य कहकर दोहराया जाय तो जनता उसे अन्ततः सत्य स्वीकार कर लेती है।" जर्मनी के प्रौपेगैण्डा विशारद गोवेल्स का यह दर्शन अब सभी संसार स्वीकार करने लगा है। भारत में पेट्रो डालर्स के बल पर इस प्रकार प्रोपैगैन्डा पर करोड़ों रुपया व्यय हो रहा है परन्तु उसका विरोध करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। कदाचित आर्थिक दृष्टि से दिक्कतें हैं। दूसरा कारण यह भी है कि इस प्रकार के प्रयासों पर मुस्लिम समाज कड़ी दृष्टि रखता है और लेखकों प्रकाशकों को न्यायालय में घसीट ले जाता है। उसका कोई फल भले ही न निकलता हो परन्तु परेशानियों को देखते हुये लेखक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता सभी इस प्रकार के प्रयासों से निरुत्साहित तो होते ही हैं।

प्रोपैगैण्डा की बात चली तो एक नजर भारतीय प्रेस पर भी डालें जो लोकतंत्र का एक स्तम्भ समझा जाता है। "भारत में मदरसों, मकतवों की शिक्षा का माध्यम फ़ारसी लिपि में उर्दू होने के कारण उर्दू भारतीय और पाकिस्तानी मुस्लिम समाज की सम्पर्क भाषा हो गई है। उसके जैसी व्यापकता केवल अंग्रेजी को मिली है।" इस प्रकार भारत का उर्दू प्रेस दो एक अपवादों को छोड़कर मुस्लिम प्रेस है और पाठकों की संख्या की दृष्टि से यह काफी विशाल है। इसमें लगे अधिकांश लोग मदरसों और मकतवों से शिक्षा प्राप्त होते है। इस कारण यह प्रेस मुस्लिम कट्टरवाद और सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने ओर उसके हितों की रक्षा करने में अहम् भूमिका निभाता है। इसके विपरीत हिन्दी और अंग्रेजी प्रेस भी अधिकतर जाने अनजाने मुस्लिम प्रोपेगैण्डा में सहायक हो जाता है। हिन्दी और इंग्लिश प्रेस से जुड़े हुए लोग अधिकतर अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों और पश्चिमी सभ्यता संस्कृति में पले अथवा कम्यूनिस्ट लोग हैं। वह सभी "धर्मनिरपेक्ष" लोग हैं और इसलिये हिन्दू और हिन्दुत्व की बात करते हुये भय खा रहे हैं। उन्हें डर रहता है कि इस्लाम के विषय में अथवा विरोध में सत्य बात लिखने पर भी उन पर साम्प्रदायिकता का आरोप लग सकता है अथवा वह मुसीबत में पड़ सकते हैं।

इस प्रकार अस्सी करोड़ का हिन्दू समाज ही विश्व का इतना बड़ा समाज है जिसका न शासन है, न शिक्षा संचार माध्यम। यह तीनों ही हिन्दू की वैदिक संस्कृति, अस्मिता और आकांक्षाओं के प्रति अनभिज्ञ भी है और उदासीन भी। यदि झुकाव है भी तो अल्पसंख्यकों और विदेशी संस्कृति की ओर। ऐसा शक्तिहीन समाज कैसे जीवित रह सकता है।

३०

संख्या का महत्व

प्राचीन जातियों में उनके सदस्यों की संख्या का बड़ा महत्व था। उसी पर उनकी सैनिक शक्ति निर्भर करती थी। अब विज्ञान ने हथियारों के महत्व को बढ़ाकर रण में तो संख्या के महत्व को काफ़ी कम कर दिया है परन्तु लोकतंत्र प्रणाली को स्वीकार कर और "एक व्यक्ति एक वोट" का नियम बनाकर लोकतांत्रिक देशों में संख्या का महत्व फिर सर्वोपरि हो गया है। जिसकी वोट शक्ति होगी वही राज्य करेगा। इक़बाल के शब्दों में लोकतांत्रिक व्यवस्था में बंदे गिने जाते हैं तौले नहीं जाते।

संख्या की राजनीति सदैव ही इस्लाम के प्रचार प्रसार की मुख्य कड़ी रही है। मौहम्मद साहब ने कहा था कि कयामत के दिन उन्हें बड़े परिवार वाले मुसलमानों पर गर्व होगा। हमारे देखते देखते ही इस्लाम ने संख्या के बल पर भारत का विभाजन करवा दिया और शक्तिशाली कम्यूनिस्ट रूस का विघटन।

प्रो. डैनियल पाइप्स ने अपनी पुस्तक "इन द पाथ आफ गॉड" में लिखा है : १९७०–७९ के दशक में इस्लामी संगठनों को नया बल मिला। सोवियत रूस के प्रयासों के बावजूद---सोवियत मुसलमानों में (अलग) राष्ट्रवाद की भावना ने बहुत जोर पकड़ा। **इसका एक कारण सोवियत जन्मदर से मुस्लिम जन्मदर का तीन गुना होना** है। इससे मुसलमानों में अपने भविष्य के प्रति विश्वास जगा है। बेनिंगसन का विचार है कि मुसलमानों द्वारा अपनाई गई वर्तमान शान्ति नीति अस्थायी है। इसका कारण यह है कि इस समय विद्रोह उभरता दिखाई नहीं देता और मुसलमान शान्त हैं-----यह दृष्टिकोण और व्यवहार उस काल के लिये उपयुक्त होता है जब इस्लाम काफिरों के विरुद्ध अगली पारी के युद्ध के लिये बल संचय कर रहा होता है।"(पृ. २६९)

उपरोक्त विचार १९८३ में प्रकट किये गये थे ओर उनकी सत्यता को १९९० में प्रारम्भ हुये अजरबेज़ान में मुस्लिम विद्रोह तथा उसके पश्चात् रूस के विघटन ने सिद्ध कर दिया। मध्य एशिया के मुस्लिम राज्य केवल ७० वर्ष के अन्दर सोवियत रूस को खण्डित कर स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो गये।

हिन्दुओं ने भले ही इस तथ्य की उपेक्षा की हो और अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिये उसका कुछ उपाय न किया हो भारतीय मुसलमान संख्या के इस महत्व को भली भाँति जानते हैं। मुस्लिम दृष्टिकोण को उजागर करने वाली उर्दू पत्रिका रैडियंस ने १९५१–६० की दशाब्दी की जनगणना के विषय में लिखा था : "पिछले १० वर्षों में भारत में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा ४ प्रतिशत अधिक बढ़ी है। इसलिये मुसलमानों को अपने भविष्य के बारे में निराश नहीं होना चाहिये।"(५६)

हामिद दलवाई मुस्लिम नेतृत्व की संख्या की राजनीति के विषय में अपनी पुस्तक मुस्लिम पॉलिटिक्स इन सेक्युलर इण्डिया में लिखते हैं : "मुस्लिम नेता अपने तरीके से मुसलमानों के साथ इस अन्याय को (कि मुसलमान भारत में अल्पसंख्यक हैं) दूर करने का उपाय कर रहे हैं। एक उपाय तो पाकिस्तान और बांग्लादेश से आये घुसपैठियों को भारतीय नागरिकता दिलाना है। दूसरा परिवार नियोजन का विरोध करना है।"(५२)

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने साफ़ साफ़ कहा : "हिन्दू हमें अल्पसंख्यक बनाकर नहीं रख सकते। कनाडा का इतिहास स्मरण करें। क्यूबेक में क्या हुआ? वहाँ के अंग्रेजी मूल के ईसाई प्रोटेस्टेन्ट है और परिवारों को सीमित रखते हैं। फ्रेन्च मूल के ईसाई कैथॉलिक हैं और परिवारों को सीमित नहीं रखते। फलस्वरूप कैथॉलिक्स संख्या की दौड़ में प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों से आगे निकल गये और इस प्रकार अपने अधिकारों को सुरक्षित करने में सफल हो गये हैं। हम भी उनके उदाहरण का अनुसरण करेंगे। यदि आज नहीं तो ५० वर्ष बाद अथवा १०० वर्ष बाद अन्ततः यह देश इस्लामी बाढ़ में डूब ही जायगा। हमारा धर्म परिवार नियोजन की अनुमति नहीं देता और हमें (पंथ निरपेक्ष भारत में) अपने धर्म के पालन की स्वंतत्रता मिलनी ही चाहिये।"(५७)

संख्या की इस दौड़ में मुसलमान सदैव ही हिन्दुओं से आगे रहे हैं। निम्न तालिका देखें।

	१८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१	१९३१	१९४१
हिन्दू प्रतिशत	७५.०९	७४.२४	७२.८७	७१.६८	७०.७३	७०.६	६९.४६
मुसलमान प्रतिशत	१९.९७	२०.४१	२१.८८	२२.३९	२३.२३	२३.४९	२४.२८

१९६१ से १९९१ तक के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। देखे निम्न तालिका :

हिन्दू जनसंख्या मुस्लिम जनसंख्या पिछले १० वर्ष में जनसंख्या की प्रतिशत बढ़ोत्तरी

	हिन्दू	मुसलमान	हिन्दू	मुसलमान	
१९६१	३६६५०१२६७	४६९३७९१			
१९७१	४५३४३६६३०	६१४१८२६९	२३.७१	३०.९१	
१९८१	५४९७७९४८०	७५५१२४३९	२१.२४	२२.९	(विश्वसनीय नही)
१९९१	६७३५९९४२८	९५२२२८५३	२२.५१	२६.१०	

१९९१ आते आते मुसलमान जनसंख्या की बढ़त दर हिन्दुओं से सवा गुनी हो गयी है। रूस में यह रफ्तार दूसरे रूसियों से तीन गुना थी। लगता है रफ्तार २००१ आते आते हिन्दुओं में बढ़ते परिवार नियोजन के कारण भारत में भी वही स्थिति आ जायगी। अथवा कदाचित उससे भी आगे बढ़ जाय।

यहाँ यह बता देना भी प्रासंगिक होगा कि उपरोक्त स्थिति सम्पूर्ण भारत की औसत स्थिति है। कुछ क्षेत्रों में मुस्लिम जनसंख्या की यह बढ़ोत्तरी इस औसत से कहीं अधिक है। ऐसा लगता है कि कुछ संवेदनशील स्थानों में जैसे चण्डीगढ़ और दिल्ली में तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में जैसे पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम और राजस्थान इत्यादि के सीमावर्ती क्षेत्रों में यह बढ़ोत्तरी ढाई गुने से भी अधिक है। राज्यवार १९९१ के आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण इस पर निश्चित रूप से लिखना ठीक न होगा।

दूसरी बात यह है कि यह बढ़ोत्तरी केवल जन्मदर के कारण नहीं है। बड़ी संख्या में बांग्लादेश और पाकिस्तान से घुसपैठ भी इसका कारण है। पूरे भारत में कितने घुसपैठिया हैं इसका कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं है परन्तु इनकी संख्या २ करोड़ बतायी जाती है जो सचमुच ही एक चिन्ताजनक स्थिति है। इससे भी अधिक चिन्ताजनक यह है कि धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाले भारत के शासन को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। ऐसे भी तथ्य प्रकाश में आये हैं जिनसे लगता है कि अपने को धर्मनिरपेक्ष कहने वाले राजनीतिक दल इन घुसपैठियों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। उनको भारत में बस जाने में सहायता दे रहे हैं क्योंकि इस भाँति वह इन लोगों का अपना अलग वोट बैंक तैयार कर रहे हैं।

वाशिंगटन की पी.टी.आई. की एक रिपोर्ट के अनुसार "बांग्लादेश द्वारा अपनी आबादी पर कोई रोक न लगाने के कारण भारत के सीमावर्ती इलाकों में उस देश से भारी घुसपैठ हुई है जिसके कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में तनाव और हिंसा बढ़ी है। अमेरिकन एशोसियेशन फार दि एडवान्समेन्ट आफ साइन्स और कनाडा के यूनिवर्सिटी कालेज टारेन्टों द्वारा किये गये एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि बांग्लादेश में अनाप सनाप आबादी बढ़ने के कारण लगभग २ करोड़ शरणार्थी और उनके परिवार सदस्य गैर कानूनी ढंग से भारत में आ घुसे हैं। इस अध्ययन से जुड़े विद्वान टामस होम डिक्सन और वलेरी परसीवल का कहना है कि भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्रों में इन शरणार्थियों के आने से वहाँ की कृषि भूमि, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति में फेरबदल होने के कारण धार्मिक और जातीय सम्प्रदायों में कटुता उत्पन्न हुई। आसाम में यह बंगाली घुसपैठिये एक राजनीतिक और आर्थिक बल के रूप में उभर रहे हैं। उन्होंने उत्तम कृषि योग्य भूमि खरीद ली है। इनके विरोध में विद्यार्थियों के नेतृत्व में आन्दोलन भी हुये हैं जिसके कारण हिंसात्मक घटनायें हुई हैं। इस अध्ययन का कहना है कि इन घुसपैठियों से भारत में राष्ट्र के अन्दर एक छोटा राष्ट्र बन गया है जिसकी आबादी आस्ट्रेलिया की आबादी से अधिक है और तमाम धार्मिक और आर्थिक समीकरण गड़बड़ा गये हैं। भारतीय खुफिया रिपोर्टों से जाहिर होता है कि घुसपैठिये भारत बांग्लादेश और भारत पाकिस्तान सीमाओं पर स्मगलिंग, अन्तर्देशीय

हिंसा और आतंकवादियों को संवदेनशील सूचना उपलब्ध कराने में रत हैं।

स्मरण रहे कि अनेक घुसपैठिया वीसा लेकर भारत में प्रवेश करते हैं और फिर उनका पता नहीं लगता कि कहाँ गये। भारत स्थित अपने रिश्तेदारों और सिद्धान्तहीन स्वार्थी नेताओं के प्रभाव से उनके राशनकार्ड बन जाते हैं और फिर मतदाता सूची में उनका नाम आ जाता है।

इन परिस्थितियों के होते शासन से यह आशा करना स्वाभाविक है कि इन को ढूँढ़ ढूँढ कर देश से बाहर निकाला जाय। भविष्य में पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों पर कड़ी नज़र रखी जाय। हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी नागरिकों में समन्वय बनाने की झूठी आशाओं पर निर्भर न होकर इस विषय में सावधानी बरतने के स्थान पर ढील न बरती जाय।

दिनांक २–७–९६ के टाइम्स ऑफ इण्डिया लखनऊ के अनुसार विदेशमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने घोषणा की है कि पाकिस्तान में भारतीय हाई कमीशन पाकिस्तानी नागरिकों को भारत आने के लिये अधिक से अधिक वीसा जारी करेगा। भारतीय मिशन इस प्रकार के लगभग १५० से २०० वीजा प्रतिदिन जारी करता है अर्थात ६००० वीसा प्रतिमाह और ७२००० प्रतिवर्ष। विदेश मंत्री की घोषणा के बाद यह संख्या एक–डेढ़ लाख वीसा प्रतिवर्ष हो सकती है। बांग्लादेश से आने वाले और गैर कानूनी ढंग से बिना वीसा आने वाले लोग इसके अतिरिक्त हैं। अभी तक का अनुभव बताता है कि अनेक भारत आने वाले पाकिस्तानी फिर वापिस नहीं जाते। इसलिये भारत आने के लिये वीसा देने में कड़ाई बरतने के स्थान पर ढील देना कहाँ तक उचित है? पश्चिमी देशों द्वारा बरती गई सावधानी अनुकरणीय हैं। आधिकारिक रूप में न सही पंजाब और काश्मीर में आतंकवाद को बढ़ावा देने के कारण पाकिस्तान "शत्रु देश" है। शत्रु देश से आने वाले उसके नागरिकों को देश में घुसने देना कहाँ की बुद्धिमानी है?

जनसंख्या और चुनाव के समीकरण

जनतंत्र में संख्या का महत्व तो है परन्तु वह अकेली महत्वपूर्ण नहीं है। उसके साथ साथ दो दूसरी बातें भी महत्वपूर्ण हैं। वह है (१) राजनीतिक बोध (२) चुनाव में अपने वोट का प्रयोग।

जहाँ तक राजनीतिक बोध का प्रश्न है कि उस पर हम पहले ही काफी लिख चुके हैं। मुस्लिम समाज में हिन्दू समाज की अपेक्षा राजनीतिक बोध कहीं अधिक है यह बात सभी स्वीकार करेंगे। कारण है इस्लाम में राजनीति को धर्म का महत्वपूर्ण अंग मानना और उसी के अनुसार अपने बच्चों को शिक्षा देना और आचरण करना। हिन्दू अपने भौतिक लाभ को दृष्टि में रखकर ही अपने वोट का उपयोग करता है। कुछ पढ़े लिखे लोगों को छोड़कर वोट देते समय वह यह नहीं सोचता कि जिस व्यक्ति को वोट देने जा रहा है, चुने जाने पर वह हिन्दू भारत का शुभ चिन्तक होगा या नहीं? कदाचित उपयुक्त शिक्षा के अभाव में वह

ऐसा सोच भी नहीं सकता। इसके विपरीत मुसलमान वोटर की प्राथमिकता ऐसे प्रत्याशी को वोट देने की होती है जो इस्लाम और मुसलमानों का हिमायती हो।यदि मुसलमान प्रत्याशी न हो अथवा इतना निर्बल हो कि उसकी जीत की सम्भावना न हो तो वह उस हिन्दू प्रत्याशी को वोट देता है जो हिन्दुत्ववादी प्रत्याशी को हराने की स्थिति में हो।

इस पर उचित निर्णय लेने में उसके परिवार की धर्मनिष्ठा, और मदरसों मकतबों की शिक्षा के साथ-साथ इस्लाम के प्रति समर्पित नेतृत्व उलेमा, इमाम, मौलवी, इत्यादि उनकी सहायता करते हैं। फलस्वरूप एक सामूहिक निर्णय लेने के पश्चात अधिकांश मुसलमान अनुशासन बद्ध तरीके से अपने थोक वोट का उपयोग अपने निजी स्वार्थ के लिये न कर इस्लाम के लाभ के लिये करते हैं।

हिन्दू मुसलमानों से संख्या में पाँच गुने अवश्य है किन्तु उनके आधिक्य का राजनीतिक लाभ उनको नहीं मिल पाता। जहाँ लगभग सभी मुसलमान वोट डालने जाने का प्रयास करते हैं हिन्दू संख्या का एक बड़ा भाग अपने वोट का उपयोग नहीं करता। दूसरी बात यह है कि राजनीतिक जागरुकता के अभाव में और कोई प्रभावी हिंदू धार्मिक/राजनीतिक नेतृत्व न होने के कारण वह अपने वोट का प्रभावी ढंग से उपयोग उन प्रत्याशियों को जिताने में करते हैं जिनसे इस्लाम की आकांक्षाओं को पूर्ण होने में विशेष सहायता मिलती है।

अधिकांश हिन्दुओं को अपने धर्म का कोई ज्ञान नहीं है। इसलिये उन्हें ऐसी शिक्षा में कोई आपत्ति नहीं होती जो उनके धर्म-विरुद्ध है। परन्तु मुसलमान लाज़िमी तौर से अपने मज़हब के सिद्धान्तों से परिचित होते हैं और अपने जीवन को उन्हीं के अनुसार ढालते हैं। इस कारण वह ऐसी शिक्षा से बचते हैं जो उन सिद्धाँतों के विरुद्ध हों।

(सर सयद अहमद खाँ : एम आर ए बेग द्वारा उनकी पुस्तक द मुस्लिम डिलेमा इन इंडिया में उद्धृत - पृ. 50)

३१

ज्वलंत राष्ट्र बोध का कमाल

एक दृढ़ संकल्पयुक्त, जागरुक, समर्पित राष्ट्रवादी नेतृत्व क्या कर सकता है यह भारत, इजरायल, जापान, दक्षिण कोरिया और मलाया की निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका से स्पष्ट हो जायगा।

	भारत	इजरायल	जापान	दक्षिण कोरिया	मलेशिया (मलाया)
क्षेत्रफल (वर्गमील)	१३१०००९	७९९२	१४३७५०	३८२२१	१२७५८१
जनसंख्या	७७८५२००००	४१५००००	१२१४०००००	४३२८००००	१५६७७०००
धर्म	हिन्दू ८३ प्र. मुसलमान १० प्र.	यहूदी ८३ प्र. मुसलमान ११ प्र. ईसाई ६ प्र.	बौद्ध १० प्र.	बौद्ध ईसाई कन्फूसियन	मुसलमान ५० प्र. बौद्ध प्र. २६ प्र. ईसाई ४ प्र.
भाषा	हिन्दी, अंग्रेजी, १३ दूसरी भाषायें	हिब्रू और अरबी	जापानी	कोरियन	मलाया, चीनी, अँग्रेजी, तमिल
संभावित आयु	पुरुष ५२ वर्ष स्त्री ५३ वर्ष	पुरुष ७२ वर्ष स्त्री ७६ वर्ष	पुरुष ७४ वर्ष स्त्री ८० वर्ष	पुरुष ६४ वर्ष स्त्री ६९ वर्ष	पुरुष ६८ वर्ष स्त्री ७२ वर्ष
वार्षिक आमदनी प्रति व्यक्ति अमरीकन डालर्स में।	२१७	४९९०	९६८४	१५२८	१९७५

भारत १९४७ में स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के समय उसके पास ब्रिटिश शासन द्वारा कुशलतापूर्वक स्थापित पूर्ण राज्य तंत्र था। इजरायल का जन्म १९४८ में हुआ। उसके पास कुछ भी नहीं था। जापान का पुर्नजन्म १९४८ में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध में दो परमाणु बम झेलकर वह पूर्णतया नष्ट हो चुका था। मलाया १९५७ में स्वतंत्र हुआ। उसके भी दो मुख्य भाग एक दूसरे से ७०० मील की दूरी पर हैं। दक्षिण कोरिया, जापान, चाइना और उत्तर कोरिया से १९५३ में मुक्त हुआ। जापान और चीन के दासत्व और उत्तर कोरिया से

तीन वर्ष तक युद्ध के पश्चात १९५३ में उसकी हालत बहुत ख़राब थी। आज वहाँ विश्व के अग्रणी उद्योग स्थापित हैं। इज़रायल में संसार के सभी देशों से यहूदी आकर इकटठे हुये। उनकी भाषायें भिन्न-भिन्न थीं। पहनावे भिन्न थे और वह कुछ न कुछ अपने देश की संस्कृति से प्रभावित थे। फिर भी इज़रायलियों ने भूली बिसरी अपनी सांस्कृतिक भाषा हिब्रू को ही राज्य भाषा बनाया। सभी यहूदियों ने उसको अपना लिया। यदि भारत की तरह वह सभी अपनी अपनी मातृ भाषा को ही राज्य भाषा बनाने पर उतारु हो जाते तो वहाँ ३०-३२ राज्य भाषायें होती।

हिन्दू की अपनी अनभिज्ञता और स्वार्थ के कारण उसके शत्रुओं ने कहा कि भारत तो कभी एक राष्ट्र रहा ही नहीं, यहाँ तो विदेशों से काफिले आते रहे और हिन्दोस्तां बनता रहा और हिन्दुओं ने मान लिया। उन्होंने कहा कि आर्य एक विदेशी कौम थी जिन्होंने बाहर से आकर यहाँ के आदि द्रविड़ों को उत्तर भारत से दक्षिण में खदेड़ दिया और हिन्दुओं ने यह भी मान लिया। अब दक्षिण के हिन्दू उत्तर के हिन्दुओं को शत्रु दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने कहा रावण द्रविड़ था और राम आर्य था। कुछ ने यह भी मान लिया और राम के शत्रु हो गये। उन्होंने कहा अछूत और जनजातियाँ हिन्दू नहीं अलग कौमें हैं। यह भी मान लिया गया। कहा गया कि मुसलमान आक्रान्ता सुल्तान और बादशाह धर्मनिरपेक्ष थे उन्होंने असभ्य भारत को सभ्य बनाया। वह केवल गंगा जल ही पीते थे,हिन्दू मंदिरों को देखकर प्रसन्न होते थे और उनको दान देते थे और यह भी मान लिया गया। मान ही नहीं लिया गया शासन का सम्पूर्ण संचार मीडिया और शिक्षातंत्र इसी प्रचार कार्य में लग गया। कहा गया कि भारत में मुसलमानों की अलग कौमियत (नेशन) है। वह खुदा की पार्टी है और शेष सब शैतान की पार्टी है। उनकी संस्कृति मूर्खता से भरी पड़ी है। कोई भी विचार अथवा दर्शन जिसका स्रोत कुरान के बाहर है नितांत कुफ्र है। इस देश के झूठे धर्मों और मूर्खतापूर्ण संस्कृति को मिटाकर इस्लाम का वर्चस्व और शरियत शासन स्थापित करने का हमको दैवी आदेश है। इसलिये अपने बच्चों को इस की शिक्षा देने के लिये हमें अपने शिक्षा संस्थानों को स्वतंत्र रूप से चलाने की छूट होनी चाहिये। और हमने मान लिया। मान ही नहीं लिया उन्हें इस शुभ कार्य में हर प्रकार की सहायता भी दी।

हिन्दू का सीमेंट था केवल भारत प्रेम और भक्ति। वह उसको खण्डित होते नहीं देख सकते थे। स्वार्थी नेताओं ने उनकी इस भावुकता का लाभ उठाया। "हिन्दू राष्ट्र और राज्य की बात मत करों" वरना देश टूट जायगा। ऐसा कहकर वह हिन्दू के वोट, मुसलमानों को हिन्दू का भय दिखाकर उनका वोट, अछूतों और पिछड़ों को आरक्षण का लोभ दिखाकर उनका वोट वटोरते रहे और समाज विघटन कराते रहे। इन नेताओं ने अरबों रुपये की सम्पत्ति विदेशी बैंकों में जमा कर ली। जिन्होंने भुखमरी की दशा में राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया था वह भारत के नये मुगल बन गये। फलस्वरूप जहाँ शस्य श्यामला भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल २१७ डालर प्रति वर्ष है, दक्षिण कोरिया की १५२८, मलाया की १९७५, रेगिस्तानी इजरायल की ४९९० और पहाड़ी जापान की ९६८४ डालर है।

दक्षिण कोरिया, इज़रायल, जापान और मलाया के नेताओं ने कोरियन यहूदी, जापानी और मुस्लिम राष्ट्रवाद को समझा और परिपुष्ट किया। इन सभी देशों में लोकतंत्र है। किन्तु उन्होंने अपने किसी नागरिक को अथवा नागरिकों को इस बात की कभी अनुमति नहीं दी कि वह उनकी पृथ्वी पर बैठकर उसी देश को दारुल हर्ब (शत्रु स्थान अथवा युद्ध स्थल) घोषित करते, उस देश के कोरियन, यहूदी, जापानी अथवा मुसलमान चरित्र के अतिरिक्त उसका कोई दूसरा चरित्र बनाने के लिये प्रचार करें या करने दें और अपने बच्चों को उस प्रकार की शिक्षा देकर उत्साहित करते, जैसा मौलाना मदनी, अबुल कलाम आज़ाद इत्यादि करते रहे हैं। उन्होंने कभी इस बात की अनुमति नहीं दी कि कोरिया में कोरियन के, इज़रायल में यहूदियों के, जापान में बौद्धों के और मलाया में मुसलमानों के संगठित धर्म परिवर्तन की खुली छूट दी जाय। सब मिलाकर कहें तो इन देशों के नेतृत्व को राष्ट्र बोध है जिसका भारत में नितान्त अभाव है। राष्ट्र उनके वैयक्तिक और साम्प्रदायिक स्वार्थ के ऊपर है। संविधान सर्वोपरि है।

राष्ट्रीय हित और सम्मान सर्वोपरि

पुरानी बात है कि इज़रायल के कुछ खिलाड़ियों की म्युनिक के एक होटल में मुस्लिम आतंकवादियों ने हत्या कर दी। इज़रायल ने अपने ख़ुफिया विभाग को आदेश दिया कि हमलावरों में से प्रत्येक का भले ही संसार के किसी भी कोने में वह छिपा हो, वध कर दिया जाय। वर्ष दो वर्ष के भीतर ही लगभग सभी एक दर्जन आतंकवादियों की हत्या कर दी गई। इज़रायल ने कहा विश्व के किसी देश में किसी के द्वारा भी यदि किसी यहूदी को प्रताणित किया जाता है तो इज़रायल उसका प्रतिकार करना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझता है। उस प्रतिकार के करने में भले ही इज़रायल नष्ट हो जाय अथवा वह विश्व को भी नष्ट कर दे इसकी हम चिन्ता नहीं करेंगे। जर्मनी को यहूदियों पर किये गये अत्याचारों के लिये राष्ट्रीय माफी माँगनी पड़ी।

दक्षिणी कोरिया की लड़कियों से जापानी शासकों ने वेश्या वृत्ति करवाई। स्वतंत्र दक्षिणी कोरिया ने जापान से कोई भी सम्बन्ध रखने से इंकार कर दिया जब तक जापान इस अत्याचार के लिये राष्ट्रीय माफी न मांगे। और जापान ने क्षमा याचना की।

इसी प्रकार दक्षिणी कोरिया में जापानियों ने दक्षिण कोरिया के राजभवन के सामने उसके महत्व को कम करने के लिये एक सचिवालय निर्माण करवा दिया था। स्वतंत्र दक्षिण कोरिया की सरकार ने इस भव्य भवन को गिराकर दूसरा भवन बनाने का निश्चय किया है। इस नये भवन का अनुमानित मूल्य १२२० करोड़ रुपये बताया जाता है। जापानियों द्वारा बनाई गई इस भव्य इमारत को वह अपने राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक समझते हैं।

विभाजन के समय पाकिस्तान को वोट देने वाले लोगों के लिये तो स्वतंत्र भारत ने उदारता दिखाई किन्तु भारत के विभाजन के विरुद्ध वोट देने वाले उन हिंदू और बौद्धों

की रक्षा के लिये क्या उसने कभी कोई प्रभावी पग उठाया जो पाकिस्तान में रह गये थे? श्री प्रकाशक जी नवनिर्मित पाकिस्तान में हमारे पहले हाई कमिश्नर थे। उन्होंने अपनी पुस्तक "पाकिस्तान के प्रारम्भिक दिन" में जो लिखा है उससे काँग्रेस विचारधारा वाले नेताओं की मानसिकता को देखकर आश्चर्य होता है। वह लिखते हैं : "भारत से आये हुए मुसलमान नर-नारी कराची के स्थानीय विद्यालयों और अन्य संस्थानों के भवनों में भर गये थे। मैं उन्हें बीच बीच में देखने जाता था। वैधानिक दृष्टि से मैं उनके लिए अधिक उत्तरदायी था क्योंकि वे भारतीय थे। मेरा उत्तरदायित्व पाकिस्तान के हिन्दुओं के लिए नहीं था। क्योंकि उनकी सारी जिम्मेदारी पाकिस्तान के शासकों की थी।"(पृ.४५)

"------मेरे दूतावास में एक तार आया था कि कुछ सिख लोग अमुक रेल से ६ जनवरी को कराची पहुँच रहे हैं। मेरे एक सहायक ने तार लिया और अपनी जेब में रख लिया----यह सिख लोग दूसरे दिन आने वाले थे। यदि मुझे मालुम होता तो मैं कुछ प्रबन्ध करता। में तो एक दिन पहले ही लौटा था। जब मुझे सूचना ही नहीं दी गयी तो मैं क्या कर सकता था। यह सब सिख उतरे और सबकी निर्मम हत्या कर दी गयी। शायद इनकी संख्या ११७ थी। सिखों और मुसलमानों में उस समय विशेष रूप से बैर था। वे एक दूसरे को देख नहीं सकते थे।"(पृ. ६४-६५) —परिशिष्ट (१) भी देखें

काश्मीर से निकाले गये हिन्दू नागरिक चार पाँच साल बाद आज भी शरणार्थी शिविरों में पड़े हैं। काश्मीर में चरारे शरीफ के निर्माण पर करोड़ों रुपये व्यय करने का निर्णय करने वाला और बाबरी ढांचे के गिराये जाने पर हाय तौबा करने वाला हिन्दू शासन वहाँ ध्वस्त किये मन्दिरों के पुनर्निर्माण की बात सोच भी नहीं सकता है।

कुल मिला कर स्थिति यह है कि भारतीय मुसलमानों के हितों की रक्षा करने को तत्पर ३२ इस्लामी देश और हिन्दू भारत का शासन भी है। हिन्दुओं और विशेष रूप से मुस्लिम देशों के हिन्दुओं के हितों की रक्षा की आवाज उठाने वाला कोई देश भी नहीं है। हिन्दू भारत भी नहीं। काश्मीर के ब्राह्मण हो या लद्दाख के बौद्ध या बांग्ला देश के चकमा बौद्ध अथवा हिन्दू उनकी रक्षा करना तो दूर यू.एन.ओ. अथवा दूसरे विश्व संगठनों में हिन्दू भारत भी उनकी दुर्दशा पर विश्व का ध्यान आकर्षित करने का साहस नहीं करता। ऐसा राजनीतिक साहस विहीन समाज कब तक जीवित रह सकता है।

३२

देश की सुरक्षा का प्रश्न

याद करें मुस्लिम और ब्रिटिश काल का इतिहास। सभी इतिहासज्ञ इस बात पर सहमत है कि हिन्दू सेनाओं की मुस्लिम आकम्रणकारियों के विरुद्ध और हिन्दू/मुस्लिम सेनाओं की अंग्रेजों, फ्रांसीसियों, पुर्तगालियों इत्यादि के विरुद्ध युद्ध में पराजय के चार मुख्य कारण थे। पहला कारण विजयी सेना के पास आधुनिक और उत्तम हथियार और ट्रेनिंग (प्रशिक्षण)। दूसरा कारण भारत के समुद्र तट की अपर्याप्त सुरक्षा। तीसरा कारण था हिन्दू राजाओं में व्याप्त स्वार्थ और घोर पारस्परिक वैमनस्य के कारण उग्र राष्ट्रवादी राजनीतिक नेतृत्व का अभाव और चौथा कारण था घर में ही बैठे विभीषण। इस अध्याय में हम इनमें से प्रथम दो विषयों में ही देश की वर्तमान परिस्थिति पर दृष्टि डालेंगे। अंतिम दो पर पहले लिखा जा चुका है।

उत्तम हथियार और सीमाओं की सुरक्षा

स्वतंत्रता के बाद भारत की सुरक्षा क्षमता की पहली परीक्षा हुई १९६१–६२ में भारत चीन युद्ध के समय। जब भारतीय सेना को चीनियों के विरुद्ध आगे बढ़ने का आदेश दिया गया उसके पास निम्नलिखित सैनिक सामान की कमी थी: ६०,००० राइफिल, ७०० टैंक विरोधी तोपें २०० दो इंच मार्टर, इनमें इस्तेमाल होने वाली कारतूस, गोला बारुद इत्यादि, ५००० फील्ड रेडियो, सहस्त्रों मील लम्बी बिजली की केबिल, ३६,००० रेडियो बैटरी, १०००० एक टन ट्रक और १०००० तीन टन ट्रक। दो टैंक रेजिमेन्ट कार्यशील नहीं थे क्योंकि उनके पास टैंकों की मरम्मत के लिये पुर्ज़े नहीं थे। १४००० से १६००० फुट ऊँचाई पर याक के सिवा सामान ढोने का कोई साधन नहीं था और सेना के पास याक नहीं थे। राइफिलें आटोमेटिक न होकर वही पुरानी थीं। पहनने को कैनवेस के जूते थे।[५४] हमारी आयुध फैक्टरियाँ जिन्हें आयुध बनाने चाहिये थें घरेलू कार्य में काम आने वाली वस्तुयें बना रही थीं।

घोर शर्मनाक पराजय के पश्चात बहुत दबाव पड़ने पर ही प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने अपने साम्यवादी रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन से इस्तीफा दिलवाया। उस संकट की घड़ी में नेहरू को अपनी विदेश नीति की पराजय भी स्वीकार करनी पड़ी। उन्होंने कहा हमारा कोई मित्र नहीं है। अमरीका से सहायता माँगी गयी। राष्ट्रपति ने अन्तर्देशीय अमरीकी नीति को देखते हुये साम्यवादी चीन के विरुद्ध सहायता दी और नेहरू को कहा यह सत्य अहिंसा की बातें और भाई भाई के नारे तभी उपयुक्त होते हैं जब विपक्ष की ओर से भी उन पर उतनी ही ईमानदारी से आचरण किया जाय।

जवाहरलाल नेहरु के लिये यह बहुत बड़ा आघात था। देश के प्रति उनकी निष्ठा असंदिग्ध थी। वह जनतंत्र में भी दृढ़ विश्वास करते थे। उन्होंने अपनी भूल का परिमार्जन देश में आधुनिक सैनिक सामग्री बनाने के लिये उद्योगों को प्राथमिकता देकर किया। फलस्वरूप अगले दो पाकिस्तान-भारत युद्धों में भारत ने पाकिस्तानी सेनाओं को करारी पराजय दी। जवाहर लाल नेहरु के पश्चात कुछ समय तक लाल बहादुर शास्त्री और उसके पश्चात श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत अपनी सैनिक क्षमता बढ़ाता रहा। १९८४ में भारत ने परमाणु विस्फोट कर परमाणु युग में प्रवेश किया।

सड़क के मध्य चलने की नीति (Middle of the Road Policy)

भारतीय मानसिकता सदैव से सड़क के मध्य में चलने की रही है। असुविधाजनक तथ्यों से आँख चुराने के लिये यही मार्ग सुगम होता है। याद कीजिये जब १६ अप्रैल १९३२ को अंग्रेजी सरकार ने साम्प्रदायिक पंच निर्णय (काम्युनल एवार्ड) घोषित किया था तो काँग्रेस फिर वैसी ही दुर्गति में आ पड़ी थी जो उसके लिये कोई नई बात नहीं थी। एक ओर पंचनिर्णय के रूप में राष्ट्र की मूल एकता पर कुठाराघात करती हुई अत्याचारी, राष्ट्रविरोधी, साम्राज्यवादी पिपासा थी। दूसरी ओर मुस्लिम समर्थन के हाथ से निकल जाने की आशंका थी। संशय की स्थिति में उसने घोषणा की कि वह : पंचनिर्णय को "न तो स्वीकार करती है और न अस्वीकार।"[(५५)]

भारत के हिन्दू नेताओं की यह मानसिकता उनके शत्रु और मित्रों सभी को मालूम है। मौहम्मद असगर खाँ जो पाकिस्तानी/वायु सेना के अवकाश प्राप्त मार्शल थे अपनी पुस्तक "द फर्स्ट राउन्ड : इन्डो पाकिस्तान वार १९६५" में पृ-८४ पर लिखते हैं कि अमेरिका भारत की सड़क मध्य पर चलने की नीति से अत्यन्त क्षुब्ध था।

काँग्रेस की सड़क के मध्य चलने की यही नीति हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के विषय में रही। "दुर्भाग्यवश काँग्रेस ने कभी भी मुस्लिम अलगाववाद और आक्रामकता (के मूल भूत कारणों) को समझने की चेष्टा नहीं की। वह अंत तक इस झूठी आशा को संजोती रही कि किसी प्रकार, कभी, किसी घटनावश, साम्प्रदायिक समस्या का समाधान स्वयं हो जायगा।" (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया खण्ड-६, पृ.-८७२)

आज भी भारत की सभी राजनीतिक पार्टियाँ यही आशा संजोये हुये हैं। ६० वर्ष पहले अम्बेडकर ने गला फाड़ फाड़ कर कहा था कि "हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारण भौतिक नहीं हैं। उसके कारण आध्यात्मिक हैं। उनकी ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारधारायें एक दूसरे के विपरीत बहती हैं। राजनीतिक वैमनस्य तो उस विरोध की परछाई मात्र है---हिन्दू और मुसलमानों के बीच इस विरोध के स्थान पर एकता की आशा करना अस्वाभाविक है----दूसरे शब्दों में, इस्लाम कभी इस बात की इजाज़त नहीं दे सकता कि "एक सच्चा मुसलमान" भारत को अपनी मातृभूमि और हिन्दुओं को अपना रिश्ते नातेदार स्वीकार करे।"[(५६)]

इस ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विरोध की जड़ों को खोजने के स्थान पर प्रत्येक हिन्दू राजनीतिक दल मुस्लिम समुदाय को विभिन्न लालच और सुविधा देकर उनके वोटों के बल पर सत्ता छीनने और सत्ता में बने रहने के अवसर खोजता रहा है। राजनीतिक रूप से जाग्रत मुस्लिम नेतृत्व उन सुविधाओं को लेकर दूसरी अनेक सुविधाओं की माँग करता रहा है।

१९६५ के इस युद्ध में लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में भारत ने अपनी इस मध्य सड़क वाली नीति को त्याग कर जो सफलता प्राप्त की वह भविष्य में उसकी नीति निर्धारण में काफी सहायक सिद्ध हो सकती थी। किन्तु उनकी मृत्यु के कारण ऐसा नहीं हो पाया।

प्रथम परमाणु परीक्षण के पश्चात भारत फिर सड़क के मध्य में आ गया। उसने अपनी उपलब्धि का लाभ नहीं उठाया। परमाणु क्षमता का विकास कर परमाणु बम नहीं बनाये और पाकिस्तान को इतना समय मिल गया कि वह परमाणु क्षमता का विकास कर भारत के समकक्ष आ जाय अथवा उससे आगे निकल जाय। १२ वर्षों के इस लम्बे समय में परमाणु बम से लैस अमेरिका इत्यादि देशों मे यह धारणा ज़ोर पकड़ गयी कि अब दूसरे देशों को परमाणु बम नहीं बनाना चाहिये। १९९६ में स्थिति यह है कि भारत परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करे या न करे वह परमाणु बम बनाने की अथवा परीक्षण करने की स्थिति में नहीं है। राजनीति की असफलता के कारण भारत परमाणु बम बनाने में सक्षम होते हुये भी परमाणु शक्ति नहीं बन सका।

इसके विपरीत भारत से कहीं छोटे और परमाणु बम की दौड़ में कई वर्ष बाद शामिल होने वाले पाकिस्तान ने परमाणु बम बनाकर संग्रह कर लिये और अमेरिका फ्रांस और चीन इत्यादि देशों की सहायता से उनको ठिकानों पर गिराने के साधन भी उपलब्ध कर लिये।

६ दिसम्बर १९९२ को बाबरी ढाँचा गिराये जाने के पश्चात स्वदेश और विदेशों में मुस्लिम प्रतिक्रिया से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि मुस्लिम देश जिन्होंने पाकिस्तान, बांग्लादेश और काश्मीर में हिन्दू मन्दिर गिराये जाने और हिन्दू अल्पसंख्यकों पर अत्याचार किये जाने के विरोध में कभी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की वह किस प्रकार हिन्दुओं द्वारा एक विवादित ढाँचे को गिराये जाने पर भारत के विरुद्ध लाम बंद हो गये। भारत पाक युद्ध के अवसर पर इण्डोनेशिया इत्यादि कुछ मुस्लिम देशों की प्रतिक्रिया अन्यत्र दी जा चुकी है। ऐसी स्थिति में जब भारत चारों ओर से मुस्लिम देशों और उनके मित्रों से घिरा हुआ है उसको अपने सुरक्षाबलों और संसाधनों पर कितना बल देना चाहिये यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इन मुस्लिम देशों की तैयारियों पर समाचार पत्रों में जो छपता रहा है वही हिन्दुस्तान की हिन्दू सरकार की आँखें खोलने के लिये पर्याप्त होना चाहिये था। परन्तु जागते हुये को कौन जगा सकता है ?

१३–२–९१ को इण्डियन एक्सप्रेस में वाशिंगटन की एक रिपोर्ट के अनुसार वहाँ के मुसलमानों से अमरीका–ईराक युद्ध में अमरीकी सेना में भरती न होने की अपील की गयी। यह दूसरी बात है कि यदि यह अपील न भी की जाती तब भी अमेरिका मुस्लिम ईराक के

विरुद्ध मुस्लिम सैनिकों को भेजने की भूल कदाचित न करता। उसके समक्ष अफगानिस्तान में मुस्लिम रुसी सेनाओं के व्यवहार का कटु अनुभव था जिसमें मुस्लिम रूसी सेनायें अफगानिस्तान के मुस्लिम विद्रोहियों से लड़ने के स्थान पर अपने शस्त्रों समेत उनसे जा मिली थीं।

पायनियर १६-१-९२ के अनुसार अमरीका ने संदेश दिया कि पाकिस्तान के पास परमाणु बम हैं और लन्दन से पी.टी.आई. ने समाचार दिया (१६-१-९२) कि पाकिस्तान के पास १५ एटम बम हैं। ९-२-९२ को रूस के राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने अमरीका के राष्ट्रपति बुश को सूचना दी कि इस्लामी राष्ट्र कजाकिस्तान से परमाणु बम इकटठे कर रहे हैं। १६-१-९२ को पी.टी.आई. ने समाचार दिया कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री फ्रांस से हथियार खरीद रहे हैं। यह भी समाचार छपा कि पाकिस्तान ने सऊदी अरेबिया से ३० एफ-१६ विमान खरीद रहे हैं। यह विमान परमाणु हथियारों के प्रयोग करने में सक्षम है। टाइम्स आफ इण्डिया ५-१०-९२ में संयुक्त राष्ट्र संघ का यह समाचार छपा कि ईरान परमाणु हथियार बनाने की योजना बना रहा है। १३-१-९२ को इण्डियन एक्सप्रेस में लन्दन का यह समाचार छपा कि पाकिस्तान पड़ौसी मुस्लिम देश ताजकिस्तान से एटम बम बनाने के लिये यूरेनियम खरीद रहा है। पायनियर १४-१-९२ के अनुसार अमरीका के सांसद प्रेसलर ने पाकिस्तान से अपने परमाणु बमों को नष्ट करने के लिए कहा। टाइम्स आफ इण्डिया लखनऊ दिनांक १३-६-९६ में छपे समाचार के अनुसार वाशिंगटन की खबर है कि पाकिस्तान ने चीन से खरीदे हुए एम-११ परमाणु मिसाइल ठिकानों पर तैनात कर दिये हैं। यह मिसाइल किस देश के विरुद्ध प्रयोग किये जायेंगे यह बताने की आवश्यकता नहीं है। टाइम्स आफ इण्डिया लखनऊ दिनांक १४-६-९६ के अनुसार सरकारी अधिकारियों का विश्वास है कि मई के दूसरे पखवारे में मुस्लिम देशों से लगभग ६ टन सोना लगभग ५० हजार बिस्कुटों के रूप में बम्बई से होता हुआ दिल्ली पहुँचा। इस धन का उपयोग भारत में राजनीतिक उथल पुथल के लिये किया जायेगा। हजारों टन भयानक विस्फोटक आर.डी.एक्स भारत में मुस्लिम देशों से समुद्र मार्ग से इकट्ठा किया जा चुका है। बम्बई विस्फोटों की छानबीन के समय यह बात प्रकाश में आई थी।

पुरुलिया में हथियार गिराये गये। मुजफ्फरनगर और सहारनपुर जैसे संवेदनशील स्थानों पर पाकिस्तानी पिस्तौलें बड़ी मात्रा में आईं। बांग्लादेश, नेपाल और भारत में भी पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी का जाल फैल चुका है। यह सब समाचार आये दिन प्रेस में छपते रहते हैं। शासन की ओर से न कोई प्रतिकार छपता है न यह कि शासन इस विपत्ति का सामना करने के लिये क्या कर रहा है। न किसी आतंकवादी को फाँसी लगी न किसी भ्रष्ट राजनेता को। हाँ छोटे मोटे भ्रष्ट दंडित कर्मचारियों की फेहरिस्त शासन कभी कभी छाप देता है।

उपरोक्त समाचारों के परिपेक्ष्य में हमें भारत के विरुद्ध किसी दूसरे पाकिस्तान,

चीन और बांग्लादेश द्वारा एक साथ युद्ध से जूझने की कल्पना पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। जहाँ भारत की आंतरिक स्थिति किसी ऐसे भावी युद्ध में स्वदेश के विभीषणों के खतरे से प्रभावित है वहीं उसकी युद्ध की तैयारियाँ कैसी अस्त व्यस्त हैं वह समाचार पत्रों में छपी रिपोर्टों से स्पष्ट हो जाता है।

पायनियर लखनऊ २४-६-९६ में छपे एक समाचार के अनुसार विल्सन जान नई दिल्ली से कहते हैं : "भारतीय नौसेना द्वारा ५० करोड़ से अधिक मूल्य पर खरीदे गये मिसाइल प्रोटेक्शन सिस्टम और इलेक्ट्रानिक वारफेयर प्रोग्राम समुद्र पर किये गये परीक्षणों में फेल हो गये। उनमें सुधारों की आवश्यकता पड़ी जिसके कारण समुद्री सेना की कार्यक्षमता को बहुत हानि पहुँची। यह समाचार शासन द्वारा ही की गयी समीक्षा से प्रकाश में आया। समाचार आगे चलकर बताता है कि किस प्रकार इस सौदे में धांधले बाजी के कारण ऐसा हुआ।

यह बात सभी को पता है कि भारतीय वायु सेना में रूस में बने मिग वायुयान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु नई दिल्ली से विल्सन जान लिखते हैं कि वायुसेना मुख्यालय और भारत सरकार के सुरक्षा मंत्रालय में इस विषय पर रस्साकशी चल रही है कि पुराने मिग-२१ स्कवाड्रान का नवीकरण किया जाय अथवा नहीं। यह प्रोजेक्ट १५०० करोड़ का है और तीन साल से वायुसेना के प्रोग्राम में सर्वोच्च प्राथमिकता पर है। किन्तु मंत्रालय में ऊँचे पदों पर बैठे अधिकारियों को कोई जल्दी नहीं है।

थल सेना के लिये जो बोफोर्स तोपे खरीदी गयी थीं उनमें उस समय के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी पर करोड़ों रुपया रिश्वत खाने का आरोप अनेक समाचार पत्रों में लगाया गया। दसियों वर्ष बीत जाने पर भी आज तक यह पता नहीं चला कि वह करोड़ों रुपया कहाँ गया और उसमें कौन-कौन लोग दोषी थे।

इस प्रकार भारतीय सेना के तीनों अंगों को भ्रष्टता का लकवा मार गया है क्योंकि यह तो समाचार पत्रों को लीक हुये दो चार प्रतिनिधि उदाहरण हैं। वास्तविकता कहीं अधिक भयानक हो सकती है।

ऐसी स्थिति में टाइम्स ऑफ इण्डिया लखनऊ दिनाँक ३-७-९६ को एम.डी.नालपथ द्वारा दिया गया समाचार बहुत महत्वपूर्ण है। समाचार में कहा गया है कि नरसिंहराव का पांच वर्ष का प्रधानमंत्रित्व काल १९६२ के चीनी आक्रमण से पहले के काल के पश्चात सेना के लिये सबसे खराब काल रहा है। एक सेना के अधिकारी के हवाले से कहा गया है कि नई सरकार द्वारा इसमें सुधार किये जाने के कोई लक्षण दिखायी नहीं देते। उसके अनुसार सेना के तीनों दलों ने प्रधानमंत्री देवगौड़ा के साथ २६ जून ९६ को ९० मिनिट की एक महत्वपूर्ण मीटिंग बुलायी थी। प्रधानमंत्री ने उसमें कोई रुचि नहीं दिखायी और तीनों सर्विस चीफों से केवल औपचारिक बातचीत के बाद तुरन्त चले गये। जहाँ तक रक्षामंत्री मुलायम सिंह यादव का प्रश्न है एक जल सेना के अधिकारी ने कहा कि मीटिंग की कार्यवाही अंग्रेजी में होने के कारण रक्षामंत्री उसको ठीक ठीक समझने में असमर्थ थे। यह

भी कहा गया कि रक्षामंत्री अपना अधिकांश समय राजनीतिज्ञों के साथ गुज़ारते हैं और हमारे लिये उनके पास समय बहुत ही कम रहता है।

एक दूसरे वरिष्ठ अधिकारी ने इसी संवाददाता को बताया कि यह सचमुच आश्चर्यजनक है कि काश्मीर और उत्तर पूर्वी राज्यों में आतंकवाद और परमाणु बम के खतरों को देखते हुए शासन देश की सुरक्षा की ओर से कितने उदासीन हैं।

दैनिक जागरण लखनऊ दिनांक २-८-९६ में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार गृह मंत्रालय ने राज्य पुलिस और केन्द्रीय पुलिस बलों के लिये १०००० ए.के.४७ राइफिलों का आबंटन किया था। यह राइफलें केन्द्रीय बी.एस.एफ. सीमा सुरक्षा दलों को मिलनी थीं। कीमत ७.५० करोड़ रुपये। इनमें से ४०० राइफलें राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड एन.एस.जी. को दी गईं। बी.एस.एफ. ने सूचित किया कि इनमें से १७९ राइफलें खराब हैं और काम नहीं कर सकतीं। कल्पना करें कि शत्रु देश से युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने पर पता चले कि हमारे सैनिकों के हाथ में जो राइफलें हैं वह चलती हीं नहीं।

दैनिक जागरण लखनऊ ५-७-९६ में छपे वाशिंगटन के हवाले से छपा एक समाचार उपरोक्त सैनिक अधिकारियों की चिन्ता की पुष्टि करता है। समाचार में कहा गया है कि १९९४ में पाकिस्तान ने भारत की तुलना में सेना पर ढाई गुना धन व्यय किया। इस बात का दावा अमरीकी नियंत्रण एवं निरस्त्रीकरण रिपोर्ट में किया गया है। कहा गया है कि पाकिस्तान में प्रति व्यक्ति २४ डालर सेना पर खर्च किये गये जबकि भारत में उस वर्ष केवल ९ डालर प्रति वर्ष खर्च किये गये। पाकिस्तान का कुल खर्चा सेना पर ३.०६९ बिलियन डालर था और भारत का कुल ८.२३ बिलियन डालर। चीन का यह ख़र्च ५२.८४ बिलियन डालर था। ध्यान देने योग्य बात है कि पाकिस्तान और चीन की सुरक्षा को खतरा भारत के खतरे से कहीं कम है। भारत पर पाकिस्तान तीन बार और चीन एक बार आक्रमण कर चुके हैं जबकि इन देशों पर एक भी आक्रमण नहीं हुआ।

हम रोज़ ही देखते हैं कि दिल्ली और प्रदेशों की राजधानियों में कोई न कोई राजनीतिक रैली नित्य ही होती रहती है। इन रैलियों पर करोड़ों रुपया खर्च होता है और करोड़ों लोगों का समय अपने काम से हटकर बर्बाद होता है। दूसरी ओर शिक्षा और सुरक्षा साधनों के लिये सरकार के पास कोई पैसा नहीं है। सहस्त्रों विद्यार्थी हाई स्कूल के बाद शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। जो शिक्षा है भी उसके लिये कहा जाता है कि उसका कुल खर्च विद्यार्थियों से ही वसूला जाय और शासन से आर्थिक सहायता की अपेक्षा न की जाय। देश की सुरक्षा की प्रतिदिन बिगड़ती खस्ता हालत का कुछ अन्दाजा ऊपर दिये गये तथ्यों से पाठकों को हो जायेगा। ऐसा लगता है कि इस अभागे देश में राजनीति सबसे बड़ा व्यवसाय बन गयी है और दूसरे सभी व्यवसाय इस पर आश्रित हो गये हैं। किसी काफ़िर देश की ऐसी स्थिति इस्लामी तंत्र के फैलने और पुष्ट होने में अत्यन्त सहायक होती है। क्योंकि उसमें ध्येय स्पष्ट है और उसे प्राप्त करने के पीछे, संकल्प, निष्ठा, अनुशासन और त्याग की शक्ति है। उस शक्ति का समयानुकूल यथार्थवादी उपयोग करने वाला विद्वान और समर्पित कभी भी कम न होने वाला सदैव हरा भरा नेतृत्व और कार्यकर्ता हैं जो उसके मिशनरी भी है और सैनिक भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुस्लिम और दूसरे विदेशी आक्रमण के समय भारत की पराजय के चारों कारण, विजयी सेना के पास उत्तम हथियार और प्रशिक्षण, भारत के समुद्री तट की अपर्याप्त सुरक्षा, शासकों (आज के राज्यों और केन्द्र में तथा अनेक राजनीतिक दलों) में व्याप्त स्वार्थ और घोर पारस्परिक वैमनस्य के कारण उग्र राष्ट्रवादी नेतृत्व का अभाव और चौथा घर में बैठे विभीषण आज भी ज्यों के त्यों मौजूद हैं। इस कारण इस्लाम द्वारा भारत का इस्लामी करण भी निश्चित है। **उससे बचाव का एक ही उपाय है : प्रखर भारतीय राष्ट्रियता की शिक्षा और उसके विरुद्ध दूसरी सभी शिक्षाओं, विचारों, दर्शनों का उन्मूलन। भारत को धर्मनिरपेक्ष हिन्दू राज्य और हिन्दू राष्ट्र घोषित करना।** वेदों, उपनिषदों और चाणक्य की शिक्षा इज़रायल, जापान, मलाया, कोरिया इत्यादि छोटे परन्तु तीव्र गति से विकसित होते युवा राष्ट्रों के अनुभव और इस्लाम जैसे युवा मजहब से क्षेत्रफल, आबादी और आयु में बड़े होते हुये भी भारत को दो चार पाठ सीखने में शर्माना नहीं चाहिये। हमारा दस हज़ार से भी पुराना ऋग्वेद कहता है:

आ नो भ्रदाः ऋतवों मन्तु विश्वतः

हम अपने चारों ओर से आने वाले श्रेष्ठ विचारों को ग्रहण करें।

टाइम्स ऑफ इण्डिया लखनऊ २३ अक्टूबर १९९६

आशा के विपरीत भारत आने वाले रूसी रक्षामंत्री और प्रधानमंत्री देवेगौड़ा तथा रक्षामंत्री मुलायम सिंह के बीच भारतीय सेनाओं के लिये रूस से महत्वपूर्ण हथियारों इत्यादि की खरीद के विषय में कोई समझौता नहीं हो सका। भारत रूस से अत्याधुनिक लड़ाकू विमान सुखोंई यू.एस.-३० और रूसी आयुधों के पुर्जे खरीदना चाहता था। इसके अलावा मिग-२१ विमान को भी उन्नत करने के लिये भारत रूस से वार्ता कर रहा था। इस असफलता ने इस स्थिति को रेखांकित किया है कि भारतीय सुरक्षा सेनाओं की पुराने रूसी उपकरणों के पुर्जों के लिए और आधुनिक आयुधों के लिये रूस पर निर्भरता निरंतर बनी हुई है। इस निर्भरता का प्रतिशत थल सेना, वायु सेना और समुद्री सेना के लिये क्रमशः ४०:६४ और ८० है। इस समझौते की असफलता से सुरक्षा क्षेत्रों में सर्वत्र चिंता और निराशा प्रकट की गई है।"

स्मरण रहे कि जो उद्योग कोई उपकरण बेचता है उसकी मरम्मत में काम आने वाले पुर्जे उपलब्ध कराते रहना उसी उद्योग की नैतिक ज़िम्मेदारी होती है।

पाकिस्तान को आक्रामक आयुध उपलब्ध कराने वाले उसके मित्र चीन, सऊदी अरेबिया, अमेरिका, इंडोनेशिया के दृष्टिकोण की भारत के मित्र देश रूस के दृष्टिकोण से तुलना करें। पाकिस्तान अपने सुरक्षा साधनों के लिये एक नहीं अनेक शक्तिशाली मित्रों, अमेरिका, फ्रांस, चीन से सीधे और मुस्लिम देशों के मार्फत निरंतर आयुध खरीद रहा है। भारत मुख्य रूप से केवल रूस पर निर्भर है जो भारत चीन युद्ध के समय भारत को मित्र और चीन को साम्यवादी भ्राता कह कर तटस्थ हो गया था।

परिशिष्ट १

पाकिस्तान बनना निश्चय हो जाने पर हिन्दू और मुस्लिम राजनीतिक कैम्पों में जो हलचल हुई वह भी हिन्दू नेतृत्व की घोर अव्यवहारिक आदर्शवादिता और सत्ता लोलुपता और मुस्लिम नेतृत्व की अपने ध्येय को प्राप्त करने की सुदृढ़ यथार्थवादिता को स्पष्ट करती है।

१३ दिसम्बर १९४६ को किंग्सवे हाल लंदन में बोलते हुए जिन्नाह ने कहा पाकिस्तान में १० करोड़ लोग होंगे – सब मुस्लिम।

विभाजन से पहले ही भावी पाकिस्तानी क्षेत्रों में और कलकत्ता अमृतसर और जालंधर जैसे हिन्दू बाहुल्य स्थानों पर भी जहाँ पुलिस और सेना में मुस्लिम बाहुल्य था हिन्दू और सिखों का कत्ले आम प्रारम्भ हो गया था। जिन्नाह ने कहा थाः हिन्दुस्तान के अनेक क्षेत्रों में भारी मार काट को देखते हुये मेरी राय यह है कि केन्द्र और राज्य सरकारों को अविलम्ब आबादी की अदला बदली का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये, जिससे उन घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो जहाँ बाहुल्य समाज ने अपने क्षेत्रों में अल्पसंखयकों को काट डाला है।" मुस्लिम नेताओं के लगातार वक्तव्य आ रहे थे जिनमें खुल्लम खुल्ला मुसलमानों को हिन्दू काफिरों को कत्ल करने का आहावन किया जा रहा था। मुस्लिम लीग नेशनल गार्डस मुसलमान युवकों और युवतियों को ड्रिल, शारीरिक व्यायाम, लाठी चलाने, छुरा भोंकने, तलवार चलाने, अनुशासन की ट्रेनिंग दे रहा था और इस ट्रेनिंग के लिये शिक्षक तैयार कर रहा था। देखें प्रमाण पत्र की फोटो। पाकिस्तान अपने यहाँ काफ़िरों का नामो निशान मिटा देने का निश्चय कर चुका था।

उन हिन्दू और सिख नागरिकों को निम्नलिखित नोटिस दिये जा रहे थे जिनसे इस ध्येय में बाधा पड़ने की आशंका थी।

नोटिस

पाकिस्तान छोड़ो।

तुम्हें शीघ्र अति शीघ्र पाकिस्तान छोड़ने का आदेश दिया जाता है। यदि तुम इस चेतावनी की उपेक्षा करते हो तो इसके बुरे परिणामों के लिये तुम स्वयं ही जिम्मेदार होगे।

पाकिस्तान की जनता तुम पंचमार्गियों को यहाँ रहने देना नहीं चाहती और इस समय तुम्हारे द्वारा शासन से सुरक्षा माँगने से कोई लाभ नहीं होगा।

पाकिस्तान छोड़ो।

पाकिस्तान

पंचमार्गी विरोधी संगठन

लाहौर।

जब पाकिस्तान में ढूँढ़ ढूँढ़कर पाकिस्तानी पुलिस, सेना, मुस्लिम लीग और

नेशनल गार्डस के सहस्त्रों कार्यकर्ता हिन्दू और सिखों का कत्लेआम कर रहे थे और उनकी स्त्रियों को बलपूर्वक उठाकर बेचा जा रहा था हिन्दू नेता क्या कर रहे थे? उस समय के समाचार पत्रों की कुछ कतरनों से सुनिये।

ट्रिब्यून ३१-५-४७

श्रीमती सुचिता कृपलानी ने वाह में शरणार्थियों को सम्बोधित करते हुए ३०-५-४७ को सलाह दी कि वह अपना घर बार छोड़कर हरगिज़ न जाँय क्योंकि ऐसा करने से उनके ऊपर अत्याचार करने वालों पर मुकदमा चलाने में कठिनाई होगी।

वीर भारत १६-६-४७

फ्रन्टियर हिन्दू सिख रिलीफ कमेटी ने पेशावर और उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के हिन्दू और सिखों से अपील की है कि वह अपने घरों को वापिस लौट जाँय।

अजित १६-६-४७

बन्नू के लाला कोटूराम एम.एल.ए. ने एक प्रेस विज्ञप्ति में अपने सहधर्मियों से अपील की है कि वह अपने घरों को लौट जाँय।

ट्रिव्यून २९-६-४७

मास्टर तारासिंह ने इस अफवाह का खण्डन किया कि उन्होंने पश्चिमी पंजाब के सिखों को पूर्वी पंजाब आने के लिये कहा है। उन्होंने कहा कि उनका निश्चित मत यह है कि पश्चिमी पंजाब के गैर मुस्लिमों को अपने घरों को छोड़कर पूर्वी पंजाब नहीं जाना चाहिये।

वीर भारत २९-६-४७

सरदार अजीत सिंह ने जो विख्यात देशभक्त माने जाते थे हिन्दू और सिखों से अपील की कि वह अपना घर बार छोड़कर न जाँय।

ट्रिव्यून ४-७-४७

सरदार पटेल और सरदार बलदेव सिंह जो बाद में भारत के गृहमंत्री और रक्षा मंत्री बने रावलपिण्डी के एक सिख प्रतिनिधि मण्डल को विश्वास दिलाया कि वह पाकिस्तान से एक सन्धि करेंगे जिससे वहाँ के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा निश्चित की जा सके।

वीर भारती ४-७-४७

लाला देवराज सेठी काँग्रेस एम.एल.ए. ने ३-७-४७ को जारी एक वक्तव्य में कहा कि पाकिस्तान से हिन्दू और सिखों का भागना हानिकारक है और इस पर बल दिया कि इन लोगों को उस भूमि को नहीं छोड़ना चाहिये जहाँ उनकी जड़े हैं।

वीर भारत ९-४-४७

सरदार जगजीत सिंह मान एम.एल.ए. ने एक प्रेस विज्ञप्ति में हिन्दू और सिखों को प्रेरित किया कि झेलम और रावलपिण्डी के दंगाग्रस्त इलाकों से जो हिन्दू और सिख भाग आये है उन्हें वापिस चला जाना चाहिये।

मुस्लिम लीग नेशनल गार्डस जालंधर द्वारा ३-११-४६ को दिया गया सैनिक युद्ध, तलवार बाजी, छुरे बाजी इत्यादि की ट्रेनिंग का प्रमाण पत्र। विवरण पीछे की ओर देखिये।
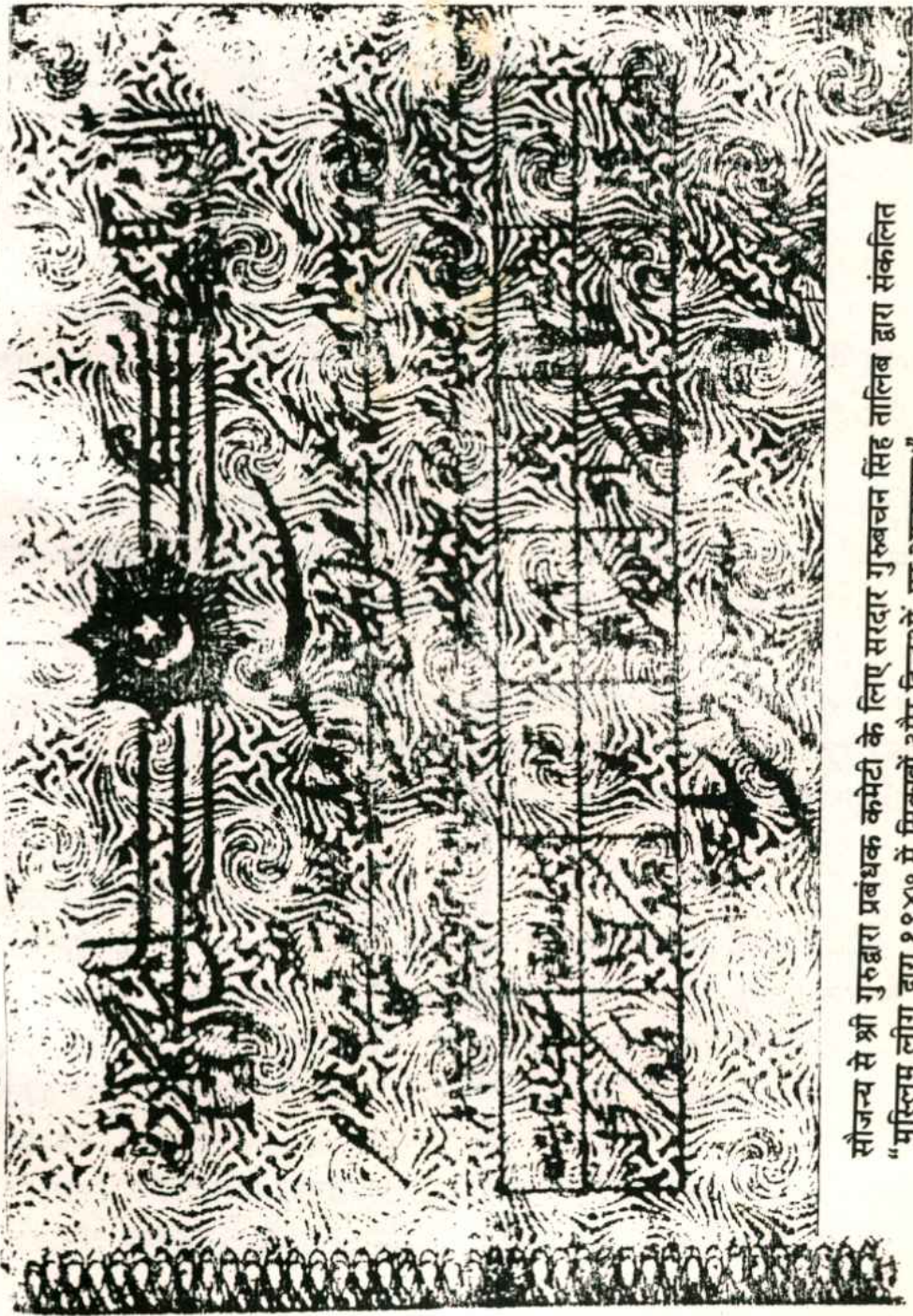
सौजन्य से श्री गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिए सरदार गुरुबचन सिंह तालिब द्वारा संकलित "मुस्लिम लीग द्वारा १९४७ में सिक्खों और हिन्दुओं पर आक्रमण।"

१. प्रमाण पत्र देने वाली मुस्लिम गार्डस की शाखा : जालंधर शहर

२. किस व्यक्ति को प्रमाण पत्र दिया गया : सकीना अरब़्तर (महिला)

३. प्रमाणित किया जाता है कि अभ्यार्थी निम्नलिखित कार्यों में योग्यता प्राप्ति की परीक्षा में उत्तीर्ण पाया गया :-

(क) ड्रिल (ख) शारीरिक व्यायाम (ग) लाठी युद्ध (घ) छुरेबाज़ी (ङ) तलवार बाजी (त) अनुशासन (थ) शिक्षक होने की योग्यता

रावलपिण्डी रिलीफ कमेटी ने एक प्रेस विज्ञप्ति में हिन्दू और सिखों को अपने घरों में जमे रहने की सलाह दी। काँग्रेस हाइकमान के सदस्य और बाद में पूर्वी पंजाब के मंत्री सरदार प्रताप सिंह, एम.एल.ए. ने कहा कि पंजाब के दंगाग्रस्त लोगों को अपने पूर्वजों की भूमि से अनियोजित ढंग से भागने के कारण अनेक क्षेत्रों में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई।

ट्रिव्यून १९-४-४७

पंजाब दंगाग्रस्त रिलीफ कमेटी के अध्यक्ष सरदार स्वर्ण सिंह ने १७-४-४७ को जारी एक वक्तव्य में लोगों को रावलपिण्डी डिवीजन से बाहर न जाने की सलाह दी और कहा कि वह शासन द्वारा स्थापित विभिन्न केन्द्रों में ही इकटठे हो जहाँ शासन ने उनकी सुरक्षा का निश्चय किया है।

वीर भारत ६-५-४७

जत्थेदार मोहन सिंह, अध्यक्ष शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर ने प्रेस में एक वक्तव्य देकर शरणार्थियों को सलाह दी कि वह अपने घर-बार छोड़कर विशेषरूप से पंजाब के बाहर न जाँय।

ट्रिब्यून २६-५-४७

पंडित जवाहर लाल नेहरु और सरदार पटेल ने ट्रिब्यून के सम्पादक राणा जंग बहादुर सिंह को २४-५-४७ को दिये गये एक साक्षात्कार में लोगों को सलाह दी कि वह घबड़ायें नहीं और अपने स्थानों पर जमे रहकर बहादुरी से स्थिति का सामना करें।

वीर भारत ८-७-४७

झेलम के वकील लाला अवतार सिंह ने जो पाकिस्तान संविधान सभा के मेम्बर भी थे एक प्रेस वक्तव्य द्वारा पाकिस्तान में रह रहे अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहन देते हुए कहा कि उन्हें अपना घर-बार छोड़कर नहीं जाना चाहिये और पाकिस्तान के अच्छे नागरिक बन जाना चाहिये।

वीर भारत ८-७-४७

रावलपिण्डी में ७-७-४७ को हुए एक अल्पसंख्यक सम्मेलन में दीवान पिण्डीदास सब्बरवाल, सरदार संतसिंह, लाला भीमसेन सच्चर, लाला अवतार नारायन, डा. लहना सिंह, प्रबोध चन्द्र एम.एल.ए. और ईसाई एम.एल.ए. फजल इलाही ने अल्पसंख्यक हिन्दू मुसलमानों को सलाह दी कि वे जहाँ है वहीं बने रहे।

भारत १०-७-४७

गोस्वामी गणेशदत्त ने उपरोक्त अल्पसंख्यक सम्मेलन रावलपिण्डी को संदेश भेजकर कहा कि पाकिस्तानी हिन्दू और सिखों को अपने घरों को छोड़कर नहीं जाना चाहिये।

वीरभारत ३-७-४७

उत्तर पश्चिमी सीमान्त सूबे के वित्त मंत्री मेहरचन्द खन्ना ने उस सूबे से भाग जाने वाले सिखों और हिन्दुओं को वापिस आने की अपील की।

वीरभारत १५-७-४७

डा. गोपीचन्द्र भार्गव ने जो असेम्बली में काँग्रेस के नेता थे पंजाब मुस्लिम लीग के अध्यक्ष खान इख्तियार हुसैन खाँ मामदोत को लिखा कि मार्च में जो लोग अपने घरों से उजाड़ दिये गये हैं उन्हें वहाँ फिर बसाया जाय।

वीर भारत १७-७-४७

उत्तर पश्चिमी सूबे के मंत्री सरदार अजीत सिंह ने एक प्रेस वक्तव्य में पाकिस्तान के हिन्दू और सिखों को कहा कि मिस्टर जिन्नाह के वायदों पर विश्वास करें और अपना घर छोड़कर न जाँय। उन्होंने कहा कि अल्पसंख्यकों को पाकिस्तान के वफादार नागरिक होना चाहिये।

वीर भारत २५-७-४७

उत्तर पश्चिमी सूबे के हिन्दू सिख डिफेन्स कमेटी ने एक प्रेस वक्तवय में हिन्दू और सिखों से अपील की कि वह अपने घर छोड़कर न जांय।

वीर भारत १-८-४७ और ट्रिव्यून १-८-४७

महात्मा गाँधी ने रावलपिण्डी आगमन पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं से कहा कि वह दोनों डोमीनियन्स के वफादार नागरिक है ओर १५ अगस्त १९४७ के बाद भी रहेंगे और उनको अपने घरों को छोड़कर नहीं जाना चाहिये।

ट्रिब्यून ४-८-४७

काँग्रेस अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने लोगों को प्रशासन के साथ वफादारी की सलाह दी। वह भी इस बात के विरुद्ध थे कि लोग अपने घर-बार छोड़कर जायें।

सिविल एण्ड मिलेट्री गजेट १२-८-४७

सरदार स्वर्ण सिंह ने लाहौर में १०-८-४७ को एक प्रेस अपील द्वारा लोगों से कहा : "भारत का विभाजन होने के पश्चात भी मुसलमान हिन्दू और सिखों को साथ साथ रहना है इसलिये हम सबको शान्ति और सद्भाव के साथ रहना चाहिये। जिससे कि गरीब और पददलित लोगों को स्वतंत्रता का फल मिले और खाने के लिये भोजन और शरीर ढकने के लिये कपड़े प्राप्त हो सकें और वह एक सुखी और बेहतर जिन्दगी जी सके।

दूसरी ओर हिन्दू भारत में मुसलमानों को सुरक्षा प्रदान करने के सभी उपाय पुलिस और सेना द्वारा किये जा रहे थे। वीर भारत ४-७-४७ को काँग्रेस अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने भारत के मुसलमानों को यकीन दिलाया कि वह यहाँ कभी भी विदेशी नहीं समझे जायेंगे और हर प्रकार से उनके हितों की रक्षा की जायेगी।

अजित ८-७-४७

तरनतारन में एक जनसभा में सर बूटा सिंह मेम्बर कौन्सिल आफ स्टेट, सरदार सुरजीत सिंह, एम.एल.ए., सरदार जसवंत सिंह झबाल, जत्थेदार सोहन सिंह, जलालुस्मान और दूसरे सिख नेताओं ने उपस्थित लोगों को मुस्लिम अल्पसंख्यकों के जीवन और माल की रक्षा करने के लिये आमंत्रित किया।

वीर भारत ८–७–४७

अपनी प्रार्थना सभा में गाँधी जी ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक भारतीय के साथ समान व्यवहार किया जायगा और किसी को अपना निवास छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं है।

उपरोक्त समाचार पत्रों की कतरनों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू नेता किस सीमा तक इस्लाम के कुफ्र और काफिर विरोधी दर्शन की उग्रता से अनभिज्ञ थे और किस प्रकार भावी पाकिस्तान के हिन्दू और सिख अल्पसंख्यकों को उस बूचड़खाने में बने रहने का अव्यवहारिक उपदेश दे रहे थे जिसका नाम पाकिस्तान था। और जहाँ पूरा शासन तंत्र, राजनीतिज्ञ, सेना और पुलिस, मुस्लिम लीग नेशनल गार्डस द्वारा प्रशिक्षित हत्यारे चुन चुन कर निहत्थे हिन्दू और सिखों का खुले आम कत्ल कर रहे थे। उनकी बूढ़ी स्त्रियों और बच्चों को यंत्रण देकर उनकी आँखों के सामने मार रहे थे और युवा स्त्रियों का बलात्कार और अपहरण कर रहे थे।

कदाचित हिन्दू नेताओं को इस बात का ज्ञान होता कि मुसलमानों का ध्येय जैसे तैसे सत्ता में बना रहना मात्र नहीं हे। उनका सत्ता प्राप्त करने का ध्येय अल्लाह द्वारा निर्देशित उनको सौंपा गया यह कार्य सम्पादित करना है कि कुफ्र मत और काफिर संस्कृति समूल नष्ट हो जाय और इस्लाम, इस्लामी संस्कृति और शरियत कानून स्थापित हो जाय। इस ध्येय प्राप्ति में बाधा डालने वाला कोई समझौता सम्भव नहीं है।

उपरोक्त वक्तव्यों से स्पष्ट है कि जहां मुस्लिम नेतृत्व के मन में अपने अल्पसंख्यक–रहित पाकिस्तान बनाने के ध्येय और उसको प्राप्त करने के मार्ग के विषय में कोई भ्रम नहीं था वहीं हिन्दू नेतृत्व अभी भी इस मृग मरीचिका के पीछे भाग रहा था कि पाकिस्तान और भारत दोनों देशों में स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दू और मुसलमान सद्भाव और पारस्परिक प्रेम और बन्धुत्व के साथ रह सकेंगे।

कहा जा सकता है कि भारत में भी मुसलमानों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार किया जा रहा था जैसा पाकिस्तान में सिखों और हिन्दुओं के साथ। हिन्दुओं ने मुसलमानों के ऊपर कुछ कम अत्याचार नहीं किये। यह बात ठीक है परन्तु भारत के पूर्वी पंजाब में १२–८–४७ से पहले एक आध छुटपुट घटना को छोड़कर मुसलमानों पर कहीं आक्रमण नहीं हुआ। १२–८–४७ के बाद पश्चिमी पंजाब से आये शरणार्थियों की करुण गाथा सुनकर और पश्चिमी पंजाब तथा उत्तर पश्चिमी सूबे में महीनों पहले से उनके ऊपर अत्याचारों की घटनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप ही पूर्वी पंजाब में दंगे प्रारम्भ हुये। और फिर तो कत्ल के बदले कत्ल, बलात्कार के बदले बलात्कार और अपहरण के बदले अपहरण सभी कुछ हुआ। परन्तु सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि न भारत के और न पाकिस्तान के किसी मुस्लिम नेता ने हिन्दुओं और सिखों पर किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। कारण स्पष्ट है।

सन्दर्भ

अध्याय १ से १५ तक (पृ. १ से पृ. १०० तक)

१– डा. के एस. लाल : द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रुल इन इण्डिया पृ. ७०
२– अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ. ३३०
३– – उपरोक्त – पृ. ३०७
४– – उपरोक्त
४क– दलवाई : मुस्लिम पालिटिक्स इन सेक्युलर इण्डिया पृ. ४८
५– अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ. ३२४
५क– भारती : गाँधी एंड गाँधीज्म एक्सपोज्ड पृ. १६
६– अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ. ३२५
६क– अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ. ८१
७– उपरोक्त पृ. ८२
८– उपरोक्त पृ. ८५
९– सयद कुत्व : म–आलिम जे.एल.ई., पृ.–७९
९क– एम.आर.ए.बेग : द मुस्लिम डिलेमा इन इंडिया – पृ.११
१०– अयातुल्लाह खुमैनी : १६–८–१९७९ के एक भाषण में।
११– सयद अबुल हसन अली नदवी : कैलेमिटी ऑफ लिंग्युस्टिक एंड कल्चरल शाविनिज्म पृ–१०
१२– मौदूदी मसलम कौमियत पृ.–१०२ एम.बी.एल.–२ पृ.–५७९
सयद कुत्व : हदहा–अल–दीन पृ.८४ जे.एल.ई. पृ.९०
आजाद : मज़ामीन–ए–आजाद–२ पृ.२३, नन्दा पृ.–११४
१३– शाहवली उल्लाह : हुज्जाह अल्लाह अल–बालिगाह, हर्षनारायण, "जिजिया" पृ.–२
१४– अबदल रहमान "अज्जम" : द इटरनल मेसेज आफ मुहम्मद पृ.–७
१४क– हर्ष नारायण : जिजिया – पृ. ३
१५– जियाउद्दीन बर्नी : सहीफ–ए–नाते मुहम्मदी–हर्षनारायण : सम्मिश्र संस्कृति, पृ.–८
१५क– एच.ए.करन्दीकर इस्लाम इन इण्डियाज ट्रान्जीशन टु माडरनिटी पृ.–११४
१५ ख– के.एस.लालः द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रुल इन इंडिया पृ. ५२; बदायुनी २ पृ. ३८३
१६– जमाली, सियरुल आरिफीन पृ.–१५९ हर्षनारायण, उपरोक्त पृ. ८
१७– पी.सी.बैम्फोर्ड : हिस्ट्रीज़ ऑफ खिलाफत एंड नान–कोआपरेटिव मूवमेन्टस पृ. २५१–५५
१८– टाइम्स आफ इण्डिया मार्च १४, १९२५– रामगोपाल : इण्डियन मुस्लिम्स पृ.१६६
१९– सत्यकुतु विद्यालंकर : आर्य समाज का इतिहास खण्ड–२, पृ. ५७२
२०– टाइम्स आफ इण्डिया ३० नवम्बर, १९२७ शेषाद्रि : "और देश बँट गया" पृ–८८
२१– डैनियल पाइप्स : इन द पाथ आफ गॉड पृ–४०
२२– गुनेवाम : माडर्न इस्लाम पृ–१० डै.पा. पृ.३९
२३– गोपाल कृष्ण : पाइटी एंड पालिटिक्स इन इंडियन इस्लाम : डै.पा., पृ.–३९
२४– नाइपाल : एमंग द बिलीवर्स पृ.३६७–६८, डै.पा.–४०
२५– ए हिन्दू नेशनलिस्ट : गाँधी मुस्लिम कांस्प्रेसी पृ. १६३
२६– अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ. ३२५
२७– डा. हर्ष नारायण : जिजिया पृ.–४

२८- सयद कुत्ब : म-आलिम पृ.-९०, जे.एल.ई. पृ.-८२
२९- डा. हर्ष नारायण : जिजिया पृ.-४
३०- एम.आर.बेग : द मुस्लिम डिलेमा इन इण्डिया पृ.-१४
३१- डा. अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ.-३२५
३२- जी.एम.जगत्यानी : रेज़िस्ट इस्लामिक फन्डामेन्टलिज्म पृ.-१
३३- उपरोक्त
३४- उपरोक्त
३५- उपरोक्त
३६- उपरोक्त
३७- उपरोक्त पृ.-२
३८- उपरोक्त पृ.-४
३९- खुर्शीद अहमद : इस्लामिक लॉ एंड कान्स्टीच्यूशन पृ.-१७७, जे.एल.ई.-११४
४०- सयद कुत्ब : हदहा अल-दीन पृ.-३३, जे.एल.ई.-८९
४१- मौदूदी : सबसे पहला दस्तूर १९४१ एम.बी.एल.-२, पृ.-५८।
४२- नंदा : गाँधी, पैन इस्लामिज्म इम्पीरियलिज्म एंड नेशनलिज्म पृ.-११७
४२क- खुर्शीद अहमद : ला एंड कान्स्टीच्यूशन पृ.-२६४
४३- जदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब-३ पृ.१६४-६५
४४- जॉन एल.एसपासिटो : वॉयसेज़ ऑफ रिसर्जेन्ट इस्लाम पृ.-९२
४५- अब्दल रहमान "अज्जम" : द इटरनल मेसेज ऑफ मौहम्मद पृ.-६५
४६- एडवर्ड मार्टिमर : फेद एंड पावन पृ.-१९६
४७- सयद अबुल हसन अली नदवी : द न्यू मीनेस एंड इट्स आनसर पृ.-२१
४८- सयद कुत्ब म-आलिम पृ.८१, जे.एल.ई.-८।
४९- डा. हर्ष नारायण : जिजिया पृ.-४
५०- सर जदुनाथ सरकार : औरंगजेब-३, पृ.१६४
५०क- एम.आर.ए.बेग : द मुस्लिम डिलेमा इन इंडिया, पृ. १५
५० ख- जी.एम.जगत्यानी : रेज़िस्ट इस्लामिक फंडामेन्टलिज्म पृ. ३
५१- म-आलिम पृ.-७८, जे.एल.ई. ८४-८५
५२- राम मनोहर लोहियाः भारत विभाजन के गुनहगार पृ.-४८
५२क- हो.वे.शेषाद्रि : और देश बंट गया, पृ. ८९
५२ख- एलफिन्सटन इत्यादि : एनशेन्ट इंडिया, पृ. ९३
५२ग- ए हिन्दू नेशनलिस्ट : गाँधी मुस्लिम कान्सप्रेस्सी, पृ. २१६
५३- इन्स्टीच्यूट फार एडवांस्ड स्टडी शिमला : कन्टेम्पोरेरी इस्लाम इन इण्डिया पृ.-६७ (जियाउल हसन फारुकी)
५४- डा. तारा चन्द : "हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट", खंड-३, पृ. २३०
५४ क- म-आलिम पृ.-९३ जे.एल.ई., पृ.-८२
५५- म-आलिम पृ.-७८ जे.एल.ई. पृ. ८४-८५
५६- मौदूदी : सबसे पहला दस्तूर १९४१, एम.बी.एल.-२, पृ.५८१
५६क- हर्ष नारायण : जिजिया - पृ. १३
५६ख- के.एस.लाल : द लीगेसी आफ मुस्लिम रुल इन इण्डिया पृ.-१५५
५७- यंग इण्डिया २५-८-१९२४ शेषाद्रि पृ.-९०-९१
५८- हर बिलास सारदा : हिन्दू सूपीरियारिटी पृ.-५२
५९- अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ.-३०७
६०- एस.आर.शर्मा : द क्रीसेंट इन इन्डिया पृ.-३२

६१- उपरोक्त पृ.-३४
६२- उपरोक्त पृ.-३०
६३- उपरोक्त पृ.-२६
६४- एयर मार्शल-असगर खाँ : द फर्स्ट राउंड पृ.-१३६
६५- के.एस.लाल : द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रुल इन इंडिया, पृ. ११९
६६- उपरोक्त पृ.-११९
६७- उपरोक्त पृ.-१२०
६८- उपरोक्त पृ.-१२०
६९- उपरोक्त पृ.-१२०
७०- एम.आर.शर्मा : द क्रीसेंट ऑफ मुस्लिम रुल इन इण्डिया पृ.-९०
७१- के.एस.लाल : द लीगेसी ऑफ मुस्लिम रुल इन इण्डिया पृ. १५४
७२- उपरोक्त पृ.-१५५
७३- के.एस लाल : इंडियन मुस्लिम्स - व्हू आर दे पृ. २४

भारत के इस्लामीकरण का तीसरा चरण
अध्याय १६ से २० तक (पृष्ठ १०१ से पृष्ठ १४३ तक)

१- सही मुस्लिम ४३२१
२- सही मुस्लिम ७१३
३- सही मुस्लिम ४७११
४- खुर्शीद अहमद : इस्लामिक लॉ एंड कॉन्स्टीच्यूशन पृ.-१७५,
जे.एल.ई.पृ.- ११४
५- अरुण शौरी : द वर्ल्ड आफ फतवाज पृ.-३०
६- यंग इण्डिया : २५-९-२४ शेषाद्रि पृ.-९०-९१
७- टॉड : राजस्थान खण्ड-१, पृ.-२८७ हर बिलास सारदा की पुस्तक
हिन्दू सुपीरियारिटी पृ.-५२ पर उद्धृत।
८- मुकुट बिहारी लाल : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, खण्ड - २ पृ. १५९
९- ब्रिगेडियर एस.के.मलिक : द कुरानिक कनसेप्ट ऑफ वार पृ.-६०
१०- मुकुट बिहारी लाल : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन भाग-१, पृ.-१६१
११- उपरोक्त पृ.-१६०
१२- डा. ईश्वरी प्रसाद : हिन्दू-मुस्लिम प्रॉबलम्स पृ.-५
१३- स.अबुल हसन अली नदवी (अली मियां) : मुस्लिम्स इन इंडिया पृ.१०९-१०
१४- उपरोक्त पृ.-१११
१५- हो.वे.शेषाद्रि : और देश बंट गया पृ.-२४
१६- डा. ईश्वरी प्रसाद : पूर्वोद्धृत, पृ.-९
१७- राम गोपाल : इण्डियन मुस्लिम्स पृ.-१६६ हो.वे.शे. पृ.-८५
१७क- शान्ता कुमार : धरती है बलिदान की (नटराज पुस्तक माला-
भारती साहित्य सदन ३०/९० कनाट सर्कस नई दिल्ली) पृ.-१२४
१८- उपरोक्त पृ.-१२९
१९- बी.आर.अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ.-१४८, हो.वे.शे. पृ.-७८

२०- शान्ता कुमार – उपरोक्त पृ.-१२९
२१- डा. सत्यकेतु विद्यालंकार : आर्य समाज का इतिहास खण्ड-४, पृ.-७०९
२२- राम गोपाल : इण्डियन मुस्लिम्स पृ.-१५३-५४ तथा स्वामी श्रद्धानन्द : इनसाइड काँग्रेस पृ.-१५०-१५१, हो.वे.शे. पृ.८१-८२
२३- भारतीय विद्या भवन : द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपिल खंड-११, पृ.-२४
२४- डा. ईश्वरी प्रसाद : पूवोद्धत पृ.-३२
२५- डा. तारा चन्द : हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट खंड-३, पृ.-३४४
२६- बी.डी.बसु : इण्डिया अंडर द ब्रिटिश क्राउन पृ.-४४६
२७- उपरोक्त
२८- डा. ईश्वरी प्रसाद-पूर्वोद्धत पृ.-३२
२९- उपरोक्त पृ.-३१
३०- उपरोक्त पृ.-३१
३१- उपरोक्त पृ. ३२
३२- आर.सी.मजूमदार : हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया खंड-११, पृ.५४-५५
३३- रामसे मैकडानल्ड : अवेकनिंग आफ इण्डिया पृ.-१२६-१२७ हो.वे.शे.,.-३९
३४- उपरोक्त, पृ. १७९ हो.वे.शे. ४२
३५- ईश्वरी प्रसाद-पूर्वोद्धत पृ.-३२
३६- उपरोक्त पृ.-४१
३७- उपरोक्त पृ.-६५
३८- उपरोक्त पृ. ६०-६१
३९- बी.बी.नागरकर : जिनेसिस ऑफ पाकिस्तान पृ.-१०६, हो.वे.शे., पृ.-६१-६३
४०- यंग इंडिया २-४-१९२५ हो.वे.शे. ११२
४१- महादेव देसाई : डे टु डे विथ गाँधी खण्ड-३, अक्टूबर १९२० से जनवरी १९२४ पृ.-३१५-१६ (अरुण शौरी : द वर्ल्ड आफ फतवाज पृ.२०)
४२- बी.बी.कुलकर्णी : पूर्वोदधृत पृ. २१९ हो.वे.शे. पृ. ६९
४३- पी.सी.बैमफोर्ड : हिस्ट्रीज ऑफ खिलाफत एंड नान कोआपरेशन मूवमेंटस पृ.-२५१
४४- आइ.ए.आर. १९२२ – पुरुषोत्तम : मुस्लिम राजनीतिक चिंतन और आकांक्षायें पृ.-५०, पृ.-४४७
४५- नन्दा : पूर्वाद्धत पृ.-११७
४६- ए हिन्दू नेशनलिस्ट : द गाँधी मुस्लिम कान्सपेरेसी पृ. १२१-२२
४७- राम गोपाल : पूर्वोद्धत पृ.-१६६
४८- हुसैन अहमद मदनी : इस्लाम और मुत्तहिदा कौमियत पृ.-७८, मु.बि.ला.-२ पृ.-५६९
४९- शंकरन नायर : गाँधी एंड एनार्की पृ.-१३९, हो.वे.शे. ७६-७७
५०- हो.वे.शेषाद्रि : और देश बँट गया पृ.७६
५१- उपरोक्त
५२- लिबरेटर २६-८-१९२६

५३- पी.सी.बैमफोर्ड : पूर्वोद्धृत पृ.-३६
५४- एम.ए.करन्दिकर : इस्लाम पृ.-१७७
५५- डा. सत्यकेतु विद्यालंकार : आर्य समाज का इतिहास खंड-२, पृ.-७०९
५६- उपरोक्त
५७- यंग इण्डिया २८ मई १९२४ (सत्यकेतु विद्यालंकार : आर्य समाज का इतिहास खण्ड-४ पृ.-७०५)
५८- उपरोक्त
५९- उपरोक्त
६०- डा. ताराचन्द्र : हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया खंड-२, पृ.४२४
६१- डा. अम्बेडकर : पाकिस्तान पृ.-१४६
६२- स्वामी श्रद्धानन्द : इन साइड काँग्रेस पृ.-१९५-९६ हो.वे.शे.-८६
६३- राजेन्द्र प्रसाद : इण्डिया डिवाइडेड पृ.-११७, हो.वे.शे-८७
६४- वी.वी.नागरकर : जेनेसिस पृ.-१६५, हो.वे.शे.-८८

अध्याय २१ से ३१ तक (पृष्ठ १४४ से पृष्ठ १९९ तक)

१- इण्डियन इन्स्टीच्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडी शिमला : इण्डिया एंड कन्टेम्पोरेसी इस्लाम पृ.-१९६
२- यू.एस.न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट में सम्पादक माटिम्मर जुकर मैन
३- मुशीरुल हक : धर्मनिरपेक्ष भारत में इस्लाम : पृ.-२
४- उपरोक्त
५- एस.सी.दुबे (सम्पादक) : इण्डिया सिंस इन्डिपेन्डेन्स पृ.-१३८
६- हामिद दलवई : मुस्लिम पॉलिटिक्स इन सेक्युलर इण्डिया पृ. ७३-७४
७- मुशीरुल हक : पूर्वोद्धृत पृ.-५३
८- सर स्लीमन : रैम्बिल्स एंड रिकलेक्शनस आफ ऐन इण्डियन आफिसर
९- जी.एच.जानसेन : मिलिटेंट इस्लाम पृ.-११२
१०- पायनियर लखनऊ १४ अगस्त १९९५
११- इन्स्टीच्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी शिमला : कन्टेम्पोरेरी इस्लाम इन इण्डिया पृ.-३२
१२- मुशीरुल हक : पूर्वोद्धृत पृ.-३६
१३- उपरोक्त पृ.-४९
१३क- उपरोक्त
१४- सयद कुत्व : हदहा-अल-दीन पृ.-३३, जे.एल.ई. पृ.-८९
१५- डैनियल पाइप्स : इन द पाथ ऑफ गॉड पृ.-४६
१५ क- डैनियल पाइप्स : इन द पाथ ऑफ गॉड पृ. ४६
१६- सयद कुत्ब : मारकाट पृ. ७३-७४ अल-सलाम पृ.-१२३, जे.एल.ई. पृ.-९२
१७-राफेल इजराइली :"मुस्लिम माइनारिटीज अंडर नान इस्लामलिक रुल":डैनियल पाइप्स पृ. ६८
१८- १८. डैनियल पाइप्स : इन द पाथ ऑफ गॉड - पृ. १६३
१९- हामिद दलवई - पूर्वोद्धृत पृ. ६१-६२
२०- मुकुट बिहारी लाल : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन खण्ड-१, पृ.-१६०
२१- बी.डी.भारती : गाँधी एंड गाँधीजम अनमास्कड पृ.-१६
२२- आर.सी.मजूमदार : हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवमेंट खण्ड-१ पृ.४३०
२३- डा. तारा चन्द : पूर्वोद्धृत पृ.-३४४

२४- आइ.ए.आर. १९२२ पृ.-४४७ गां.मु.कां.-१४
२५- राम गोपाल : इण्डियन मुस्लिम्स पृ.-१६६
२६- ए हिन्दू नेशनलिस्ट : गाँधी मुस्लिम कॉंस्प्रेसी पृ. १२१-१२२
२७- उपरोक्त पृ. ६४-६५
२८- नौमान : मुस्लिम इण्डिया पृ.-४०३, ४०४ मु.बि.लाल. खंड-२, पृ.-३८९
२९- आजाद : इण्डिया विन्स फ्रीडम पृ.-१५१
३०- नन्दा : गाँधी, पैन-इस्लामिज्म, इम्पीरियलिज्म एंड नेशनलिज्म, पृ.-११७
३१- उपरोक्त पृ.-११४
३२- उपरोक्त
३३- उपरोक्त
३३क- मा.स.गोलवलकर : विचार नवनीत पृ. १७४
३४- बी.डी.भारती गाँधी एंड गाँधी अनमास्क्ड पृ.-३३
३५- वृजभूषण भटनागर धर्म परिवर्तन पृ.-५,६
३६- उपरोक्त पृ.-९
३७- उपरोक्त पृ.-१०
३८- भानुप्रताप : भारतीय मुस्लिम पृ.-५०
३९- – तदैव –
४०- एम.ए.करन्दीकर : इस्लाम पृ. १२६ हो.वे.शे. ८९
४१- – तदैव –
४२- यंग इन्डिया २५-९-१९२४ हो.वे.शे. ९१
४३- यंग इंडिया : २-४-१९२५ हो.वे.शे. पृ. ११२
४४- डा. तारा चन्द : पूर्वोदधृत खंड ४, पृ. १०४
४५- हो.वे.शे. : और देश बंट गया, पृ. १६
४६- जे.एन.साहनी : द लिड ऑफ, पृ. १९६ हो.वे.शे. पृ. १९६
४७- श्याम दास : वीर विनोद खण्ड-२ पृ.-२०४
४८- के.एस.लाल : द मुगल हरम पृ.-१४१
४९- वी.पी.मेनन : द स्टोरी ऑफ इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स : पृ.-९५-९६ हो.वे.शि.-२३९
५०- खुशवन्त सिंह : द पंजाब स्टोरी पृ.-४
५१- प्यारे लाल : द लास्ट फेज पृ.-४७९
५२- खुशवन्त सिंह : पूर्वाद्धृत पृ. ६-७
५३- ले. जेनरल जगजीत सिंह अरोरा (अवकाश प्राप्त) : द पंजाब स्टोरी पृ.-१३७
५४- जसवन्त राम गुप्त : हिन्दुओं का धर्मान्तरण और विदेशी धन पृ.-५
५५- प्यारे लाल : पूर्वोद्धृत पृ. ४७४-५
५६- हामिद दलवई : पूर्वोधृत पृ. ४८
५७- उपरोक्त पृ. ५३

संकेत

डै.पा. – प्रो. डैनियल पाइप्स : इन द पाथ ऑफ गाड।
जे.एल.ई. – जॉन.एल.एस्पासिटो : वायसेज़ ऑफ रिसर्जेंट इस्लाम
हो.वे.शे. – हो.वे.शेषाद्रि : और देश बँट गया
मु.बि.ला. – मुकुट बिहारी लाल : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन

लेखक की दूसरी कृतियाँ

१- मुस्लिम राजनीतिक चिंतन और आकांक्षाये

पृष्ठ २२० पेपर बैक	रू० ६०-००
हार्ड बैक	रू १०५-००

२- भारतीय संविधान और शरीयः रू० १५-००

३- मुस्लिम एण्ड हिन्दू फान्डामेन्टलिज्म रू० ५-००
(संविधान सभा में बहस के उद्धरण)

४- अंतिम हिन्दू (पांचवा संस्करण) रू० ६-००

५- एक बीबी की तलाश रू १५-००
(ऐतिहासिक और सामाजिक कहानियाँ)

६- अनुभव रू० १५-००

७- महाप्रलय (एक सामाजिक उपन्यास) रू० ५०-००
लगभग २४० पृष्ठ (छप रहा है)

८- विचित्र धर्म निरपेक्षता रू० ३-००

अंग्रेजी पुस्तकें

1- Hindu Muslim Problems **Rs-12-00**

2- National Integration and Muslim Minority **Rs-14-00**
(Collection of articles appearing in Organiser Delhi) 3rd Edition

3- Political Islam **Rs-5-00**

4- Muslim and Hindu Fundamentalism **Rs-5-00**
(What it means and How it spreads ?)
with Relevant excerpts from Constituent Assembly Deabate.

5- Must India Go Islamic ? (In Press) **Rs-40.00**

इस्लाम पर अम्बेडकर

उनकी विख्यात पुस्तक "पाकिस्तान से उदधृत"

भारत पर मुस्लिम आक्रमण केवल लूट और राज्य लिप्सा के कारण नहीं किये गये थे उनके पीछे एक दूसरा ध्येय भी था............इसमें कोई संदेह नहीं कि मूर्ति पूजा और बहुदेवता पूजा पर चोट करना और भारत में इस्लाम स्थापित करना भी इनका एक कारण था। पृ० –३७

"इन आकमणों में मन्दिर ध्वस्त किये गये, बलात धर्मान्तरण किये गये, सम्पत्ति नष्ट की गयी, क़त्ले आम किया गया, स्त्री पुरुषों और बच्चों को गुलाम बनाकर पतित किया गया। इसलिये इसमें क्या आश्चर्य है कि इन कृत्यों की स्मृति सदैव तरोताज़ा रही है जिस पर मुसलमान सदैव गर्व अनुभव करते रहे हैं और हिन्दू लज्जा।....................मुस्लिम आक्रमणकारी निःसन्देह हिन्दुओं के विरूद्ध घृणा के गीत गाते हुए भारत में घुसे किन्तु वह घृणा के गीत गाकर और थोड़े बहुत मन्दिरों को जलाकर वापिस नहीं चले गये। यदि ऐसा होता तो यह एक वरदान होता। इस प्रकार के नकारात्मक परिणाम से वह संतुष्ट नहीं हुये। उन्होंने एक सकारात्मक कार्य किया। भारत में इस्लाम का बीज बोया। इस बीज से उगे पौधे ने आश्चर्यजनक उन्नति की। यह कोई छोटा मोटा पौधा नहीं था वह ओक की तरह एक विशाल तथा मजबूत वृक्ष था।" (पृ० ४७–४८) यथार्थवादी को नहीं भूलना चाहिये कि मुसलमान हिन्दुओं को काफ़िर समझते हैं जिनकी रक्षा करने के स्थान पर उन्हें नष्ट कर देना ही उत्तम है। (पृ० ८३)

पाकिस्तान निर्माण के पक्ष में दलील

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह हिन्दू बहुत ही साहसी होगा जो यह कह सके कि मुस्लिम देशों द्वारा भारत पर आक्रमण के समय भारतीय सेना के मुसलमान वफ़ादार रहेंगे और उनका आक्रमणकारियों से मिल जाने का कोई भय नहीं होगा। .... क्या हमारे यह द्वारपाल आक्रमणकारियों को रोकेंगे अथवा क्या वे द्वार खोलकर उनको अन्दर आ जाने देंगे ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी हिन्दू उपेक्षा नहीं कर सकता।.... ....तब कौन सा विकल्प बेहतर है कि मुसलमान बाहर रहकर विरोध करें कि अन्दर रहकर ?" (पृ० ८३–८५)

१८५७ का गदर मुसलमानों द्वारा भारत को दारूल इस्लाम बनाने की दिशा में एक असफल प्रयास था। ऐसा ही प्रयास १६१६ में अफगानिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण करने का था। इसके षडयन्त्रकर्ता कुछ भारतीय मुसलमान थे जिन्होंने ख़िलाफ़त के नेताओं के नेतृत्व में अंग्रेज़ी सरकार से विद्वेष का लाभ उठाते हुये भारत को स्वतंत्र कराने में अफगानिस्तान की मदद माँगी। यह दूसरी बात है कि आक्रमण होता भी तो क्या मुस्लिम राज्य स्थापित हो जाता ? किन्तु इतना तो सत्य है ही कि मौलाना हुसैन अहमद मदनी अध्यक्ष जमातुल–उलेमा के अनुसार भारत उसी दिन से दारुल हर्ब (युद्ध स्थल) है जब से यहाँ मुस्लिम शासन का अंत हो गया। यह तब तक दारुल हर्ब समझा जायेगा जब तक यहाँ गैर–इस्लाम का वर्चस्व रहेगा।